ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.465
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Issue - 2 April-June 2022 RNI NO. RAJHIN / 2011 / 40531

CHIEF EDITOR
Dr. Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Volume - 43 Issue - 2 April - June 2022

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Dr. Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma (Retd.)
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat (Retd.)
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Prof. Veenu Pant
Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Ram Chandra
Assistant Professor, (STRIDE),Indira Gandhi National Open University, **New Delhi**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.465
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Volume-43 | Issue-2 | April-June 2022 | RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Dr. Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN/2011/40531

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By
Dr. S. N. Tailor Foundation
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from
Dr. Virendra Sharma
54-A, Jawahar Nagar Colony
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at
Ganesh Printers, Jaipur

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Contents

Volume-43 **Issue-2** **April-June 2022**

1. **कौटिल्य का अर्थशास्त्र : प्राचीन भारत का एक शोध ग्रन्थ (थीसीस)** 1–4
   डॉ. दिनेश कुमार चारण, चूरू
2. **सूरजपाल जी की कहानियों में दलित जीवन का जीवंत चित्रण** 5–7
   डॉ. संध्या एस, आलप्पुषा (केरल)
3. **वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में गांधी दर्शन की प्रासंगिकता** 8–12
   डॉ. शशि कान्त बैरवा, टोडारायसिंह
4. **हिन्दी साहित्य में दलित चेतना का स्वरूप** 13–18
   संदीप कुमार पाण्डेय, उज्जैन (मध्यप्रदेश)
5. **उषा यादव के बाल उपन्यासों में चित्रित समाज व कल्पना** 19–22
   डॉ भारती, कोटा
6. **भारत की सामाजिक आर्थिक स्थिति पर COVID-19 का प्रभाव (2020)** 23–28
   डॉ. हर्शी खण्डूडी, गोपेश्वर चमोली, (उत्तराखण्ड)
7. **उदयपुरवाटी का प्रमुख लोकनाट्य : ख्याल गायकी** 29–31
   सुरेन्द्र कुमार सैनी, जोधपुर
8. **"लोकनाट्यों के संरक्षण व संवर्द्धन में परम्परागत संचार माध्यमों की भूमिका"** 32–38
   डॉ. योगेश शर्मा, जोधपुर
9. **बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों में वर्षा आधारित फसलों में आय बढ़ाने वाले सुझाव** 39–42
   ओमप्रकाश, जोधपुर
10. **निर्धनता एक विश्वव्यापी समस्या : एक अध्ययन** 43–46
    डॉ. बी. नूरजहाँ, सबौर (बिहार)
11. **ठाकुर केसरीसिंह बारहठ के पत्रों में जीवन की अनमोल सिखावनियां** 47–52
    डॉ. प्रेम बाफना, सुजानगढ़
12. **प्राकृतिक संसाधनो का दोहन एवं पर्यावरण विनास** 53–57
    डॉ. सुरेश चन्द वैष्णव, छबड़ा
13. **अभिलेख लेखन परम्परा शाहाबाद क्षेत्र के विशेष संदर्भ में** 58–64
    डॉ. जया भार्गव, अजमेर
14. **ब्रिटिशकालीन मारवाड़ में किसानों से लिए जाने वाले लगान व लाग–बाग तथा जागीरदारों द्वारा किसानों का शोषण** 65–71
    कुलदीप चौधरी, जोधपुर
15. **डीजिटल मीडिया– अवसर और चुनौतियां** 72–76
    डॉ. अनीता जनजानी, जयपुर
16. **आयुर्वेदावतरण एवं मारवाड़ के इतिहास में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के प्रचलन के प्रमाण** 77–81
    डॉ. सीमा मीणा, चित्तौड़गढ़
17. **प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं शैक्षिक प्रकल्प** 82–89
    पवन कुमार, मुजफ्फरपुर (बिहार)
18. **भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बीकानेर के प्रमुख पुष्करणा ब्राह्मणों का योगदान** 90–96
    डॉ. मुकेश हर्ष, बीकानेर

19. **सांचौर का वीरवर शासक राव बलभद्र चौहान (बल्लू चौहान)** 97–100
इन्दु, जोधपुर

20. **बिहार में सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव** 101–105
नागेश्वर कुमार, दयालपुर (बिहार)

21. **डॉ. एम. आर. जयकर एवं संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव** 106–111
डॉ. दिनेश कुमार गहलोत, जोधपुर

22. **भारतीय पुनर्जागरण में स्वामी विवेकानन्द का योगदान** 112–115
राजेन्द्र कुमार, मुजफ्फरपुर (बिहार)

23. **करौली के मीणाओं में नारी लोकगीतों की सामाजिक चेतना** 116–119
रामावतार मीणा, छबड़ा

24. **राजस्थान के आदिवासी** 120–126
डॉ. मीनाक्षी मीणा, जोधपुर

25. **वैश्विक स्तर पर महात्मा गांधी के विचारों का प्रभाव** 127–131
डॉ. दिनेश कुमार सेवग, बीकानेर

26. **लोकधर्मी गीत–परम्परा में नारी शक्ति का योगदान** 132–134
डॉ. यज्ञेश नारायण पुरोहित, बीकानेर

27. **लिंग चयन–अदृश्य अपराध** 135–139
डॉ. संदीप पुरोहित एवं स्वाति, जोधपुर

28. **Relationship of Television Viewing with Senior Secondary Student's Achievement** 140-146
Dr. Renu Rawat, Haldwani (Uttrakhand)

29. **A Study of Adjustment of Secondary School Teachers in Relation to their Emotional Intelligence** 147-151
Dr. Umender Malik, Rohtak (Haryana)

30. **Gender Discrimination: Consequences and Security Policy** 152-156
Dr. Suman Maurya, Jaipur

31. **Aspects of Human Trafficking in India: An Analytical Study in the context of Human Rights** 157-164
Dr. Vinod Kumar Sharma, Paota (Kotputli)

32. **Curriculum and Pedagogy in the Preschool Classrooms in the Light of NEP 2020** 165-171
Dr. Zeba Tabassum, New Delhi

33. **Good Governance and Supreme Audit Institutions of India** 172-177
Dr. Supriya Sharma, Jaipur

34. **Delhi Sultans and Peasants of North India [1300-1526]** 178-185
Bindu Rajput, Jammu

35. **Marital disharmony and shattered soul in the novels of Shobha De** 186-189
Bhoopendra Kumar Tripathi & Dr. Pankaj Dwivedi, Sagar (Madhya Pradesh)

36. **Impact of Pandemic on Society and Social Relation** 190-196
Maneesha Vishwakarma, Jodhpur

37. **Indus Water Treaty-the Future In Weaponising Water** 197-202
Dr. Padmashree Pattnaik, Jaipur

38. **The Role of Intellectual Property Rights in Promoting Company and Ecosystem-level Innovation** 203-208
Dr. Laxman Dhaked, Karauli

कौटिल्य का अर्थशास्त्र : प्राचीन भारत का एक शोध ग्रन्थ (थीसीस)

डॉ. दिनेश कुमार चारण
एसो. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राज. लोहिया महाविद्यालय, चूरू

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सारांश – दुनिया भारत को एक निर्धन एवं अशिक्षित देश के रूप में जानती है। यूरोप कहता है कि भारत पिछड़ों, सपेरों और जादू–टोनों का देश है। यह घोषणा, यूरोपियन के भारत आगमन के बाद हुई। प्रश्न यह है कि यदि इस भूमि पर दरिद्रता का वास था तो अंग्रेज यहाँ कोई पैकेज देने आए थे क्या ? वास्तविकता सब जानते हैं। सत्य तो यह है कि उनके स्वार्थ–लालच और दोहन से ही भारत की सेहत बिगड़ी... अन्ततः बदहाल हुई। आजादी के बाद सरकार में बैठे लोगों की नीति भी अंग्रेजों की अनुगामी रही, वे सम्पन्न होते गए और देश निर्धन! यह सर्वविदित है कि प्राचीन काल में भारत एक समृद्ध देश था और कला–विज्ञान में सर्वश्रेष्ठ। तभी तो यहाँ के असंख्य महान् ऋषि–दार्शनिक–विचारक–वैज्ञानिक और विशेषज्ञ आज भी चमत्कृत करते हैं, उन्हीं में से एक है – आचार्य कौटिल्य। आपके ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' से सभी परिचित है। यह ग्रंथ श्लोकों का संकलन मात्र नहीं है अपितु एक शोध ग्रंथ है। जिसे वर्तमान में 'थीथीस' कहा जाता है।

संकेताक्षर : *कौटिल्य, अर्थशास्त्र, शोध ग्रंथ, थीसीस।*

आधुनिक काल में दुनिया में असंख्य विश्वविद्यालय एवं शोध–केंद्र है, जहाँ निरन्तर शोध होता है। लाखों शोधार्थी अपनी मेहनत से शोध ग्रंथ लिखते हैं और प्रकाशित किए जाते हैं। प्राचीन भारत में ईसा से भी शताब्दियों पूर्व व्यापक शोध एवं लेखन होता था, उन्हीं में से एक है आचार्य कौटिल्य का महान् ग्रंथ – 'अर्थशास्त्र'। मेरे शोध पत्र का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि हमारे देश के प्राचीन काल में जो ग्रंथ लिखे गए वे मात्र काल्पनिक नहीं थे अपितु वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर लिखे गए शोधग्रंथ थे।

शोध–प्रविधि :– लेखक ने ईसा से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व उसी शोध–प्रविधि का प्रयोग किया है, जिसका प्रयोग आधुनिक काल में समाज–विज्ञान के अनुसंधान में होता है। इस आशय की जानकारी अध्येता को 'अर्थशास्त्र' के प्रथम अध्याय में ही प्राप्त हो जाती है। इस अध्याय में आचार्य कौटिल्य ने विद्या–विषयक विचारों पर चर्चा की है। उन्होंने पहले पूर्व–प्रचलित अवधारणाओं का उल्लेख किया है, जिसमें मनु, बृहस्पति, शुक्राचार्य के विद्या–विषयक मतों के अनुशीलन–विषलेषण के पश्चात् कौटिल्य ने अपना निष्कर्ष दिया है। कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कोणपदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्तीपुत्र, भीष्म, आंभ सहित अनेक प्रतिष्ठित आचार्यों के शोध व रामायण–महाभारत जैसे ग्रन्थों से सामग्री ली है तथा यथा–स्थान संदर्भ सहित समुचित वाद–प्रतिवाद के पश्चात् ही आचार्य कौटिल्य ने निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं।

विषय विस्तार :– ऐतिहासिक दृष्टि से कौटिल्य ई.पू. चौथी सदी के आचार्य हैं। विश्वप्रसिद्ध तक्षशिला विश्वविद्यालय के शिक्षक (प्रोफेसर) कौटिल्य की गणना समकालीन भारत के महानतम आचार्यों में की जाती थी। उन्हें समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति, अर्थ, विज्ञान आदि के साथ ही शस्त्र विद्या का असाधारण ज्ञान था। उनका प्रमुख एवं प्रिय कार्य अध्यापन था, किंतु परिस्थितियों ने उन्हें सक्रिय राजनीति में भाग लेने के लिए बाध्य किया और अपनी प्रतिभा के बल पर वे तत्कालीन भारतीय राजनीति की धुरी सिद्ध हुए। आचार्य कौटिल्य ने नंदवंश के अत्याचारी शासन को समाप्त कर चातुरन्त राज्य की स्थापना की, चन्द्रगुप्त मौर्य का राजतिलक किया। इसके बाद आक्रमणकारी विदेशी सेनाओं का प्रतिकार करके उन्हें बाहर निकाला व आन्तरिक शांति स्थापित करके उन्होंने सर्वथा निरापद, स्थायी और सुरक्षात्मक राज्य की नींव डाली जिस पर अन्य हिन्दू राजा शताब्दियों तक शासन करते रहे। इस महान सफलता का

रहस्य कौटिल्य के महान ग्रंथ ''अर्थशास्त्र'' में सुरक्षित है।[1]

अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय राजनीति है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में मुख्यतः राजनीतिक समस्याओं का विवेचन तथा समाधान प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त राजनीति, अर्थ, दर्शन, नीति, समाज, शिक्षा, सैन्यविद्या, यौनविद्या, भूगर्भविद्या, अभियान्त्रिक विद्या एवं रसायन आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। अर्थशास्त्र के प्रारम्भ में अधिकरण योजना का संक्षेप में विवरण दिया हुआ है। आचार्य कौटिल्य ने ग्रंथ के प्रारम्भ में विषय-सूची देते हुए लिखा है कि 'अर्थशास्त्र' में पन्द्रह अधिकरण, एक सौ पचास अध्याय, एक सौ अस्सी प्रकरण और छः हजार श्लोक है।[2] वे आगे लिखते हैं कि[3] –

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिचितम्।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्फ ग्रन्थविस्तरम्।।

अर्थात् इस ग्रंथ में तत्त्वार्थ और पदों का प्रयोग किया गया है। व्यर्थ विस्तार से यह ग्रन्थ सर्वथा मुक्त है। सामान्य बुद्धि व्यक्ति भी इसे भली-भांति समझ सकते हैं। इस ग्रन्थ के रचयिता कौटिल्य है।

अर्थशास्त्र के पहले अधिकरण के छठे अध्याय में 'इन्द्रिय-जयः अरिषड्वर्गत्याग' में कौटिल्य लिखते हैं कि–

तद्विरुद्धवृत्तिवश्येन्द्रियचातुरन्तोऽपि
राजा सद्यो विनश्यति[4]

शास्त्रविहित कर्त्तव्यों के विरुद्ध अनुष्ठान करने वाला, इन्द्रिय-लोलुप राजा, सम्पूर्ण पृथिवी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसके संदर्भो में आचार्य ने लिखा है कि भोज वंश का राजा दाण्डक्य सपरिवार व राज्य सहित नष्ट हो गया है क्योंकि उसने काम-वश होकर ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया था और कन्या के पिता ने शाप दिया था। यही स्थिति विदेह के राजा कराल की भी हुई। जनमेजय भी ब्राह्मणों कलह कर बैठा। लोभी राजा पुरूरवा प्रजा के शाप से मर गया क्योंकि वह धन का अपहरणकर्ता था। अभिमानी रावण पर-पत्नि के अपहरण के अपराध से और दुर्योधन अपने भाइयों को राज न देने के अन्याय से मारे गए।[5] इस प्रकार कौटिल्य ने इन्द्रिय-लोलुप राजाओं के अनेक उदाहरण देकर अपने इस मत की पुष्टि की है कि ऐसे राजा शीध्र ही नष्ट हो जाते हैं।[6]

आगे अर्थशास्त्र का एक अन्य श्लोक –

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः[7]।।

अर्थात् राजा को चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवहेलना न करे। उसके लिए परमावश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे किंतु उन्हें अपना मंत्री कभी भी न बनाए। इस श्लोक में कौटिल्य ने अमात्य नियुक्ति की पात्रता बताई। पंरतु उससे पहले उन्होंने भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कोणपदन्त वातव्याधि आदि आचार्यों द्वारा बताए गए पात्रता-नियमों का उल्लेख करते हुए उन्हें अस्वीकृत करने के कारणों को स्पष्ट किया। तदुपरान्त अपना मत प्रकट किया।

मंत्रियों की संख्या के विषय में कौटिल्य लिखते हैं कि –

त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं।
कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम्[8]।।

अर्थात् तीन या चार मंत्रियों के सलाहकार होने पर, इस प्रकार का कोई भी अनर्थकारी बड़ा दोष कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता और यदि दोष उत्पन्न भी होता है तो धीरे-धीरे होता है। कौटिल्य ने यह निष्कर्ष भी पूर्व आचार्यों भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, नारद, मनु, बृहस्पति और शुक्राचार्य आदि के मंत्री-परिषद विषयक विचारों पर चर्चा के बाद प्रस्तुत किया है।

कौटिल्य ने राजा की जीवन-रक्षा विषय पर लिखा है कि[9] –

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यच
पूर्व दारेभ्यः पुत्रेभ्यच।।

अर्थात् अपने पुत्रों से आत्मरक्षा करने के लिए राजा को चाहिए कि वह जन्म से ही राजपुत्रों पर कड़ी निगरानी रखे, क्योंकि केकड़े की भांति राजपुत्र भी पिता के भक्षक होते हैं। कौटिल्य ने इस विषय पर पूर्व आचार्यों भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कोणपदन्त, वातव्याधि, आंभ आदि सभी के विचारों पर विमर्श के पश्चात् टिप्पणी में लिखा है कि जिस प्रकार घुण लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार अशिक्षित व कुसंस्कारित राजकुमारों का कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए जब रानी ऋतुमती हो तो संतान की विद्या, बुद्धि व ऐश्वर्य के निमित्त ऋत्विक, इन्द्र और बृहस्पति आदि देवताओं के लिए हविदान किया जाए। जब महारानी गर्भवती हो तो कौमारभृत्य अंग के ज्ञाता शिशु-चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखपूर्वक प्रजनन के लिए यत्न किया जाए।[10] राजकुमार के जन्म के बाद विद्वान पुरोहित से विधि-पूर्वक संस्कार करके

विभिन्न विशेषज्ञ आचार्यों से शिक्षित-प्रशिक्षित किया जाये।[11] कौटिल्य की दृष्टि से इस प्रक्रिया से तैयार राजकुमार धोखा नहीं देते हैं।[12]

राज-कार्मिकों के अपराध के दण्ड-विषयक पूर्व प्रचलित मतों की चर्चा के बाद कौटिल्य लिखते हैं कि दण्ड, अपराध के अनुसार होना चाहिए।[13]

अर्थशास्त्र के एक श्लोक के अनुसार

पर्युषितः कलहोऽनुप्रवेशो वा नाभियोज्य इत्याचार्याः।
नास्त्यपकारिणो मोक्ष इति कौटल्यः[14]।।

अर्थात् पुरातन आचार्यों का कहना है कि बहुत पुराने विवादों और चोरियों पर मुकद्मा दायर नहीं किया जाए किन्तु आचार्य कौटिल्य का मत है कि अपकारी व्यक्ति को कभी न छोड़ा जाए। इसके अगले श्लोक में पूर्व आचार्यों की राय लिखी है कि जो पक्ष अपना विवाद न्यायालय में पहले प्रस्तुत करे, निर्णय उसी के पक्ष में दिया जाना चाहिए।[15] पूर्व मतों के अध्ययन के बाद कौटिल्य का मत है कि निर्णय, साक्ष्यों के आधार पर ही किया जाए।[16]

अर्थशास्त्र में एक स्थान पर विमर्श के पश्चात् कौटिल्य का शत्रु राजा के विषय में एक विचार[17]

नेति कौटिल्यः-नित्यामित्रालाभे
भूयाश्छत्रुलाभो भवति।
नित्यच शत्रुरुपकृते चापकृते च शत्रुरेव भवति।
अनित्यस्तु शत्रुरुपकारादनपकाराद्वा शाम्यति।

अर्थात्, कौटिल्य पूर्व स्थापित मत को अस्वीकार करते हुए लिखते हैं कि नित्य शत्रु की भूमि लेने से शत्रुता बहुत बढ़ जाती है, क्योंकि जो नित्य शत्रु है। उसका उपकार किया जाए या अपकार; वह रहता शत्रु ही है। किन्तु अनित्य शत्रु का उपकार या अपकार करने पर वह शांत हो जाता है।

अर्थशास्त्र में उल्लेखित पूर्व विद्वानों के मतानुसार लकड़ी और हाथियों के जंगल में से लकड़ियों के जंगल श्रेष्ठ है क्योंकि निर्माण कार्यो में लकड़ी की आवश्यकता तो रहती ही है, साथ ही इसका संचय भी सरलता से किया जा सकता है।[18] लेकिन कौटिल्य इससे असहमत हैं। उनका मानना है कि लकड़ियों के जंगल स्वेच्छा से बनाए जा सकते हैं लेकिन हाथियों के जंगल स्वयं नहीं बनाए जा सकते हैं। शत्रु की सेना को नाश करने वाले साधनों में हाथी प्रमुख साधन है। इसलिए हाथियों के जंगल ही श्रेष्ठ हैं।[19] इसी प्रकार पूर्वाचार्यो का मत है कि द्वैराज्य (जिस राज्य के दो राजा हो) शीघ्र ही नष्ट हो जाता है[20] किन्तु कौटिल्य कहते हैं कि -

नेति कौटिल्यः। पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं
तुल्ययोगक्षेममात्यावग्रहं वर्तयेतेति[21]।

अर्थात्, पूर्व मतों के खण्डन के पश्चात् कौटिल्य कहते है कि 'क्योंकि पिता, पुत्र तथा दो भाईयों में दायभाग संबंधी विरोध के कारण ही द्वैराज्य की स्थापना होती है, जिसमें दोनों शासकों का योग-क्षेम समान होता है; उनके अमात्यों द्वारा दोनों शासकों का पारस्परिक वैमनस्य शांत हो सकता है।[22] अर्थशास्त्र के इसी अध्याय में अन्धशास्त्र (जिस राजा ने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है) और चलित शास्त्र (शास्त्रज्ञानी होने पर भी तदनुसार आचरण न करने वाला) के विषय में चर्चा की गई है। पुरातन व्यवस्थाकार मानते हैं कि शास्त्र-रूपी चक्षुओं से हीन अन्धा राजा बिना विचारे कार्य करने या हठ या परबुद्धि वश होकर राज्य नष्ट कर डालता है जबकि चलितशास्त्र राजा को अनुनय-विनय के द्वारा रोका जा सकता है। इसलिए अन्धशास्त्र से चलितशास्त्र राजा उत्तम है।[23] जबकि कौटिल्य का मत है कि अन्धे राजा को अमात्य आदि की हितकर बुद्धि से स्वेच्छया सद्मार्ग पर लाया जा सकता है किन्तु चलितशास्त्र राजा को शास्त्र-विरूद्ध कार्य करने में अपनी हठ-वादिता के कारण अन्याय से स्वयं और अपने राज्य को नष्ट कर डालता है।[24]

कौटिल्य शिक्षा के हिमायती थे। उन्होंने भारद्वाज, विशालाक्ष और पराशर के विचारों के अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष दिया कि[25] -

अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः।
अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति।।

अर्थात्, अशिक्षित व्यक्ति व्यसनी हो जाते हैं, क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति व्यसनों से पैदा होने वाले दोषों को समझ नहीं पातें हैं।

कौटिल्य एक स्थान पर पूर्व आचार्यों के मतानुसार लिखते हैं कि युवराज-बिहार(युवराज की कुसंगति) और रानी-विहार में से युवराज-विहार अधिक हानिकारक है क्योंकि युवराज अपने चाटुकारों की सलाह पर प्रजा को पीड़ित कर डालता है जबकि रानी केवल विलासिता पर ही अपव्यय करती है। इस विमर्श के बाद कौटिल्य मत रखते हैं कि[26] -

शक्यः कुमारो मंत्रिपुरोहिताभ्यां

वारयितुं न सुभगा,
बालिश्यादनर्थ्यजनसंयोगाच्चेति।

अर्थात्, कौटिल्य मानते हैं कि युवराज को इस प्रकार से अनर्थकारी कार्यो से अमात्य आदि रोक सकते हैं,

किन्तु रानियों के विषय में यह नहीं हो सकता है क्योंकि उनमें प्राय मूर्खता अधिक होती है फिर अनर्थकारी संगति के कारण उन्हें समझाना बहुत कठिन होता है।

अर्थशास्त्र के एक श्लोक में प्राचीन विचारकों में से किसी ने शक्ति को प्रमुख माना है तो किसी ने देश या काल को। कौटिल्य ने अन्त में लिखा है कि[27] –

नेति कौटिल्यः
परस्परासधका हि शक्तिदेशकालाः।

अर्थात्, उक्त मतों को अस्वीकार करते हुए लिखते है कि शक्ति, देश और काल तीनों ही प्रबल और एक दूसरे के प्रेरक है।

प्राचीन आचार्यों के अनुसार ब्राह्मण–सेना श्रेष्ठ होती है।[28] इस पर कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि[29] –

नेति कौटिल्यः प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहारयेत्।
प्रहरणविद्याविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः,
बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति।

अर्थात्, कौटिल्य का मत है कि शत्रुपक्ष, ब्राह्मण–सेना के समक्ष सिर झुकाकर उसे अपने वश में कर लेता है। इसलिए युद्ध–विद्या में निपुण क्षत्रिय सेना ही श्रेष्ठ समझनी चाहिए। वीर–पुरूषों से युक्त वैश्य–सेना और शूद्र–सेना को भी श्रेष्ठ समझना चाहिए।

निष्कर्ष :– इस प्रकार सम्पूर्ण 'अर्थशास्त्र' का अध्ययन करने से अध्येता को यह ज्ञात हो जाता है कि ग्रंथकार आचार्य कौटिल्य एक बड़े स्कॉलर थे। जिन्होंने अपने लेखन में आज से 2300–2400 वर्ष पूर्व उस प्रक्रिया का प्रयोग किया, जिसके प्रयोग से आधुनिक काल में रचित कोई ग्रन्थ 'शोधग्रन्थ' की उपमा प्राप्त करता है। आचार्य कौटिल्य द्वारा 'अर्थशास्त्र' के लेखन में जिन मानकों का प्रयोग किया, उनका प्रयोग वर्तमान में एक स्वतंत्र लेखक नहीं कर पाता है। 'अर्थशास्त्र' की लेखन विद्या आज केवल पीएच.डी एवं डीलिट की थीसीस में ही प्रयोग की जाती है। मेरे इस शोध पत्र से मैं यही सिद्ध करना चाहता हूँ। जिसके प्रबल प्रमाण के रूप में अर्थशास्त्र का अन्तिम श्लोक –

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तचकार सूत्रं च भाष्यं च।।

अर्थात्, प्राचीन अर्थशास्त्रों में बहुधा भाष्यकारों के मतभेदों को देखकर स्वयं ही विष्णुगुप्त कौटिल्य ने इस अर्थशास्त्र के सूत्रों और उनके भाष्य का निर्माण किया है। और अन्त में यह कहना चाहता हूँ कि उस समय और उससे भी पहले भारत में असंख्य ग्रन्थ ऐसे थे जो आधुनिक काल में शोध ग्रन्थ कहलाते है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *चारण, डी.के. – कौटिल्य के अर्थशास्त्र का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, जोधपुर, 2020, पृ.स. 16*
2. *गैरोला, वाचस्पति – कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् (हिन्दी व्याख्या), वाराणसी, 2011, प्रकरणाधिकरण–विभाजन*
3. *पूर्वोक्त – प्रकरणाधिकरण–विभाजन*
4. *पूर्वोक्त – पहला अधिकरण/पांचवाँ अध्याय*
5. *Shamasastry.R & Kautiliya Arthasastra (English Translation) Varanasi, 2014, 1/6*
6. *शास्त्री, उदयवीर – कौटलीय अर्थशास्त्र (हिन्दी अनुवाद सहित), दिल्ली, 1969, प्रथम भाग 1/6*
7. *गैरोला वाचस्पति – पूर्वोक्त, 1/7*
8. *पूर्वोक्त – 1/16*
9. *पूर्वोक्त – 1/16*
10. *पूर्वोक्त – 1/16*
11. *पूर्वोक्त – 1/16*
12. *पूर्वोक्त – 1/16*
13. *पूर्वोक्त – 2/7*
14. *पूर्वोक्त – 3/19*
15. *पूर्वोक्त – 3/19*
16. *पूर्वोक्त – 3/19*
17. *पूर्वोक्त – 7/10*
18. *पूर्वोक्त – 7/11*
19. *पूर्वोक्त – 7/11*
20. *पूर्वोक्त – 8/2*
21. *पूर्वोक्त – 8/2*
22. *पूर्वोक्त – 8/2*
23. *पूर्वोक्त – 8/2*
24. *पूर्वोक्त – 8/2*
25. *पूर्वोक्त – 8/3*
26. *पूर्वोक्त – 8/4*
27. *पूर्वोक्त – 9/1*
28. *पूर्वोक्त – 9/2*
29. *पूर्वोक्त – 9/2*

सूरजपाल जी की कहानियों में दलित जीवन का जीवंत चित्रण

डॉ. संध्या एस
अतिथि अध्यापिका, एस डी कॉलेज, आलप्पुषा (केरल)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

दलित कहानी स्वानुभूति का है इसलिए उसमें अनुभव की तीव्रता है । यह मात्र भी नहीं उसमें दलित मानसिकता का स्पष्टीकरण भी हम देख सकते हैं। दलित मानसिकता समता की है। दलितों को हर क्षेत्र में उन्नति की ओर ले जाना चाहती है। दलित लोग जो है सदियों से उत्पीड़ित, शोषित एवं अत्याचार सहकार जीने केलिए मजबूर हुए है। आज तो ज़माना बदल गया। अपनी ओर होने वाले अत्याचारों की ओर वे सजग हो गए है। दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठकों को सजग करने में माहिर हुए है। दलितों को मुख्य'धारा में लाने के कोशिशों के साथ ही उनके प्रति जो मानसिकता है उसमें बदलाव जाना अनिवार्य है। प्रस्तुत शोध आलेख में मशहूर साहित्यकार सूरजपाल चौहान जी की कहानियों में दलित जीवन का जीवंत चित्रण पर विचार करने की कोशिश की है।

संकेताक्षर : *दलित उत्पीड़न व शोषण, जाति-प्रथा, जातिवादी मानसिकता, वर्ण व्यवस्था, शोषण को नियति मानकर जीना, दलितों का आत्म सम्मान, दलित विद्रोह व प्रतिरोध, दलित स्त्री का शोषण।*

दलित शब्द जो है समाज के निम्न दबके के लोगों की ओर इशारा करने वाला शब्द है। पुराने ज़माने से समाज में जाति-प्रथा कायम थी। भारत वर्ण व्यवस्था का देश है। यहाँ का मानना है कि ईश्वर ने मनुष्य को चार वर्गों में विभाजित करके प्रस्तुत किया है। इतिहास से पता चलता है कि वैदिक काल में इस प्रकार की वर्ण व्यवस्था नहीं था सब समान थे । आगे चलकर मनुष्य ने ही इस प्रकार की व्यवस्था बनायी है। जातिभेद एक सामाजिक विकृति ही है। जाति -भेद की भीषणता को भोगनेवाला सचमुच समाज के निम्न जाति के लोग ही हैं। दलित लोग सदियों से उत्पीड़ित, उपेक्षित एवं शोषित वर्ग हैं। उन्हें शिक्षा के अधिकार से, धन-धरती के अधिकार से वंचित रखा गया हैं । दलित साहित्य जो है वास्तव में दलितों के आत्म पहचान का साहित्य ही है । इसके मूल में विद्रोह की भावना है। समय बदलने के साथ दलितों की मानसिकता पर भी हम बदलाव देख सकते हैं। वे लोग अपने अधिकार के प्रति या अस्मिता के प्रति सजग हो रहे हैं। दलित साहित्यकार जो है अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों पर जागृति पैदा करने का काम कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप अवर्णों ने संगठित होकर इस अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाई । इसका परिणाम है आज का दलित साहित्य।

सूरजपाल चौहान समाज और काल पर पकड़ रखानेवाले विलक्षण रचनाकार है। दलित साहित्य के भीतर उन्हें प्रसिद्धि 'तिरस्कृत और संतप्त' आत्मकथा लिखने से मिली थी। सन् 2002 में उनकी आत्मकथा 'तिरस्कृत' भावना प्रकाशन गाजियाबाद से प्रकाशित हुई थी। हिन्दी दलित आत्मकथा के तहत यह तीसरी आत्मकथा थी। सन् 1992 में सूरजपाल चौहान ने अपनी पहली कहानी 'घाटे का सौदा' लिखी थी। सुरजपाल की कहानियां दलित समाज के दुरुख- दर्द को बड़ी मार्मिकता के साथ पाठकों के सामने लाने की कोशिश की है। वे दलित विमर्श को गति देने केलिए अनेक वैचारिक लेख लिखे थे । उनके वैचारिक और आलोचनात्मक लेखों की किताब 'समकालीन हिन्दी दलित साहित्य - एक विचार विमर्श' सन् 2017 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुई थी। उनके प्रमुख कहानी संकलन है दृ 'हैरी कब आएगा', 'नया ब्राह्मण' और 'धोका' ।

सूराजपाल जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलितों की सामाजिक स्थिति पर भी विचार किया है। उनकी 'बदबू' कहानीशिक्षा से वंचित दलित स्त्री की मानसिकता को दर्शाया है ।कहानी के मुख्य पात्र का नाम संतोष है, वे पढ़ी-लिखी दलित लड़की है, सत्रह वर्ष की आयु में उनका विवाह हो गया है। पढ़ने में बहुत होशियार लड़की थी आगे भी पढ़ना वे चाहती थी। घरवाले उसे आगे पढ़ाना नहीं चाहते थे।मगत राम ने किशोरिया से कहा ''किशोरिया, तेरी छोरी पढ़ने में होशियार है, पूरे स्कूल में अव्वल आई है, मेरे छोरी के संग उसे भी शहर भेज डे, उसके रहने और पढ़ाई का खर्च भी मैं देता रहूँगा, बस तू एक बार कर दे।"[1] दलित समाज में लोग लड़कियों को ज्यादा पढ़ाना नहीं चाहते ज्यादा पढ़ने से वर न मिलने की संभावना है। इसलिए संतोष के पिता किशोरी अपनी लड़की को पढ़ना नहीं चाहता। किशोरिया पर मंगतराम की बातों का कुछ असर नहीं पड़ता। बदले में वे कहते है कि ''तुम ऊँची जाती के लोग हो अपनी जवान होती बेटियों को शहर जाकर पढ़ने भेज सकते हो, मैं ऐसा करूँगा तो समाज में मेरे नाक कट जाएगी, बिरादरी के सभी लोग ताली देकर हँसेंगे और कहेंगे कि विवाह योग्य लड़की को शहर पढ़ने भेज दिया...नया, मैं तो अब इसके हाथ पीले करके बेटी-ऋणसे मुक्त होना चाहूं।"[2] घरवालों की मानसिकता संतोष का विवाह शीर्घ करने में आतुर थे। ''मुझे दूसरों से क्या, दूसरे अपनी बेटियों को कहीं भी पढ़ने भेजें, मैं नया भेजने का इसे इतनी दूर, फिर हमने संतोष को आगे पढ़ा-लिखाकर कौन सा कलक्टर बनाना है।"[3] घरवालों की इच्छा से सतोष का विवाह रजिंदर नामक सफाई कर्मचारी से होता है। उसकी सास शकरपुर व लक्ष्मीनगर के इलाके में मोहल्ले कमाने का काम करती थी। परिवार के सभी लोग यह काम करते थे। बाद में संतोष को भी काम कराने केलिए प्रेरित करती है। वे पहले काम करने से इनकार करती है तब सास कहती है कि ''अब कितने दिन नई नवेली दुल्हन बनकर घर में बैठी रहेंगी .... कल से मेरे साथ मोहल्ले कमाने चला कर।"[4] इस प्रकार संतोष भी काम करने केलिए मजबूरी वश जाती है फिर भी मन ही मन कूढ़ जाती है। सास के साथ वह पहले दिन काम पर गई तो मल-मूत्र से उसके कपड़े भींग गए। घर आते-आते उसे उबकाई आने लगी। वह साबुन मल-मलकर नहाती रही, लेकिन गंध न जाए। बदबू जैसे मन में घुस गई थी। खाते-पीते बदबू मंडराते रही। सतोष तो सास के साथ रोज काम पर जाने लगी लेकिन बदबू का एहसास कम नहीं हुआ। हर कहीं उसे बदबू का एहसास होता है। पति के साथ सोते वक्त भी वे ऐसा सोच लेती है चारों ओर बदबू से घेर कर लेट रही है। ये तो असल में उनकी विद्रोह ही है ।उसकी नैसर्गिक संवेदना तक मर गई। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मैला ढोने की प्रथा नगरीकरण का अभिशाप है। कितने जीवट वे लोग होते हैं जो इन अमानवीय परिस्थितियों में जीने के बावजूद अपने को इंसान बनाए रखते है। दलित होने के नाते ये काम करने केलिए वे लोग विविश हुए है।

दूसरी कहानी 'नया ब्राह्मण' के पात्र दलित होने के बावजूद अवसरवादी भी है। इस कहानी में 'मंगलू' को दलित ब्राह्मण बनाते दिखाया गया है। जिसे सूरजपाल जी 'नया ब्राह्मण' नाम से संबोधित किया हैं। जगमेर से मंगलू कहता है, ''मैं तो यहाँ तक अपनी मेहनत से पहूँचा हूँ, बाबा साहेब आसमान से उतरकर मुझे नौकरी देने नहीं आए, आर कैसे बाबा काहे का बाबा''[5] मंगलू जो है एक अवसरवादी है, जो स्वयं तो आरक्षण का लाभ उठाकर उच्च जीवन को जी रहा है। दलित समाज में भी ऐसे ढेर सारे चरित्र मिल जाएंगे जो अपनी पहचान छुपाकर स्वयं को ब्राह्मणों के समान श्रेष्ठ समझते है। जिस समाज में जन्म लेते हैं उसी समाज से दूरी बनाने लगते है। ऐसे एक व्यक्ति है 'मंगलू'। वह अपने बिरादरी वालों से हमेशा दूर रहना चहाता है। लेखक कहता है कि ''मंगलू अपने परिवार के सदस्यों से भी दूरी बनाकर रहने लगा था। छोटी और बड़ी दोनों बहनें उसे तनिक न भाती। तीज-त्योहार वाले दिनों में जब वे अपनी ससुरालों से मंगलू के घर आती तो वह भृकुटि तानकर कहता ऐ कैसी चली आई तुम मेरे घर भिखारिन सी।"[5] उसे अपनी पत्नी 'कमली' भी अच्छी नहीं लगती। जब किसी समाज का व्यक्ति आर्थिक रूप से संपन्न हो जाता हैतब वह एक सामंत के समान दूसरों से व्यवहार करना चाहता है। मंगलू अब आर्थिक रूप से संपन्न है इसलिए उसे इस आर्थिक संपन्नता के कारण मन में निम्नता एवं उच्चता का बोध आ गया है। हालांकि जाति उसका कभी पीछा नहीं छोड़ती है। सूरजपाल जी उसे नया ब्राह्मण कहते हैं। यह जाति आधारित शोषण का नया रूप है। जिसमें जो पहला भोक्ता था अब वह शोषणकर्ता हो रहा है।

अन्य कहानियों जैसे- तीन चित्र, सारे जहाँ से अच्छा, कारज, बस्ती के लोग, एलिजाबेथ, जाती, दो रंगरू एक भद्दा मज़ाक और झूठ के दो चेहरे आदि में भी

दलित जीवन की विविध झाँकियाँ हमें मिलता है। इन सारी कहानियों में सरकारी आफिसों में कार्यरत भंगी जाती के पुरुषों की कथाएँ है जिन्हें 'दलित' कहा जाता है। दलित जाति होने के कारण नीच भी समझा जाता है। 'बाबूजी फिर कब आऊं' शरणार्थी स्त्री 'तसलीम' की कथा है। यह औरत पालीथीन बीनने का काम करती है और रोज उसके घर के सामने पड़े कचडे में पालीथीन को उठाती थी। ''दीपक बंगला देश की थी, वह तसलीम था उसका नाम"[6] जिसके शरीर का भोग तो कर सकते हैं लेकिन उसके हाथ का बना हुआ खाना नहीं खाते। उनके साथ विवाह नहीं कर सकते। यह कैसी विडंबना है? दलित स्त्रियों पर भी शोषण ज्यादातर होते हैं। दलित होने से उसे दोहरा शोषण सहना पड़ता है। दलित नारी के संदर्भ में समस्या अधिक है, उसको हर समय दैहिक शोषण का शिकार बनना पड़ता है।

'मंगल पांडे का लोटा' एक ऐतिहासिक सूत्र को लेकर रची गई कहानी है। यह कहानी सन् 1857 ई के स्वतंत्रता संग्राम के दलित महानायक की कहानी है जिसे इतिहासकारों ने छुपा दिया था। वह महानायक 'मातादीन हेला' था। जो कंपनी बहादूर की रेजीमेंट में जहाँ कारतूतों का निर्माण होता था वही काम करता था, और वे पहलवान बनना चाहता है, किन्तु उसे हिन्दुधर्म गुरु पहलवानी नहीं सिखाते है। उसे मुस्लिम गुरु मिल जाता है। वह ताकतवार है। उसके आगे मंगल पाण्डे की ताकत क्षीण है। यह देखकर मंगल पांडे उससे दोस्ती कर लेता है। मातादीन भंगी है। मंगल पांडे के अंदर जाति की उच्चता का बोध हो जाता है। वह मातादीन को नीचा दिखाना चाहता है। मंगल पांडे उसे अपशब्द कहता है पर वह चुप रहता है। वह उससे पानी की माँग करता है, लेकिन मंगल पांडे उसे लोटा छूने नहीं देता। जब मातादीन उसे बताता है कि जिन कारतूतों को तुम प्रयोग करते हो उसमें गाय व सुअर की चर्बी लगी होती है तब मंगल पांडे को काठ मार जाता है उसका मुंह खुला सा रह जाता है। इस कहानी में दलित व्यक्ति की विद्रोही भावना मुखर है।

'बहुरूपिया' नामक कहानी मी माध्यम से लेखक दलित नेताओं की मानसिकता को दर्शाया है। इस कहानी से न सिर्फ वाल्मीकि और जाटों के बीच के जाति भेद का पता चलता है बल्कि दलितों के नाम पर काम कर रही सरकारी अनुदान प्राप्त संस्थाओं के चरित्र का भी पता चलता है।

समग्रता से देखा जाए तो सुरजपाल जी की प्रत्येक कहानी किसी न किसी समस्या को जीवंतता के साथ प्रस्तुत करती है। ये कहानियाँ दलित समाज में फैले जातिवाद को प्रकट करती हैं तथा जाति की सामाजिक पीड़ाव दर्द को सच्चाईके साथ उठाने का प्रयास करती है। वर्तमान समाज में जाति के नाम पर शोषण कुछ कम भी हुआ है, फिर भी पूर्ण रूप से बदला नहीं हैं । जातिवादी मानसिकता के वर्तमान में व्याप्ति के संबंध में सुभाष चंद्र खुशवाहा ने लिखा है रू– ''इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ा भारत का पढ़ा–लिखा तबका जातिवादी मानसिकता से उबर नहीं पाया है। पंजाब, हरियाणा जैसे समृद्ध राज्यों में दलित महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार हो रहे हैं, और पानी माँगने पर पेशाब पिलाया जा रहा है। स्कूलों में मिड डे योजना के तहत दलितों द्वारा पकाया खाना गैर दलित नहीं खा रहे हैं।"[7] दलितों को सामाजिक, आर्थिक विषमताओं से तथा शोषण, उत्पीड़न से मुक्ति चाहिए। आत्मसम्मान के साथ जीने की शक्ति तथा आदमी बनकर जीने का अधिकार चाहिए। यही वास्तव में दलित साहित्य की मूल संवेदना है। सूरजपाल जी अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों को जातिवादी मानसिकता दूर कर समता पर आधारित समाज निर्माण करने केलिए प्रेरित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सूरजपाल चौहान दृ नया ब्राह्मण (बदबू) दृ पृ .15*
2. *वही दृ पृ.16*
3. *वही दृपृ.16*
4. *वही दृपृ.18*
5. *वही दृपृ .62*
6. *वही– 113*
7. *सं. सुभाष चंद्र कुशवाहा दृ जाति दंश की कहानियाँ दृ पृ .13*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में गांधी दर्शन की प्रासंगिकता

डॉ. शशि कान्त बैरवा

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान), गेस्ट फैकल्टी, राजकीय महाविद्यालय, टोडारायसिंह

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख में गांधी दर्शन वर्तमान वैश्विक समस्याओं के निदान का श्रेष्ठ विकल्प है का तुलनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान अस्थिरता के दौर में जहाँ आज सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक मूल्यों का पतन होता चला जा रहा है, वहीं दूसरी और अनेक वैश्विक समस्याओं यथा आतंकवाद, हिंसा, भय, युद्ध का वातावरण, आर्थिक संकट, भ्रष्टाचार, शोषण आदि ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया है। अतः इस संदर्भ में गांधी दर्शन की औचित्यपूर्णता पर विचार मंथन करना आवश्यक प्रतीत होता है। गांधी जी ने सत्य को मनुष्य का पथप्रदर्शक तथा उसकी आत्मा के विकास का आधार माना, अहिंसा को प्रेम की पराकाष्ठा अर्थात् हिंसा का पूर्णतया अभाव माना, अपरिग्रह को आर्थिक ढाँचे का आधार स्तम्भ मानते हुए संसाधनों के अनुचित संग्रह को राष्ट्र के अहित में बताया, न्यासिता के सिद्धान्त के माध्यम से लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त किया, सत्याग्रह के माध्यम से आमजन को सरकार की अनुचित नीतियों का विरोध करने का मार्ग प्रदान किया, सर्वोदय की अवधारणा के माध्यम से 'सर्वजनहिताय' का विचार दिया, गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने हेतु ग्राम-स्वराज की अवधारणा दी, बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त के माध्यम से शिक्षा को रोजगारोन्मुखी बनाये जाने पर बल दिया, राजनीति के आध्यात्मिकरण अर्थात् सत्य, अहिंसा, नैतिकता पर आधारित राजनीति का विचार देते हुए धर्म व राजनीति का अटूट संबंध बताया। इस संदर्भ में गांधी का कथन उल्लेखनीय है कि ''स्वयं में वह बदलाव लाइए जिसकी अपेक्षा आप दुनिया से करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है, कि गाँधी जी ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी सार्वभौमिक क्षेत्रों में आदर्श स्थापित किये इसी कारण उनका दर्शन विश्व शांति का मार्ग प्रशस्त करता है। इसलिए 21वीं सदी में गांधी दर्शन की प्रासंगिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। इस अहिंसावादी युग पुरुष के दर्शन के महत्व को समझकर ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 2007 में एक प्रस्ताव पारित कर उनके जन्म दिवस 2 अक्टूबर को ''विश्व अहिंसा दिवस'' के रूप मे मनाये जाने की घोषणा की गई थी तब से निरंतर 2 अक्टूबर को विश्व अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। अतः यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि गांधी जी, उनके विचार, उनके दर्शन तथा उनके सिद्धान्त कल भी प्रासंगिक थे, आज भी हैं तथा रहती दुनिया तक सदैव प्रासंगिक रहेंगे।

संकेताक्षर : *गांधी दर्शन, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, सर्वोदय, ग्राम स्वराज, सत्याग्रह, न्यासिता, विश्व शांति, वसुधैव कुटुम्बकम्।*

राष्ट्र तथा मानव के सर्वांगिण विकास के लिए शांति और सौहार्दपूर्ण वातावरण होना पहली शर्त है तथा इसके साथ ही किसी राष्ट्र के उत्थान और पतन का इतिहास उसके नागरिकों की नैतिक-चारित्रिक विशेषताओं की सुदृढ़ नींव पर निर्भर करता है क्योंकि इनके अभाव में ना तो मानव और ना ही राष्ट्र उन्नति कर सकता है। किंतु वर्तमान अस्थिरता के दौर में अनेक प्रकार की वैश्विक समस्याओं यथा आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, हिंसा, भूखमरी, गरीबी, बेरोजगारी, चारों ओर अराजकता, युद्ध का वातावरण, शस्त्रों की होड़, सम्प्रभुता का हनन, आर्थिक मंदी, कोविड-19 महामारी जैसी समस्याएं विश्व-शांति के मार्ग में तथा राष्ट्र के उत्थान के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।[1] उपर्युक्त वर्णित समस्याओं का हल इस युग के महान जन- नायक, समाज-सुधारक, स्वतंत्रता आंदोलन के मसीहा, राष्ट्रपिता मोहनदास कर्मचंद गांधी के दर्शन यथा- अहिंसा रूपी शस्त्र

से प्रतिरोध, स्वहित के बजाय परहित को महत्व, स्वयं की अपेक्षा राष्ट्र की चिंता करना, सत्य के मार्ग पर चलना आदि की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक हो जाती है।[2], क्योंकि गांधी जी एक व्यवहारिक पुरुष थे जिन्होंने अपने जीवन में अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वैश्विक समस्याओं पर कई उपयोगी एवं व्यवहारिक विचार दिए तथा साथ ही स्वयं ने भी उन्हें अपने व्यवहारिक जीवन में अपनाकर राष्ट्र निर्माण में एक मिसाल कायम की और जनता से अपील की – सर्वप्रथम विश्व की जनता की नैतिक भावनाओं को जागृत करना होगा, जिस दिन भी प्रत्येक मानव की नैतिक भावना जागृत हो जायेगी उसी दिन इस संसार से हिंसा, युद्ध और शोषण आदि समस्याएं सदा के लिए गायब हो जाएगी और विश्व शांति का सपना साकार हागा।[3]

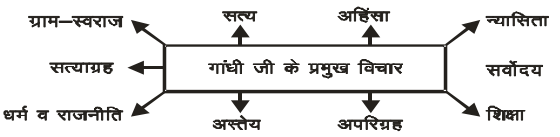

गांधी दर्शन यथा सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि जहाँ मानव के सामाजिक जीवन के नैतिक व आध्यात्मिक पक्षों को रेखांकित करते हैं, वहीं स्वदेशी, स्वराज, न्यासिता, ग्राम–स्वराज आदि अवधारणाएं उसके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पक्षों को इंगित करती है।[4]

गांधी दर्शन : वर्तमान वैश्विक समस्याओं के निदान का श्रेष्ठ विकल्प एक तुलनात्मक अध्ययन

सत्य

सत्य गांधी जी के चिंतन का केन्द्रीय विषय था और उनके अनुसार सत्य वही है जो आपकी आत्मा कहती है। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में सत्य पर विस्तार से चर्चा करते हुए लिखा है कि ''सत्य से अलग कोई ईश्वर नहीं''। उनके अनुसार सत्य एक विशाल वृक्ष के समान है, उसकी ज्यों–ज्यों सेवा की जाती है त्यों–त्यों उसमें अनेक फल आते हुए दिखाई देते हैं।[5] गांधी जी ने सत्य के दो प्रकार स्वीकार किये जिसमें पहला निरपेक्ष सत्य है जिसे उन्होंने पूर्ण, स्वयं में प्रमाणित, सर्वव्यापक, असीमित, अनश्वर बताते हुए ईश्वर की उपमा दी अर्थात् उपर्युक्त गुण केवल ईश्वर में ही होने के कारण उन्होंने कहा '' सत्य ही ईश्वर है''। तथा दूसरा सापेक्ष सत्य है जो कि मनुष्य के लौकिक जीवन से संबंधित होने के कारण देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार इसका साक्षात्कार होता है। सापेक्ष सत्य मानव जीवन में प्रेम के आदर्श को अपनाकर अर्थात् अहंकार से मुक्त होकर प्राप्त किया जा सकता है, इसके महत्व को स्वीकारते हुए कहा कि सत्य का अनुसरण कर मानव जाति अपने कष्टों से मुक्ती पा सकती है, इसलिए उन्होंने सत्य को मनुष्य का पथप्रदर्शक तथा उसकी आत्मा के विकास का आधार माना। वर्तमान में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त स्वार्थ, लोभ, भय, द्वेष, अहंकार, दुराग्रह आदि अवगुणों से मुक्ति गांधी द्वारा बताये गये सत्य के मार्ग पर चल आसानी से प्राप्त की जा सकती है।[6]

अहिंसा

गांधी जी ने अहिंसा को सत्य (साध्य) की प्राप्ति का एक प्रमुख साधन स्वीकारा अर्थात् अहिंसा को सत्य के पश्चात् द्वितीय स्थान दिया। उनके अनुसार अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा न करने तक ही सीमित नहीं है बल्कि अहिंसा का अर्थ है मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणिमात्र के प्रति बुराई का भाव न रखना।[7] अहिंसा का प्रेम, दया, सत्य आदि सद्गुणों से भी घनिष्ठ संबंध है इसलिए गांधी जी ने ''अहिंसा को प्रेम की पराकाष्ठा'' कहा अर्थात् हिंसा का पूर्णतया अभाव''।[8] आज के संघर्षरत विश्व में अहिंसा का विचार अत्यधिक प्रासंगिक है क्योंकि वर्तमान युग में जहाँ सर्वत्र हिंसा, आतंकवाद, भय, युद्ध आदि का माहौल है वहाँ विश्व शांति की कल्पना करना निरर्थक है। विश्व के सम्पूर्ण आर्थिक साधनों का अधिकांश हिस्सा या तो सैन्य शक्ति बढ़ाने में खर्च किया जा रहा है या आतंकवाद जैसी वैश्विक समस्या का सामना करने मे इसलिए आतंकवाद से न केवल एक राष्ट्र प्रभावित है वरन् सम्पूर्ण विश्व प्रभावित हो रहा है।[9] आतंकवाद हिंसा से प्रारम्भ होकर हिंसा पर समाप्त होता है जिसमें राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए सार्वजनिक हिंसा का बर्बर रास्ता अपनाया जाता है जिसमें निर्दोष लोगों को लक्ष्य बनाया जाता है। आतंकवाद एक बीमार समाज का लक्षण है, इसलिए अच्छा यही होगा कि बीमारी की दवा की जाए न कि उसके लक्षण के पीछे भागा जाए। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि दवा करने के स्थान पर इस बीमारी को पैदा होने से ही रोका जाए।[10] आतंकवाद का सामना करने हेतु शस्त्रों की होड़ ने वैश्विक स्तर पर आर्थिक संकट खासतौर से छोटे राष्ट्रों में आर्थिक संकट उभर कर सामने आ रहे हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान में रूस व यूक्रेन के बीच चल रहे विवाद में देखा जा सकता है। दोनों देशों के बीच युद्ध की भयावह स्थिति से यूक्रेन में जो कि रूस

की तुलना में एक छोटा सा राष्ट्र हैं में आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया है।[11] अभी हाल ही में भारत के पड़ौसी देश श्रीलंका में भी आतंकवाद और हिंसात्मक गतिविधियों के फलस्वरूप वहाँ के प्रधानमंत्री महिंदा राजपक्षे को इस्तीफा देना पड़ा। शक्तिशाली देश हिंसा के माध्यम से कमजोर राष्ट्रों पर अपना वर्चस्व बनाये रखने की होड़ में उन्हें आर्थिक संकट रूपी खाई में धकेलते जा रहे हैं, उदाहरणतः रूस द्वारा यूक्रेन व चीन द्वारा ताइवान की सम्प्रभुता पर हमला, श्रीलंका में आर्थिक संकट का उत्पन्न होना आदि इसके दुष्परिणाम हैं।[12] युद्ध, आतंकवाद हिंसा आदि से किसी समस्या का हल नहीं हो सकता बल्कि समस्या और बढ़ जाती हैं अतः अहिंसा के सिद्धान्त के माध्यम से उपर्युक्त वर्णित सम्पूर्ण समस्याओं का निदान करके एक न्याय सम्मत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का निर्माण कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को पुनः जीवित किया जा सकता है तथा विश्व में शांति की स्थापना की जा सकती है। अहिंसा में गांधी जी का अत्यधिक विश्वास उनके इस कथन से प्रकट होता है कि ''यदि एक ओर एक करोड़ व्यक्तियों का समूह हो और दूसरी ओर अहिंसा का सिपाही अकेला ही हो, तो भी वह शस्त्रास्त्रों की हिंसक शक्ति के सामने समर्पण नहीं करेगा'' अर्थात् अहिंसा के सामने सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र निष्प्रभावी और निष्फल होते हैं तथा हिंसा के विभिन्न रूपों (अन्याय, उत्पीड़न, शोषण, भेदभाव, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद) पर अहिंसा की मदद से विजय प्राप्त की जा सकती है।[13]

अस्तेय

अस्तेय का शाब्दिक अर्थ है– चोरी न करना तथा तब तक किसी वस्तु को नहीं लेना जब तक किसी के द्वारा हमको न दे दी जाय। गांधी जी ने अस्तेय का व्यापक रूप में अर्थ बताया कि ऐसी वस्तु का त्याग जिसे व्यक्ति आवश्यकता न होते हुए भी प्राप्त कर रहा है उस व्यक्ति को चोर समझना चाहिए। वर्तमान संदर्भ में अस्तेय नियम का पालन कर कालाबाजारी, लोभ, स्वार्थ आदि समस्याओं का निदान कर राष्ट्र निर्माण में अतुल्य योगदान दिया जा सकता है।[14]

अपरिग्रह

अपरिग्रह अस्तेय का ही व्यापक रूप है जिसका तात्पर्य है कि व्यक्ति को सामाजिक संपदा से उतना ही ग्रहण करना चाहिए जितना की उसकी तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति अनिवार्य रूप से हो जाये। इसका आदर्श है दैनिक उपभोग की वस्तुओं का अनुचित संग्रह रोकना तथा वर्तमान आवश्यकता के अनुरूप संग्रह करना। किन्तु वर्तमान में संसाधनों के अंधाधुन संग्रह की होड़ ने सतत विकास की आवधारणा को मृत पर्याय बना दिया है तथा चारों ओर भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, लोभ का वातावरण उत्पन्न हो गया है, उपर्युक्त समस्या का समाधान गांधी जी के अपरिग्रह सिद्धान्त में निहित है जिसका प्रत्येक प्राणिमात्र पालन कर एक श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।[15]

न्यासिता या ट्रस्टीशिप

गांधी का न्यासिता सिद्धान्त मानव के सामाजिक–आर्थिक पहलु से जुड़ा है, उनके अनुसार न्यासिता सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि जिसके पास धन–सम्पदा है वह उसे अपना समझ कर व्यर्थ खर्च न करे, उसे अमानत समझकर रखे अर्थात् संरक्षक के रूप मे कार्य करे तथा उसे लोक–कल्याण में खर्च करे। यह अमीर लोगों को गरीब लोगों की सेवा करने का एक माध्यम प्रदान करता है जिसके द्वारा वे गरीब व असहाय लोगों की सहायता कर सके। वर्तमान समय में गांधी जी का यह सिद्धान्त ओर अधिक प्रासंगिक हो जाता है जब गरीबी और भुखमरी जैसी वैश्विक समस्याएँ अपना विकराल रूप लिये खड़ी हैं।[16] इसी न्यासिता सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए वर्तमान में भारत सहित पूरे विश्व में कंपनियों, संस्थानों के लिए 'कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी ;ब्ैद्ध' के तहत यह अनिवार्य बना दिया गया है कि वह अपने लाभ का कुछ भाग लोक कल्याणकारी कार्यों में लगाये इसके सकारात्मक परिणाम देखने को मिल रहे हैं और काफी हद तक गरीबी व भूखमरी से निजात पाया जा सका हैं।[17]

सत्याग्रह

मानव भ्रातृत्व की भावना पर आधारित यह सिद्धान्त प्रेम, करूणा, त्याग आदि आदर्शों पर अत्यधिक बल देता है। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है– 'सत्य के लिए आग्रह करना' तथा अपने लक्ष्य पर दृढ़ रहना। गांधी जी के अनुसार ''विरोधी को पीड़ा देकर नहीं, अपितु स्वयं को पीड़ा में डालकर सत्य की रक्षा करना सत्याग्रह है।'' अर्थात् अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ शुद्धतम आत्मबल का प्रयोग करना क्योंकि आत्मबल शारीरिक बल से कई अधिक श्रेष्ठ होता है। गांधी जी का मानना था कि सत्याग्रह रूपी एकमात्र अस्त्र के माध्यम से ही अन्याय, शोषण, अत्याचार आदि का प्रतिरोध संभव है। गांधी ने सत्याग्रह के प्रमुख साधन यथा–असहयोग, सविनय अवज्ञा, हिजरत, उपवास आदि बताये जिनके माध्यम से वर्तमान में राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी

नीतियों, आदेशों से मतभेद की स्थिति में उपर्युक्त साधनों का प्रयोग करना श्रेयस्कर है क्योंकि सत्याग्रह के माध्यम से अपने विरोधी का दिल अपने आचार और अपने आत्मबल की शक्ति से जीता जाता है ना कि हिंसा के माध्यम से।[18] उदाहरण स्वरूप अप्रैल 2011 में एक सशक्त लोकपाल विधेयक के निर्माण की माँग पर सरकारी निष्क्रियता के प्रतिरोध में अन्ना हजारे ने आमरण अनशन शुरू कर दिया था और अहिंसक तरीके से चल रहे इस देशव्यापी जन आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन मिलने के कारण सरकार को जन लोकपाल विधेयक का मसौदा तैयार करने के लिए विवश होना पड़ा और उसके पश्चात ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध पनपता जनआंदोलन मजबूत लोकपाल निर्माण की आशा के साथ समाप्त हुआ।[19]

सर्वोदय

गांधी जी ने पश्चिमी विचारक जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' से व्यक्ति व समाज के हित में व्यक्ति की भलाई सदैव सार्वजनिक भलाई में निहित होती है, एक व्यक्ति का कार्य उतना ही मूल्यवान है जितना नाई का क्योंकि दोनों के कार्य का सामाजिक महत्व समान है और सभी को जीविकोपार्जन का समान अधिकार प्राप्त है आदि विचार ग्रहण किये तथा साथ ही शारीरिक श्रम के महत्व को स्वीकारते हुआ कहा कि मजदूर, शिल्पि, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।[20] अर्थात् सर्वोदय का आदर्श रूप ऐसे वर्गविहिन, जातिविहीन और शोषण मुक्त समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपना सर्वांगीण विकास करने का समान अवसर मिले तथा वर्ण, जाति, लिंग, आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं हो विशेषतया समाज के पिछड़े वर्गों, दलित वर्गों, स्त्रियों, आदिवासी लोगों को गरिमामय जीवन जीने के समान अवसर मिले। रस्किन से प्रभावित होकर गांधी जी ने उनकी पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' को गुजराती में अनुवादित कर 'सर्वोदय' नाम दिया। वर्तमान दौर में पूरा विश्व शोषण रहित, वर्गविहीन, जातिविहीन समाज की खोज में है।[21] जहाँ आज रोहिंग्या तो कहीं शिया और सुन्नी के नाम पर हिंसा तो कहीं जातिय वैमनस्य तो कहीं साम्प्रदायिक हिंसा, धर्म के नाम पर वैमनस्य, एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण किया जा रहा है जिससे समाज में अव्यवस्था फैल रही है। उपर्युक्त समस्याओं के समाधान का श्रेष्ठ विकल्प गांधी की सर्वोदय की अवधारणा में निहित है। इसका अनुसरण कर संपूर्ण विश्व एक परिवार का रूप ले सकता है।[22]

ग्राम–स्वराज

गांधी जी का मानना था कि ''हमारे गांवों की सेवा करने से ही सच्चे स्वराज की स्थापना होगी इसलिए उन्होंने ग्राम–स्वराज की आवधारणा के माध्यम से गांवों को आत्मनिर्भर बनाने पर जोर दिया तथा कहा कि अगर गांव नष्ट हो जाएं तो हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जाएगा। अतः आत्मनिर्भर व स्वायत्त ग्राम पंचायतों की स्थापना के माध्यम से ग्रामीण समाज के अंतिम पायदान पर मौजूद व्यक्ति तक शासन की पहुँच सुनिश्चित करना ही गांधी का ग्राम स्वराज सिद्धान्त था। ग्राम स्वराज से उनका मतलब था, अपने बारे में खुद सोचने, निर्णय करने और अपने द्वारा किये गए निर्णय को खुद ही क्रियान्वित करने की आजादी। उनकी सोच गांवों के विकास व अंतिम व्यक्ति को विकास की मुख्य धारा में शामिल करने की थी इसलिए पंचायतों को सशक्त करने के लिए ही 73 वें संविधान संशोधन के माध्यम से संवैधानिक दर्जा प्रदान कर उन्हें सशक्तता प्रदान की गई। आर्थिक मामलों में गांधी जी ग्राम पंचायतों को आत्मनिर्भर बनाने हेतु कुटीर उद्योगों, हस्त करघा उद्योगों की स्थापना पर बल देते थे जिससे ग्रामीण जनता को प्रत्यक्ष रूप से दो लाभ हुए– एक तो भारी उद्योगों से होने वाले प्रदूषण से रक्षा तथा दूसरा ग्रामीण जनता को रोजगार मिलना।[23] किन्तु वर्तमान वैश्विकरण के युग में औद्योगिकरण के नकारात्मक परिणाम भी दिखाई देने लगे हैं और आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ रहा है ऐसे में पुनः कुटीर उद्योगों की स्थापना ग्रामीण जनता के लिए आशा की किरण साबित होगी। अतः गांधी जी का ग्राम स्वराज का नारा 'भारत को एक आत्मनिर्भर भारत के रूप में परिवर्तित कर सकता है' जो कि वर्तमान में उनकी इस अवधारणा की प्रासंगिकता को इंगित करता है।[24]

शिक्षा

गांधी जी के शिक्षा सम्बंधी विचार व्यवहारिक जीवन पर आधारित होने के कारण व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विकास में इसका अत्यन्त महत्व है। 1936 में गांधी ने ''बुनियादी शिक्षा'' के नाम से शिक्षा सम्बंधी जो विचार रखे, उसमें व्यक्ति का सर्वांगिण विकास निहित था जिसे 'वर्धा योजना' भी कहा जाता है। उन्होंने बौद्धिक शिक्षण के मुख्य साधन के रूप में हस्तशिल्प को अपनाने तथा औद्योगिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने पर बल दिया अर्थात् रोजगारोन्मुखी शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया।[25] शिक्षा के संबंध में गांधी जी का तात्पर्य बालक तथा मनुष्य के

शरीर, आत्मा, तथा मन के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के स्थान पर नई शिक्षा नीति, 2020 को लागू करने के पीछे भी गांधी जी की बुनियादी शिक्षा अर्थात् रोजगारोन्मुखी शिक्षा के माध्यम से शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देने आदि कारण विद्यमान थे। अतः गांधी के शिक्षा संबंधी विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान में ओर अधिक बढ़ जाती है।[26]

धर्म व राजनीति

गांधी जी के अनुसार धर्म का तात्पर्य किसी समुदाय विशेष से ना होकर 'सत्य तथा अहिंसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति से था। इसलिए गांधी ने कहा था कि ''मेरे लिए धर्मविहीन राजनीति का कोई अस्तित्व नहीं है, धर्म के बिना राजनीति पाप है, क्योंकि यह आत्मा को मारती है।'' अतः धर्म व राजनीति का अटूट संबंध है। किन्तु वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में घृणा, अपवित्रता, लोभ, सत्तालोलुपता, आदि दोषों के विद्यमान होने का एकमात्र कारण राजनीति से धर्म का धीरे-धीरे सम्बंध विच्छेद होना है। इसलिए वर्तमान में राजनीति को एक आदर्श राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तित करना है तो गांधी जी की धर्म व राजनीति की घनिष्ठता को पुनः कायम करना होगा तभी समृद्ध राष्ट्र का निर्माण संभव है।[27]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान वैश्विक समस्याओं के संदर्भ में गांधी दर्शन की प्रासंगिता सार्वभौमिक है तथा इनके निदान के रूप में गांधीवादी सिद्धान्त एक श्रेष्ठ विकल्प के रूप में दिखाई देते हैं। अतः सत्य, अहिंसा, समानता, शांति व मानवता के पुजारी महात्मा गांधी का दर्शन पहले भी प्रासंगिक था और वर्तमान में भी प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *शर्मा, ओम प्रकाश : "वर्तमान विश्व राजनीति में गांधी के विचारों की प्रासंगिकता'', शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, 2015, पृष्ठ सं. 2*
2. *गाबा, ओ.पी., : राजनीति विचारक विश्वकोष, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 2014 पृ.सं. 96*
3. *रावत, डॉ. राजेश : गांधी, विनोबा एवं सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2013, पृष्ठ सं. 13*
4. *शर्मा, ओमप्रकाश,: ''वर्तमान विश्व राजनीति में गांधी के विचारों की प्रासंगिकता'', शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, 2015, पृ.सं. 217*
5. *वर्मा, श्रीराम, भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक सेण्टर, जयपुर, 2016 पृ.सं. 406*
6. *सिंह, उपेन्द्र : भारतीय राजनीतिक विचारक, ग्रन्थ विकास, जयुर, 2009, पृ.सं. 340*
7. *नागर, डॉ. पुरुषोत्तम : आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2013, पृ.सं. 351*
8. *रावत, डॉ. राजेश : गांधी, विनोबा एवं सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2013, पृ.सं. 15*
9. *वर्मा, डॉ. शिप्रा : महात्मा गांधी कथा और व्यथा, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर, 2012, पृ.सं. 164*
10. *एस. राज विवेक : समकालीन भारतीय मुद्दे, सिविल सर्विसेज टाइम्स प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं. 130*
11. *राजस्थान पत्रिका, 9 मार्च 2022, पृ.सं. 4*
12. *राजस्थान पत्रिका, 10 मई 2022, पृ.सं. 2*
13. *वर्मा श्रीराम : भारतीय राजनीति विचारक, कॉलेज बुक सेण्टर, जयपुर, 2016 पृ.सं. 407*
14. *नागर, डॉ. पुरुषोत्तम : आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2013 पृ.सं. 352*
15. *उपर्युक्त, पृ.सं. 353*
16. *रावत, डॉ. राजेश गांधी, विनोबा एवं सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2013, पृ.सं. 38*
17. *http://supportmeindia.com*
18. *रावत, डॉ. राजेशः गांधी, विनोबा एवं सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2013, पृ.सं. 21*
19. *http://hi.m.wikipedia.org.*
20. *नागर, डॉ. पुरुषोत्तम : आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2013, पृ.सं. 382*
21. *डॉ. पूरणमल, : दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2002, पृ.सं. 21*
22. *www.bbc.com*
23. *गांधी, महात्मा : ग्राम स्वराज, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ.सं. 48-49*
24. *https://rashtriyashiksha.com*
25. *रावत, डॉ. राजेश : गांधी, विनोबा एवं सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर 2013, पृ.सं. 43*
26. *https://www.drishtias.com*
27. *सिंह, उपेन्द्र, : भारतीय राजनीतिक विचारक, ग्रन्थ विकास, जयपुर, 2009 पृ. सं. 335*

हिन्दी साहित्य में दलित चेतना का स्वरूप

संदीप कुमार पाण्डेय
शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बच्चे को जन्म लेते समय यह नहीं पता होता है कि मैं किस जाति का हूँ। जब वह अपने बाल्यावस्था में प्रवेश करता है तब उसको लगता है कि मैं बड़े घर में पैदा हुआ हूँ या छोटे। वह अपने मूलभूत एवं भौतिक सुविधाओं से यह जान जाता है परन्तु वहीं पर कुछ बच्चे बड़े होकर सुविधाओं से वंचित रहते हैं, साथ में ही एक जाति विशेष में पैदा होने के कारण वे समाज से भी बहिष्कृत किये जाते हैं और इस बहिष्कृत किये जाने का अभिशाप है दलित होना। हिन्दी साहित्य में इस अभिशाप को लेकर दलित और गैर दलित साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इसी संदर्भ को लेकर उदाहरणों के माध्यम से हमने अपना विचार शोध-लेख में दर्शाया है।

संकेताक्षर : *संवेदना, कुल्ली भाट, तटस्थ, गैर दलित साहित्यकार, दलित साहित्यकार, मराठी साहित्य, उड़िया साहित्य, मलयालम साहित्य, कन्नड़ साहित्य, बांगला साहित्य, दलित स्वतंत्रता, शम्बूक, आत्मकथात्मक, छूत-अछूत, छूआछूत, सामंतवाद, ध्वंसात्मक विकार, व्यक्तिगत, सामाजिक, शोषण, परम्परा, संघर्ष।*

साहित्यकार की संवेदना स्वभावतः शोषितों, पीड़ितों और वंचितों से जुड़ती है। साहित्यकार आरम्भ से ही इनके पक्ष में खड़ा दिखाई देता है। महात्मा गांधी, विवेकानन्द, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, प्रेमचन्द, हरिनारायण आप्टे, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', शरण कुमार लिंबाले, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि ने अपने विचारों, कहानियों, उपन्यासों, आत्मकथाओं आदि द्वारा परम्परा से चली आ रही मान्यताओं, विचारों को गलत ठहराया और जातिगत आधार पर हो रहे शोषण का विरोध किया। साहित्यकारों ने यथार्थ को देखा और चित्रण किया परन्तु रचना में अन्त तक पहुँचते-पहुँचते वे यथार्थ को सम्भाल नहीं पाते है। जो उनके लिए आदर्श होता है, वे उसी में खो जाते हैं। विधाओं का सफल अन्त करते है। ये ऐसे-ऐसे किस्से सुनाते हैं कि दिल दहल उठता है। 'गोदान' का गोबर सुना है और समझा है – ''अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी।''[1]

विवेकानन्द निम्नतर वर्ग के लोगों को उच्चतर वर्ग में लाना चाहते थे। उच्चतर को निम्नतर के स्तर पर लाने से वे कोई लाभ नहीं समझते थे। उनका कहना था-''एक ओर आदर्श है ब्राह्मण तथा दूसरी ओर आदर्श है चाण्डाल और चाण्डाल को उठाकर उसे ब्राह्मण स्तर तक ले जाना ही सम्पूर्ण कार्य है। उन्होंने इसके लिए संदेश दिया कि निम्नतर जातियों को संस्कृति दो।''[2] समय आगे बढ़ता गया। संविधान के प्रावधानों का सहारा लेकर दलित भी आगे बढ़ते गये। दलितों में कुछ साहित्यकार भी हुए, इन्होंने देखा कि हमने केवल दुःख, वेदना, गुलामी, अपमान, आँसुओं से भरी जिन्दगी बिताया है और बिताने के लिए विवश किये गये है। इसी से यह समाज पर प्रहार करने लगे। इससे एक साहित्य पैदा हुआ जिसे दलित साहित्य कहा गया। गैर-दलितों के साथ दलित लेखक भी लेखनी में प्रतिबद्ध थे। वे अनुभूति की प्रामाणिकता चाहते थे, क्योंकि उनका भोगा हुआ यथार्थ था। यथार्थ सभी ने देखा। प्रेमचन्द के 'ठाकुर का कुँआ' कहानी में गंगी विद्रोह करती है और कहती है – ''हम क्यों नीच हैं और यह लोग क्यों ऊँच हैं ? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं ? यहाँ तो जितने हैं, एक-से-एक छँटे हैं ? चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूँठे

मुकद्में ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पण्डित जी के घर में बारहों मासा जुआँ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते है। काम करा लेते हैं, मंजूरी देते नानी मरती है। किस बात में है हमसे ऊँचे। हाँ, मुँह में हमसे ऊँचे हैं। हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे है। कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रसभरी आँखों से देखने लगते है। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं।''[3]

प्रेमचन्द ने दलितों को समझा और अनुभूति की। प्रेमचन्द की कड़ी में निराला आते हैं, इन्होंने 1939 में 'कुल्लीभाट' नामक रेखाचित्र लिखा जो दलितों के बाह्य तथा अतरंग जीवन की कड़ी है। जिसमें कुल्लीभाट अछूत होने पर भी उनकी सहानुभूति का पात्र रहा है और निराला ने उसके गुणों को बड़ी आसानी से व्यक्त किया है। निराला गाँव वालों के धारणा को नहीं मानते हुए कुल्ली को मित्र मानकर उसे निस्संकोच भाव से मिलते है। निराला की सासु जी कहती हैं – ''भैया कुल्ली से मिलना–जुलना अच्छा नहीं है।''

मैंने (निराला) ने कहाँ ''जब वह खुद मिलने के लिए आवेंगे, तब मिलना ही होगा।''

''लेकिन वह आदमी अच्छे नहीं।'' सासुजी ने गम्भीर भाव से कहा।

''तो भी आदमी है, इसलिए .....'' ..... सासुजी अप्रतिभ होकर बोली, ''नहीं, हमारा यह मतलब नहीं, उसके साथ रहने पर तुम्हारी बदनामी हो सकती है।''

''पर'', मैंने कहा, ''मेरे साथ रहने पर उसकी नेकनामी भी हो सकती है।''[4]

निराला ने तटस्थ होकर और सहज भाव से दलितों को अपने साहित्य में स्थान दिया। निराला ने कुल्ली के व्यक्तित्व को समाज–सापेक्ष रूप में प्रकट किया – ''मैं तलाश में था ऐसा जीवन मिले, जिससे पाठक चरितार्थ हो, इसी समय कुल्लीभाट मिले।''[5] इस तरह निराला के कुल्ली ने अशिक्षित, अछूत होने पर भी देश के लिए सेवा–कार्य किया और अछूतों को शिक्षा दी, उन्हें ऊँचा उठाने का भरसक प्रयत्न किया। ये प्रयत्न कुल्ली का नहीं निराला का प्रयत्न था पर ये कार्य कुल्ली ने किया। इसी तरह गैर–दलित साहित्यकारों की विधायें दलितों के अस्मिता में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

गैर–दलित साहित्यकारों की रचनाओं को दलित साहित्यकार यह कहकर टालना चाहते हैं, कि यह लेखक की व्यक्तिगत जीवन–घटनाओं का समावेश है। वे उस साहित्य को नकारते है। उनके नकारने से गैर–दलित साहित्यकारों का साहित्य या विधा नष्ट नहीं हो सकती है। जिसका मुख्य कारण है – समयानुसार गैर–दलित साहित्यकार समाज की कुरीतियों को अपने साहित्य में लाया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को काशी विश्वविद्यालय में कबीर को लेकर बहुत यातनायें सहनी पड़ी। जिसका वर्णन नामवर सिंह 'दूसरी परम्परा की खोज' में करते हैं – ''काशी विश्वविद्यालय में मैंने (द्विवेदी जी) कबीर पढ़ाना शुरू किया तो एक मित्र कुलपति से शिकायत कर आये कि जिस विभाग में तुलसीदास से पढ़ाई शुरु होती थी उसमें कबीर से शुरु होने लगी है।''[6]

इन साहित्यकारों के साथ आदर्श एवं यथार्थ का टकराव भी खूब हुआ। जिसका विरोध दलित साहित्यकार करते है। दलितों के साथ समस्या थी। यह समस्या प्राचीनकाल से चली आ रही थी। उनके सामने इन समस्याओं का निदान नहीं हो सकता था। ये समस्याएँ निम्न थीं –

(1) फुटपाथों और झोपड़–पट्टी का नरकीय जीवन।

(2) गाँव में झेली जाने वाली यातनायें।

(3) नेतृत्व का अभाव।

(4) शिक्षा का अभाव।

(5) यौन शोषण और अत्याचार।

(6) मजदूरों और जमींदारों के बीच संघर्ष।

(7) जन्म एवं परम्परा से मिले संस्कार की अवधारणा पर चोट।

समाज में इन्हें रोटी, कपड़ा और मकान की लड़ाई लड़नी पड़ी। इनके साथ दरिद्रता भी थी। दरिद्रता के साथ जन्म एवं परम्परा पर ज्यादा प्रहार किया गया, जो एक अपमान था।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखते हैं – ''सुरसरि, तीर बिनु नीर दुःख पाइहै, सुर–तरू तरे तोहि दारिद सताइहै'' – तुलसी बाबा वाली बात हमारे सामने थी। दारिद्रय में कष्ट होता है यह जानने लायक तो मैं हो गया था, पर दारिद्रय में अपमान भी कुछ है, मुझे मुतलक पता नहीं था।''[7]

इन्हीं समस्याओं को दलित साहित्यकार ने भी उठाया। जिसका आन्दोलन मराठी दलित लेखन से हुआ जिसमें अण्णाभाऊ साठे (चित्र, चंदना, फकीरा), भाऊ पाध्ये (वासुनाका), जयवंत दलवी (चक्र), शंकरराव खरात (हाट भट्टी), नामदेव ढ़साल (हाडकी हडवल), बाबूराव बागूल (सूड), शरण कुमार लिंबाले (अक्करमाशी, देवता आदमी, हिन्दू, छुआछूत) आदि मराठी लेखकों का नाम उल्लेखनीय है।

उड़िया साहित्यकार गोपीनाथ मोहंती ने दादिबूड़ा, हरिजन, परजा आदि रचनाओं को लाकर स्वतंत्र भारत के पहले एवं बाद के संघर्ष को दिखाया। यह संघर्ष था – ''जमींदारों और भूमिहीन किसानों–दलितों के बीच का संघर्ष।''

मलयालम साहित्यकार में तकषी शिवशंकर पिल्लै की रचना 'तोट्टियेटे मकन' (भंगी का बेटा), तेटीवर्गम (अवारा) और केशव देव की रचनायें दलितों के जीवन चरित्र को उजागर करती हैं।

कन्नड़ साहित्य में भी दलित आन्दोलन का आविर्भाव हुआ जिसने एम.वी. सीतारमय्या (मारन मगिल), भैरप्पा (दाटु), यू.आर. अनन्तमूर्ति (संस्कार, भारतीपुर) आदि ने वर्ण व्यवस्था का विरोध किया और इसे मानवता विरोधी बताया।

बांग्ला साहित्य में महाश्वेता देवी (हजारा चौरासीर माँ, अग्निगर्भ) का नाम उल्लेखनीय है। वे दलितों, शोषितों और वंचितों के पक्ष में शोषण के विरूद्ध लड़ती रहीं।

हिन्दी दलित साहित्य के अन्तर्गत दलित स्वतंत्रता के अहसास की अभिव्यक्ति लेकर हिन्दी दलित साहित्यकार आये। इसमें आगे प्रेमचन्द, निराला, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पाण्डेय बेचन शर्मा आदि की चर्चा हम कर चुके हैं। गबन का देवीदीन खटिक, कर्मभूमि की सलोनी और गूदड़, रंगभूमि का सूरदास, गोदान की सीलिया एक आदर्श पात्र हैं जो यह कहना चाहते हैं – यह फूट डालने वाली नीति नहीं हैं, यह जोड़ने वाली नीति है। जिसका केन्द्र स्थान मनुष्य है। जगदीश गुप्त का 'शम्बूक' मूक नहीं है वह बोलता है –

''वर्ण से होगा नहीं अब त्राण
कर्म से ही मनुज का कल्याण
जन्म से निश्चित न होगा वर्ण
वर्ग तक सीमित न होगा स्वर्ण
कर्म से ही श्रेष्ठता अधिकार
कर्म सबके लिए सम आधार।''[8]

शम्बूक कर्म को प्रधान मानता है। कर्म ही सबकुछ है, कर्म से श्रेष्ठता का अधिकार मिलेगा सबके लिए कर्म एक समान है। राम समझाते हैं कर्म से ही जन्म मिलता है, पूर्व जन्म के अनुसार जीव मरते और जन्मते हैं। ऐसा सब समझाने पर शम्बूक चुप नहीं रहता है। बोलता है –

''रूको, मत ऐसा मुझे तुम
मुक्ति दो रघुनाथ !
मानता हूँ मुक्ति मानव की
उसी के हाथ।''[9]

शम्बूक जानता है मानव की मुक्ति स्वयं मानव के हाथ में है। वह प्रमाणित किया था कि तप, पढ़ना–लिखना, आदर्श का पाठ पढ़ाना यह सब जन्मजात गुण नहीं है, यह किसी जाति में हो सकता है। सिर्फ उसे समाज के बन्धनों से मुक्त कर दिया जायें। बन्धन मुक्त होकर ये झोपड़ी आदि में रहेंगे वहाँ भी उन्हें साहस से ही काम लेना पड़ेगा। वहाँ भी इनका विरोध होगा और ये कबाब हो जायेंगे। मन्नू भण्डारी लिखती हैं – ''महीने भर पहले की ही तो बात है – गाँव की सरहद से जरा परे हटकर जो हरिजन–टोला है, वहाँ कुछ झोपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित। दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपड़ियाँ राख में बदल चुकी थीं और आदमी कबाब में।''[10]

दलितों के लिए मन्दिर आदि सिर्फ एक सुन्दर वस्तु थी जिसे वे देख सकते थे अन्दर जा भी सकते थे, परन्तु वे बैठ नहीं सकते थे। इस न बैठने का कारण भी जाति था। पण्डित शिवानन्द शर्मा जब सुनीत के मुख से सुनते हैं – ''चमर टोले में.....'' तब सुनीत के लिए उनके पास कोई जवाब ही नहीं रहता है। कहते हैं– ''हे भगवान, हे भगवान, सत्यानाश हो तुम्हारा। हमारा तो मन्दिर ही भ्रष्ट कर दिया।''[11] मन्दिर भ्रष्ट करने का कोई असर सुनीत पर नहीं पड़ा ''आज वह बस्ती के स्कूल में लौटा था, विद्यार्थी के रूप में नहीं बल्कि अध्यापक के रूप में।''[12] नेमिशराय चाहते तो सुनीत सबसे अलग होता, परन्तु वह सिर्फ शिवानन्द से अलग है, जो एक आदर्श और सामंजस्य का सूचक है। बच्चों को शिक्षित करना ही उसका उद्देश्य था, न कि जाति विशेष के बच्चों को।

यहाँ हम महार, बाल्मीकि, चमार आदि देखते हैं हमें तो सिर्फ दलित देखना चाहिए। क्या मन्दिर बनाने में जो लोग लगे हैं सब महार ही हैं, दया पवार लिखते हैं–''वैसे मारूती के मन्दिर के लिए जमीन महारवाड़ा

के ही खंडू मुकादम ने दी थी। महारवाड़ा के लोगों ने मेहनत की थी।''[13]

छूत–अछूत ये दो शब्द जोरों से आज भी बढ़ रहे हैं। जहाँ देखों वहीं इनका नाम है दलितों में भी इसका विकास हुआ। एक घटना है, मैं अपने कमरे में बैठकर भोजन कर रहा था। मेरे एक मित्र भी थे। कॉलोनी का जमादार आया, दरवाजा खोलने के लिए आवाज दिया। मित्र ने दरवाजा खोला। उससे बात–चीत हुई, दीपावली की त्योहारी देनी थी। उसे मैंने दिया, वह चला गया। मित्र हमारे भोजन करना छोड़ दिये बोले – ये 'भंगी' है! छू लिया। तब जाकर हमें मालूम हुआ ये दोष जाने वाला नहीं है। मैं बोला ये बाभन है, रेलवे का कर्मचारी है। आप भी तो एस.सी. हैं। इससे मुझे मालूम हुआ कि छूत–अछूत, जातिभेद और जाति में भी श्रेष्ठता भेद कितनी गहराई तक लोगों में घुसा है।

'छुआछूत' कहानी संग्रह की भूमिका में मोहनदास नेमिशराय लिखते हैं – 'जाति न पूछो' कहानी बार–बार दलितों को उनके अपने ही जख्म कुरेदने पर मजबूर करती है। वही सवर्ण समाज जाति पूछने से बाज नहीं आता। उसका आर्यत्व फिर से उभरने लगा है। जो शंकराचार्यों/शिवसैनिकों/बजरंगियों के वीभत्स रूप में दलित उत्पीड़न करने लगे है।''[14] हम कहते हैं कि क्या उन शंकराचार्यों, शिवसैनिकों, बजरंगियों में दलित नहीं हैं। वर्तमान में दलित साहित्यकार जाकर गाँव में दलित को देखें, वे आज भी उसी स्थिति में है। जो आगे बढ़ गया है, यह नहीं देख रहा है कि मेरा छोटा भाई कैसे होगा? आज लोग अच्छे–अच्छे पद पर हैं, पर वे छोटे को ही सताते हैं। गाँव में आज भले ही बाजारवाद पैर पसारने लगा है। सामन्तवाद आज उतनी ही सख्त है जितनी पहले थी। यह नीचे–नीचे घृणा उत्पन्न करती है। जिससे बेचैनी, व्यथा उत्पन्न होती है जो आपसी कलह का रूप ले लेती है। ये साहित्यकार लम्बी बोली बोलते हैं, पर ये अच्छी जगह पर बैठे हैं, कहीं विश्वविद्यालय में हैं तो कहीं किसी फैक्टरी में, कहीं इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ दलित स्ट्डीज खोले हैं तो कहीं प्रकाशक के पास हैं। इन्हें यह सब छोड़कर दलितों के बीच में जाकर उस दलित का साहित्य में चित्रण करें, उस समाज का करें, वंशानुक्रम का करें उसे मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टि से देखें कि दलित के साथ क्या हो रहा है? तब जाकर एक अच्छा विकल्प सामने आयेगा कि यह पूरे समाज की पीड़ा है या व्यक्तिगत पीड़ा है।

जो कार्य पहले सामंतवाद कर रहा था वह कार्य आज राजनीति कर रही है। आज दलित ब्रह्म के रूप में आ रहा है। सब रिझाने में लगे हैं। दलितों को सिर्फ लड़ाया गया है। उनके साथ न्याय नहीं किया गया है। यह बात उलझाने वाली है। स्वयं कांशीराम कहते हैं – ''मैं सामाजिक न्याय से ज्यादा सामाजिक अन्याय को बसपा के विस्तार के लिए महत्वपूर्ण मानता हूँ। जितना ही सामाजिक अन्याय बढ़ेगा, बहुजन समाज में ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश बढ़ेगा और सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया तेज होगी।''[15] कांशीराम के इस विचार से सिर्फ कलह हो सकता है, अतः हमें इन विचारों पर भी ध्यान देना है। डॉ. अम्बेडकर ने देखा कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्र में अस्पृश्यों को कैसा–कैसा अन्याय सहना पड़ा। उन्होंने प्रतिज्ञा ली, ''मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ क्योंकि यह मेरे हाथ की बात नहीं थी, मगर मैं हिन्दू धर्मावलम्बी रहकर नहीं मरूँगा।''[16] अम्बेडकर एक ऐसे धर्म को चाहते थे जो सामाजिक एवं धार्मिक समता बनाये। उनके अनुयायी यह भूल सा गये। ओमप्रकाश बाल्मीकि अपने आत्मकथा 'जूठन' में अपनी जाति को नहीं छिपाते हैं। इससे उन्हें न प्रेम मिला, न धन मिला, न गौरव मिला। वे अपने नाम के आगे 'बाल्मीकि' लगाकर सामने वाले को चकित करना चाहते हैं। 'जूठन' में एक यात्रा का वार्तालाप दिखाते हैं – ''कौन जात हो? अधिकारी की पत्नी ने दूसरा सवाल दागा।

प्रश्न सुनते ही मेरी पत्नी का चेहरा फक्क पड़ गया और वह मेरी ओर देखने लगी। सारा माहौल बिगड़ गया था। जैसे अचानक स्वादिष्ट व्यंजन में मक्खी गिर गयी हो। जब तक मेरी पत्नी कुछ उत्तर देती, मैंने उत्तर दे दिया, भंगी'। 'भंगी' शब्द सुनते ही सन्नाटा छा गया।''[17] बाल्मीकि की पत्नी भी नहीं चाहती है कि वह अपने नाम के साथ वाल्मीकि लगायें, फिर भी वे लगाते हैं। उनके माता–पिता विकट परिस्थितियों में होते हुए भी शिक्षा दिलाने में गहरी भूमिका रखते हैं। यह एक यथार्थ सामंजस्य है। परन्तु वे अपनी कहानी 'कहाँ गया सतीश?' में सबकुछ भूल जाते हैं। सतीश की माँ आँखें पोंछते हुए कहती है– ''पता नहीं भैन जी, उसके मन में क्या था? दो अक्षर क्या पढ़ लिये वो न घर का रह्या न घाट का। हमने तो यों ही कह्या था, पढ़ने–लिखने में क्या धरा है, कुछ काम धन्धा कर ले, कोई नौकरी मिल जागी तो तावले (जल्दी) ही साद्दी

(शादी) बी कर देंगे। पर वो तो बिना कुछ कहे घर से चला गिया।''[18] माँ का हृदय बेटे से नहीं मिल रहा है। अभाव और गरीबी से निकलने के लिए दलितों ने पढ़ाई को एक माध्यम बनाया और यह जरूरी भी था। क्योंकि ज्ञान ही अन्धकार को भेद सकती है। यह एक पूर्ण सामंजस्य ला सकता है यह काम हर लेखकों में मिलता है जो समता, बन्धुता और समानता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गाँधी जी ने सबसे पहले 'हरिजन' शब्द लाया जो अछूतों के लिए सम्मानप्रद था। गाँधी कहे थे कि मैं अगले जन्म में भंगी के घर पैदा होना चाहूँगा। इस पर भगवानदास कहते हैं कि ''गाँधी ने यह सब अछूतों में अछूत इस समुदाय को अछूत बनाये रखने के लिए किया।'' जब भगवानदास जैसे सुलझे व्यक्ति यह कह सकते हैं तो औरों से क्या उम्मीद की जा सकती है।

मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे', ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन', भगवानदास की 'मैं भंगी हूँ', डॉ. जाटल की 'मेरा सफर मेरा जिन्दगी', कोशल्या बसंती की 'दोहरा अभिशाप', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', प्रो. श्यामलाल की 'एक भंगी वाइसचांसलर की अनकही कहानी' आदि आत्मकथाएँ दलित साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, परन्तु वे सामान्य दलित के भोग से नहीं जुड़ती हैं। इस रचनाओं में अपना वातावरण है, अपना परिवार है और दलित समाज की गुलामी है। यहाँ दलित साहित्य का समाधान नहीं है। दलित साहित्य का समाधान खोजना है। निरर्थक वाक्पटुता, गाली–गलौज आदि साहित्य में न लाकर के आदर्श एवं यथार्थ को मिलाकर दलित साहित्य को एक महत्वपूर्ण स्थान देना है जिससे समाज में सामंजस्य बढ़ सकें। आने वाली पीढ़ी में इसका सकारात्मक प्रभाव पड़े।

दलित रेखाओं का अनुभव जीवन्त है। पाठक के समक्ष उनका परिवेश आँखों के सामने से गुजरने लगता है। शोषण, परम्परा और संघर्ष का दलित साहित्य में सीधा संघर्ष होता है। इनका ये संघर्ष अपने अनुभवों का सपाट बयानी संघर्ष दिखाई पड़ता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'भय' में कालू कहानी के मुख्य पात्र 'दिनेश' को कहता है– ''पढ़–लिख के बामन बनने की कोसिस में लगे हैं। पर बामन बी तो ना बणा जावे है इन सुसरों से। चार सौ देने हों तो बात करो..... ... नहीं तो ओर कहीं जाके ढूँढ़ लो।''[19] बाल्मीकि ने यहाँ पर एक बदले की भावना को दिखाया है। दिनेश बामन बन रहा है तो हमें उसका सहयोग करना चाहिए। कालू सख्त है सुअर के बच्चे को मारने के लिए भी पचास रूपये माँगता है, बिरादरी पर ध्यान ही नहीं देता कहता है– ''आप तो अपनी बिरादरी के हो .... कोई बनिया–बामन आता तो मेरे रेट अलग होते।''[20] यहाँ आपस में भी मतभेद है। बाल्मीकि को यहाँ सामंजस्य बनाना चाहिए था। सामंजस्य से यहाँ 'भय' न उत्पन्न होता। सब एकजुट होकर आसानी से अपना अस्तित्व बना लेते। अस्तित्व में अपनी व्यक्तिगत संस्कृति महत्वपूर्ण रखती है, क्योंकि व्यक्तिगत संस्कृति ही सामाजिक संस्कृति होती है। कहानी में दिनेश तल्खी भरकर कालू की घरवाली को सुनाता है– ''कहाँ चला गया। हम यहाँ कब तक बैठे रहेंगे। हमने तो रूपये भी उनके हाथ में थमा दिये थे।''[21] संतुलन दिखाई ही नहीं देता है। संघर्ष ही संघर्ष व्याप्त है, जो एक कहानी का निष्कर्ष नहीं है।

'यथार्थ और आदर्श' निबन्ध में महादेवी वर्मा कहती है – ''साधारण रूप से गिरना, पड़ना, भटकना, सभी अचलता से भिन्न हैं, परन्तु गति तो वही स्थिति कही जायेगी, जिसमें हमारे पैरों में संतुलन और दृष्टिपथ में एक निश्चित गन्तव्य रहता है। प्रतिक्रिया की उपस्थिति किसी प्रकार भी यह नहीं प्रमाणित किया कि हमारे ध्वंसात्मक विद्रोह ने सृजन की समस्या भी सुलझा ली है।''[22] हमें अपने ध्वंसात्मक विकार को निकालकर छिपे हुए कठोर सत्य की खोज करनी चाहिए। इस खोज को विद्रोह, सहानुभूति और दया से नहीं जोड़ना चाहिए। दलित धारा दुख–दाह और आक्रामक है यह हमें आम जन से जोड़ती है। जुड़ने के साथ–साथ जाति हमें अलग करती है। इसी कारण गैर–दलित साहित्यकारों, दलित साहित्यकारों, समाजसुधारकों को चाहिए कि हमें अपने साहित्य में रोष–भरी धारा को बदलकर एक ऐसी धारा को लाना है, जिसमें हम साथ–साथ खड़े हो सके। ये पीड़ा एक व्यक्ति और एक जाति की पीड़ा न होकर एक दलित वर्ग की पीड़ा हो। इसमें चमार, भंगी, महार, पासी, मार्क्स का वर्ग–संघर्ष आदि न देखा जाये, जिससे मात्र कठिनाई ही उत्पन्न हो। अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग (वे जो दलित के हाशिये पर हैं जिन्हें हम शूद्र कहते हैं), मजदूर वर्ग आदि जो धर्म, जाति, वर्ग की सीमाओं में हैं उनको लेकर दलित साहित्य में चलना चाहिए। जिससे हमारे अन्दर यह स्थिति न हो – ''हाँ ! तब क्या हुआ ?'' पाठक यह अनुभूति कर सके, इसे तो मैं

पहले से जानता था, पर मुझे समझ अब आया कि साहित्य कैसा होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रेमचन्द, गोदान, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पुर्नमुद्रण–2011, पृ. 290.*
2. *बी. एल. फड़िया, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा–2007, पृ. 137.*
3. *प्रेमचन्द, मानसरोवर भाग–1, नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, चौथा संस्करण–2009, पृ. 90.*
4. *सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', कुल्लीभाट, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति–2011, पृ. 24–25.*
5. *वही, पृ. 12*
6. *नामवर सिंह, दूसरी परम्परा की खोज, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली–2008, पृ. 41–42.*
7. *पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', अपनी खबर, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति–2010, पृ. 50.*
8. *जगदीश गुप्त, शम्बूक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2010, पृ. 62.*
9. *वही, पृ. 63*
10. *मन्नू भण्डारी, महाभोज, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2000, पृ. 7.*
11. *मोहनदास नैमिशरय, 'मुक्ति पर्व', पृ.सं. 111, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2002*
12. *वही, पृ. 138*
13. *दया पवार रूपान्तर दामोदर खडसे, अछूत, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, दूसरी आवृत्ति–2006, पृ. 110.*
14. *शरण कुमार लिंबाले, अनुवाद निशिकान्त ठकार, छुआछूत, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2008, पृ. 10.*
15. *सम्पादक राजकिशोर, हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1997, पृ. 82.*
16. *बसन्त मून, अनुवादक प्रशान्त पाण्डेय, डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, नौवीं आवृत्ति–2011, पृ. 96.*
17. *राजकिशोर, हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1997, पृ.15.*
18. *ओमप्रकाश बाल्मीकि, सलाम, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति–2010, पृ. 49,*
19. *वही, पृ. 50*
20. *वही, पृ. 41*
21. *वही, पृ. 41*
22. *सत्येन्द्र, निबन्ध–निलय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2008, पृ. 205.*

उषा यादव के बाल उपन्यासों में चित्रित समाज व कल्पना

डॉ. भारती
कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बल उपन्यासों में विचार तथा भाव के साथ साथ कल्पना का विशेष महत्व होता है।बाल उपन्यास में उपन्यासकार कुछ कल्पनाओं का सहारा लेता है। जिससे उपन्यास रोचक, आदर्शोंमुख बन सके। साहित्य में कल्पना तत्व कथानक में रोचकता, जिज्ञासा व सरसता को चित्रित करता है जो किसी भी साहित्य के आवश्यक गुण होते है। उषा यादव के उपन्यास केवल मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि बालकों को एक संतुलित विकास की दिशा में मोड़ने का काम कर सकते हैं। जीवन मूल्य जुड़े हुए उनके उपन्यास बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए महत्वपूर्ण ळें।

संकेताक्षर : *पौराणिक, जीवन मूल्य, कथानक, ऐतिहासिक, भग्नावशेषों, बाल साहित्य, जीवन मूल्य।*

साहित्य में बुद्धि तथा राग के साथ कल्पना तत्व की भी प्रधानता रहती है। लेखक अपनी कल्पना की उड़ान से ही कथानक का निर्माण करता है। बाल उपन्यासों में विचार तथा भाव के साथ साथ कल्पना का विशेष महत्व होता है ।बाल उपन्यास में उपन्यासकार कुछ कल्पनाओं का सहारा लेता है। जिससे उपन्यास रोचक, आदर्शोंमुख बन सके। कल्पना के कारण लेखक बड़े आकर्षक ढंग से अपने कथन को पेश कर सकता है। बाल पाठकों द्वारा पढ़ा जाने के कारण बाल उपन्यास के कथानक में कल्पना का सम्मिश्रण करना आवश्यक है क्योंकि साहित्य में कल्पना तत्व कथानक में रोचकता, जिज्ञासा व सरसता को चित्रित करता है जो किसी भी साहित्य के आवश्यक गुण होते है।बाल उपन्यास के लिए कल्पना तत्व बहुत आवश्यक है।

समाज साहित्य का निर्माता होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद में बाल साहित्य ने समाज निर्माण में विशेष जागृति दिखाई है। नवीन परिवेश में परिवर्तित बाल जीवन को इन उपन्यासों में उकेरा गया है। स्वतंत्रता के बाद हमारी आधुनिक सोच व आधुनिकता ने साहित्य परिदृश्य में एक नवीन बीजारोपण किया है। वर्तमान में हमारे लिए पाठकों की रुचि सर्वोपरि है। उषा यादव के हर उपन्यास में आधुनिकता बोध की यथार्थ तस्वीर दिखाई देती है। साहित्य रचना कल्पना व यथार्थ का मिश्रण है उसमें भी बाल साहित्य तो बिना कल्पना के रुचिकर हो ही नहीं जा सकता। समसामयिक बाल साहित्यकारों में उषा यादव की आधुनिक रचनाओं की तुलना की जाए तो यही कहा जा सकता है कि उनके हर उपन्यास में आधुनिकता बोध के साथ ही यथार्थ व कल्पना की अनयोन्यामिश्रित तस्वीर है। अगर हम उषा यादव के उपन्यासिक कथानक को देखेंगे तो पाएंगे कि इनकी कहानियों में केवल विज्ञान ही नहीं वरन आधुनिक परिवेश, सामाजिक सरोकार के साथ–साथ कल्पना की उड़ान भी दिखाई देती है, जिससे बच्चे को आगे बढ़ने में मदद मिलती है।

डॉ उषा यादव का उपन्यास 'हीरे का मोल' तथा 'लाखों में एक' उपन्यासों में मूल कथानक के साथ–साथ और भी घटना तथा प्रसंगों को रोचकता की दृष्टि से जोड़ा गया है जो इन उपन्यासों के तत्वों में कल्पना को इंगित करते है।

उषा यादव ने अपने उपन्यासों के माध्यम से बच्चों को शिक्षा देने का प्रयास किया है। बच्चों को हमारे सांस्कृतिक व पारंपरिक तत्वों के बारे में बताना भी लेखिका अपना कर्तव्य समझती है। ''किले का रहस्य" उपन्यास उनका एक उपन्यास ही नहीं वरन ऐतिहासिक विरासत एवं मानवीय मूल्यों के संरक्षण की दास्तान है। जिसमें उन्होंने कल्पना शक्ति का सहारा भी लिया है। मिनी नाम की लड़की रामगढ़ के किले को देखने के लिए उत्साहित थी। मिनी ने सुना था कि पाल राजाओं का किला 700 साल पुराना है। जिद करके वह अपने पापा और मम्मी के साथ किला देखने

गई और रात को वह पुजारी जी के घर में ठहर गई।नाना कल्पनाओं से उलझा उसका मन निंद्रा अवस्था में किले की तलाश में पहुंच गया। उपन्यास के सारे पात्र पौराणिक है और कहानी अत्यंत काल्पनिक है। छोटी सी मिनी कल्पना लोक में कई पात्रों से मिलती है, कभी परी, कभी जादुई मछली, मेंढक और कई परीक्षाओं से भी गुजरती है। ऐसे पौराणिक पात्रों के बीच ऐसे काल्पनिक माहौल में उषा यादव ने परिवेश को प्रस्तुत किया। 'किले का रहस्य' उपन्यास में मिनी जब काल्पनिक दुनिया में पहुंच जाती है। तब वह कल्पना में कई स्थानों की सैर करती है। उस काल्पनिक दुनिया में वह राजा जी से भी मिलती है जो उनसे पूछते हैं कि उसे उनके लोक में सबसे अच्छा क्या लगा और क्यों ? मिनी कहती है ''मोती जैसा उजला पानी"। राजा जी के क्यों के जवाब में वह कहती है ''क्योंकि जल ही जीवन है। लेकिन मोती जैसा उजला पानी हमारे यहां एक सपना बन चुका है। रात–दिन धुआं उगलने वाले कल कारखानों की चिमनियां, जेनरेटर का शोर और नदियों, समुन्द्रों के पानी में मिली जहरीली गैसों के बारे में हमारे यहां के लोग नहीं सोचते हैं। जानते हैं, इसका नतीजा क्या होता है ?.... मैंने अखबार में जहरीले पानी की वजह से सैकड़ों मर जाने की खबर पढ़ी थी।

''फर उसके गुड़ियों वाले नन्हे चेहरे पर एक तेज चमकने लगा। आंखों में एक बिजली कौंधने लगी। पतली महीन आवाज में भी एक जोश समा गया और वह बोल पड़ी, ''आप समझ गए राजा जी मुझे आप के लोक में सबसे अच्छा मोती जैसा उजला पानी लगा, क्योंकि वह प्रदूषण रहित है। पता नहीं क्यों हमारे यहां के लोग ऐसी चीजों की गंभीरता नहीं समझते। पानी में कूड़ा–करकट, गंदगी, पॉलिथीन की थैलियां बेहिचक डालते रहते हैं। उन्हें नहीं मालूम कि जो प्रदूषित जल आज मछलियों का काल बना है, वह कल उनका भी काल हो सकता है।"[1]

इस पौराणिक कथा में उषा यादव ने आधुनिक परिवेश की प्रदूषण जैसी समस्याओं की चर्चा की है। यह उनकी कल्पना शक्ति व आधुनिक बोध को दर्शाता है। उपन्यास के एक अन्य अंश में जादुई रत्न की चर्चा करते हुए वैज्ञानिक चिंतन की बात भी वे करती हैं। जादुई रत्न वर्तमान युग में कल्पनाशीलता से ही संभव हो सकता है। उपन्यास का मुख्य बिंदु वह किला है जो रहस्यमयी है। इस रहस्यमयी किले के कथानक की रचना में उषा यादव ने रोचकता के लिए कल्पनाशीलता का सहारा लिया है।

उषा यादव के उपन्यास ''फिर से हंसो धरती मां" में प्रदूषण को दूर करके नवीन चेतना का सृजन व वृक्षारोपण की बात की गई है। शहरी वातावरण में मीलों से उठते धुंए को देख कर उसे दानव बताना व उसके धुँए से प्रदूषण का होना, उषा यादव की कल्पना की उपज है। धुँए को एक दानव का रूप बताते हुए व उससे सब को लील जाने की बात बताना कल्पनाशीलता ही है। इस उपन्यास का सार बच्चों के जीवन मूल्यों से जुड़ा है। इसमें अत्यंत ही रोचक ढंग से लेखिका ने बच्चों को प्रदूषण रूपी दानव से अवगत कराने का प्रयास किया है। उपन्यास में पर्यावरण की शुद्धि के लिए देश की भावी पीढ़ी को वृक्षारोपण करने के लिए प्रेरित किया है। इसमें लेखिका ने अपनी कल्पना के द्वारा धुँए को व प्रदूषण को एक दानव बताया है,जो मनुष्य के लिए भविष्य में खतरनाक साबित हो सकता है। इसी प्रकार उषा यादव का उपन्यास 'किले का रहस्य' अपनी कल्पनाशीलता व फेंटेसी के लिए जाना जा सकता है। लेखिका ने हमारे ऐतिहासिक भग्नावशेषों के बारे में आधुनिक पीढ़ी को जागरूक करने के लिए मिनी नामक लड़की के कथानक का प्रयोग किया। जिसमें वह अपनी कल्पनाशीलता के द्वारा उस बच्ची के एक रात में देखे गए स्वप्न, जो कि उसकी केवल कल्पना है, उसके आधार पर पूरे उपन्यास का ताना–बाना बुना गया। इसमें उन्होंने एक बच्ची के कल्पना लोक में विचरण करने व उसके माध्यम से एक किले का रहस्य बताने का प्रयास किया है। इसके माध्यम से उन्होंने आज के बच्चों में अपनी ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण की जिम्मेदारी जगाने का प्रयास किया है।

लेखिका उषा यादव का एक अन्य बाल उपन्यास जो उनका पहला बाल उपन्यास है वह है 'पारस पत्थर'। जिसमें उन्होंने एक लड़के के व्यक्तित्व के आमूल परिवर्तन की कहानी कही है। सचमुच का कोई भी पारस पत्थर नहीं होता। लेखिका ने इसमें अपनी कल्पनाशीलता से बड़े ही प्रतीकात्मक रूप से दर्शाया है। पारस पत्थर वह होता है जो लोहे को सोना बना देता है या जिस वस्तु को छुए वह सोना बन जाएगा। इसमें कल्पनाशीलता का समावेश करते हुए यह उपन्यास लिखा है जिसमें उन्होंने एक सामान्य बच्चे से उसके महत्वपूर्ण बनने तक का सफर बताया है।

लेखिका का एक अन्य उपन्यास 'सोना की आंखें' ,जो पर्यावरण से जुड़ी समस्या से संबंधित है। जिसके हमारे देश में वन्य पशुओं की संख्या में गिरावट से संबंधित पड़ताल की गई है। उपन्यास का कथानक बच्चों में वन्य पशुओं के प्रति प्रेम को बताता है । इसमें वन्यजीवों की काल्पनिक मूक बातचीत हो बताया है जिसमें लेखिका ने कल्पना शक्ति के द्वारा यह दर्शाया है कि जानवर भी मनुष्य की तरह बोली बोलते हैंव अपनी बात समझाते है। उपन्यास की चंद पंक्तियां इस प्रकार है, जिनमें बालक के खेलों के प्रति मनोभाव को दर्शाते हुए उनकी मूक अभिव्यक्ति को कल्पनाशीलता द्वारा समझाया गया है –

''मनोज का रोम रोम खुशी से भर उठा। उसे महसूस हुआ, सोना हिरनी की बड़ी–बड़ी कजरारी आंखों में गहरी कृतज्ञता छलक उठी है। वे आंखें जैसे कह उठी है, मुझे तुमसे यही उम्मीद थी मनोज! तभी तो मैं अपने मूंगा की जिम्मेदारी तुम पर छोड़ आई थी।" इस उपन्यास में मनोज को सोना हिरनी की आत्मा अभिव्यक्ति समझने में लेखिका ने जिस प्रकार सक्षम बताया है यह उनकी कल्पनाशीलता से ही संभव है।[2]

'किले का रहस्य' उपन्यास रोमांच उत्पन्न करता है इस कारण यह पाठक को रोचक लगता है। जादुई दुनिया की कल्पना कर उसे संवादों द्वारा प्रस्तुत कर लेखिका ने यथार्थ को प्रकट करने का कार्य किया है। उपन्यास का यह अंश इसकी कथन को प्रमाणित करता है।

चेतक के रुकने पर मिनी ने चौंककर देखा – वह उसी जंगल में उसी स्थान पर पहुँच गई थी, जहाँ से उसने अपना सफर शुरु किया था। चेतक की पीठ से उतरकर वह बोली – ''धन्यवाद, चेतक भाई। तुमने मेरी बहुत मदद की। लेकिन मेरा ही भाग्य खराब था। जो पाल राजाओं का किला नहीं खोज सकी।''

''कोई बात नहीं, मिनी। तुम बड़ी हो जाओ। खूब–पढ़ लिख लो। फिर यहाँ आना। ये टूटे–फूटे खण्डहर हमारी ऐतिहासिक धरोहर है। तुम जैसी बच्चियों के आने की राह देख रहे हैं। तुम्हारे पथ में पलकें बिछाये बैठे हैं। तुम्हें एक नहीं, अनेक किले खोजने हैं। अपना फर्ज भूलना मत।''[3]

उषा यादव ने एक काल्पनिक घोड़े के माध्यम से हमारी ऐतिहासिकत सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा और संरक्षण के प्रति युवा पीढ़ी की जिम्मेदारी का अहसास दिलाने का प्रयास किया है।

उषा जी का 'सोने की खान' उपन्यास में भी एक रोचक कथानक है। नौकरी पेशा माता–पिता की इकलौती सन्तान रजत अपनी हाईस्कूल की परीक्षा के पश्चात् अपनी भुआ जी के घर जा रहा था। उसे ट्रेन में उसी का हमउम्र अमन मिला जिसने उसे जीवन में 'शॉर्टकट' से सब कुछ 'सोने की खान' पाने का स्वप्न दिखाया। उषा यादव के इस उपन्यास में अनेक अंश ऐसे हैं जो पाठक के भीतर उपन्यास के प्रति रोचकता को बढ़ा देते हैं। प्रारम्भ का ही यह अंश –

'दोनों लड़कों के चेहरे पर एक निश्चिंत भाव छा गया। उसी रॉ में तनिक आगे झुकते हुए रजत शरारती मुद्रा में मुस्कुराया, ''एक बात बताओ दोस्त, तुम्हारी रुचि किस तरफ है ? तुम खुद क्या बनना चाहते हो ?''[4]

इस बात का जवाब देते हुए अमन ने बेफिक्री से कहा –

''क्योंकि तुम यकीन नहीं करोगे कि मैं कुछ नहीं बनना चाहता हूँ।''

''इसका मतलब मैं समझा नहीं।''

''इसका मतलब बहुत आसान है, दोस्त। हाडतोड़ मेहनत करने में मेरी कोई रुचि नहीं है। मैं सिर्फ मौज–मजे की जिंदगी जीना चाहता हूँ। बेशुमार दौलत हो और मैं पांव पसारकर सोऊं इससे बड़ा जिंदगी में कोई और सुख हो सकता है क्या ?''[5]

अमन की यह बातें रजत को कुछ बनने की लम्बी रेस में दौड़ने वाली प्रक्रिया से बचने का एक रास्ता दिखा रहीं थी। अमन के दृढ़ता से कहे यह शब्द कि ''और मैं योजनाओं के फेर में कभी नहीं पड़ता, जानता हूँ कि आज हवा, मिट्टी कूड़ा–करकट, पानी कुछ भी बेचकर आदमी मालामाल हो सकता है। सिर्फ पैसा कमाने की कला आनी चाहिए।''[6]

रजत की उत्सुकता को और बढ़ा देते हैं। वह अमन से यह जानने को उत्सुक हो जाता है कि किस प्रकार बिना मेहनत के 'सोने की खान' मिल सकती है। शॉर्टकट से पैसा कमाने का तरीका रजत के ज़हन में इस तरह घर कर लेता है कि वह अमन के छल को भी नहीं पहचान पाता। इस कारण वह एक बड़ी मुसीबत में फंस जाता है। अमन की 'सोने की खान' पाने की बात को वह अपने जीवन में गहनता से समाहित कर लेता है।

उषा यादव का एक अन्य उपन्यास 'नन्हा दधीचि' है। जिसमें एक छोटे बच्चे को दधीचि के समान महान

त्यागमयी बताया है। जिसके लिए पूर्ण रूपेण कल्पना द्वारा कथानक की रचना की गई। बच्चों को भगवान के रूप में मानने की हमारी प्रथा यह बताती है कि बच्चे प्रेम, त्याग, प्यार और सच्चाई की मूर्ति होते हैं और उनका सरल मन ऐसा होता है कि सभी बच्चे प्रेम और त्याग की मूर्ति लगते हैं। यह ऐसे बच्चे की कहानी है जो दूसरों के लिए अपना सब कुछ दान में दे देता है। बच्चों में कोमल भावनाएं अभिव्यक्त करने के लिए कथानक में कल्पनाशीलता रखनी चाहिए। उपन्यास को पढ़ने के बाद यदि किसी बच्चे में सच्चा इंसान बनने की लगन लगती है तो आधुनिक युग में यह भी एक बड़ी बात होगी। उषा यादव के उपन्यास केवल मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि बालकों को एक संतुलित विकास की दिशा में मोड़ने का काम कर सकते हैं। जीवन मूल्य जुड़े हुए उनके उपन्यास बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए महत्वपूर्ण है। आधुनिक बाल समाज के लिए निश्चित ही यह उपयोगी होंगे ।इस प्रकार उषा यादव का बाल साहित्य वैज्ञानिकता,कल्पनाशीलता, मूल्य निर्माण की दृष्टि से बहुत उपयोगी कहा जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *(उषा यादवःकिले का रहस्यःपृ 42)*
2. *उषा यादवःसोना की आँखे :पृ 60*
3. *उषा यादवरू किले का रहस्य' (पृ.सं. 49)*
4. *उषा यादवसोने की खान' पृ.सं. 11)*
5. *उषा यादवसोने की खान' पृ.सं.12*
6. *उषा यादवसोने की खान' पृ.सं.12*

भारत की सामाजिक आर्थिक स्थिति पर COVID-19 का प्रभाव (2020)

डॉ. हर्षी खण्डूड़ी
अस्टिंट प्रोफेसर भूगोल, पी.जी. कालेज, गोपेश्वर चमोली, (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

विश्व में त्रासदी के रूप में आयी (Covid-19) ने जो स्वरूप परिवर्तन किया वह यादगार है। लेकिन भारत की सामाजिक आर्थिक स्थिति पर क्या-क्या परिवर्तन भारी पड़े इनकी पूर्ति करना अधिक जटिल हो चुका है। जिससे मानव स्वास्थ्य सर्वाधिक प्रभावित हुआ और जनमानस के विचारों में परिवर्तन आया। प्रत्येक जनमानस व्यक्तिवादी विचार से जुड़ गया और अपने निजी रिश्तों और व्यक्तिगत जीवन बचाने में मानव सिर्फ रह गया, क्योंकि यदि प्राकृतिक रूप से प्रकृतिगत आपदा में व्यक्ति स्थान परिवर्तन करता है और अपने को सुरक्षित स्थान पर जाकर जीवन-यापन करने की कोशिश करता है। लेकिन यह महामारी इस प्रकार से आयी न तो किसी को संकेत पता लगा, न विचार मन में आया। अचानक ये महामारी मानव-स्वास्थ्य को नष्ट करने में जुट गयी और मानव मस्तिष्क में कोई भी सुरक्षा का उपाय नहीं सूझ रहा है, क्योंकि विज्ञान और स्वास्थ्य विभाग ने कोई भी स्पष्ट औषधि का निर्माण नहीं किया। आज का मानव औषधि पर पूर्ण रूप से निर्भर हैं। जिससे भारत की बौद्धिक पद्धति तथा आयुर्वेद के आधार को मानव खोजने में जुट रहा है और कई तथ्य तर्क और विचार मानव मस्तिष्क को सूझ रहे हैं, जिनकी मानव अभी खोज करने में जुट गया है। जैसे पंतजलि शोध संस्थान के अन्तर्गत कई जड़ी-बूटी तथा औषधि को इस रोग निवारण हेतु तैयार करने की कोशिश की जा रही है, कहाँ तक सफल होती है, अभी स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। इस शोध पत्र के माध्यम से इसमें तर्क सहित (Covid-19) के प्रभाव तथा निवारण के उपायों का वर्णन किया जा रहा है। इस वर्णन को वर्तमान परिस्थिति तथा मानव की मानसिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया गया है, कि सामाजिक, व्यावहारिक, आर्थिकी स्थिति पर किसी महामारी का क्या प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के सभी तथ्यों तथा तर्कों को स्पष्ट किया जा रहा है।

संकेताक्षर : *मानव, कोविड-19, आर्थिक, राष्ट्रीय, व्यवस्था, सामाजिक।*

पृथ्वी पर आयी इस त्रासदी का शिकार भारत किस प्रकार हुआ इसका जिक्र करना अधिक जटिल नहीं है। लेकिन मानव ने मानव को कैसे जटिल परिस्थिति में डाला, यह घटना बड़ी जटिल है। जहाँ जटिल शब्द उभर कर आता है वहाँ तर्क, तथ्यों और उदाहरणों की कमी नहीं होती है। जिससे (COVID-19) की त्रासदी और मानव मस्तिष्क पर इसका प्रभाव अत्यधिक स्पष्ट है। सामाजिक स्थिति और आर्थिक स्थिति की बात हम करते हैं तो दोनों ही मानवीय है। मानव ने मानव पर घातकतर स्थिति पैदा की है। एक और मानवीय स्वास्थ्य की हानि तथा दूसरी तरफ मानव द्वारा मानसिक पीड़ा का दिया जाना, एक मनोवैज्ञानिक अभिशाप से कम नहीं है।

त्रासदी

सामाजिक आर्थिक स्थिति पर (COVID-19) का प्रभाव इस प्रकार से देखा गया है कि 90-95 वर्ष के व्यक्ति भी दाँतों तले ऊंगली रखकर बैठ गये। कोई भी रास्ता स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि बीमारी दूर हो, बीमारी को दूर किया जाय। एक और मौसम में परिवर्तन, गर्मी का प्रारम्भ, मध्यम, अन्त और वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो चुकी है, भारत में त्रासदी बढते जा रही है। यातायात बन्द होने से आम व्यक्ति त्रासदी का शिकार दिखायी दे रहा है। उधर उच्च वर्ग के लोगों के द्वारा मध्यम वर्ग के लोगों के प्रति अच्छा व्यवहार न किया जाना। जैसे जो व्यक्ति मजबूरी में अपने कार्य

स्थल पर किन्हीं परिस्थितियों में पहुंचा। उसके प्रति वहाँ के लोगों द्वारा उपेक्षित व्यवहार किया जा रहा है। जैसे भवन स्वामी और पड़ोसियों के द्वारा आगन्तुक के प्रति निन्दनीय व्यवहार किया गया, जबकि उसका कोई भी दोश नहीं था। ये किसी त्रासदी से कम नहीं है। बेकसूर मानसिक रूप से प्रभावित किया गया।

समाजिक दूरी, मानवीय दूरी

(COVID-19) का प्रभाव सामाजिक दूरी और मानवीय दूरी के साथ इतना अधिक प्रभावित दिखायी दे रहा है। जिसमें समाज को तोड़ने में अपनी भूमिका जमा दी। लोगों के मन– मस्तिष्क को प्रभावित कर दिया। नकारात्मक ऊर्जा, विचारों की अधिकता देखी जा रही है। लेकिन जहाँ व्यवसाय, व्यापार की बात आती है, वहाँ तो दूरी का प्रभाव अत्यधिक दिखायी दे रहा है। इसकी मार से कई घर, परिवार, व्यक्ति प्रभावित हो चुके हैं। लोगों में कार्य न होने से नकारात्मक क्षमता और ऊर्जा अधिक बढ चुकी है। इस स्थिति में मानव किस प्रकार से विकासवाद की ओर बढ सकता है। कैसे विकसित राष्ट्र की कल्पना कर सकता है। ये सारी समस्यायें मानव तथा परिवार और समाज के अन्दर पृष्ठ पर देखने को प्रायः मिल रही है। यह समस्या एक भीषण रूप ले चुकी है। जिससे समाज का मध्यम वर्ग तथा कर्मचारी वर्ग अधिक समस्या का शिकार हो चुका है।

मौसम के आधार पर रोग बढने, फैलने की रफ्तार अधिक दिखायी दे रही है। लोगों में काफी भय बना हुआ है, लेकिन आवश्यक वस्तुओं की खरीद से कोई भी नहीं बच पा रहा है। जीवन जीने लायक वस्तुओं को खरीदनें के लिए मानव और कहीं–कहीं लाइन में भी खडा रहना पड़ रहा है, जिससे अधिक भय पैदा हो रहा है। जिससे लोगों में बीमारी तेजी से फैली हुई दिखायी दे रही है। सभी उच्च अधिकारियों मंत्रीमण्डल सलाहकार समिति के सदस्यों तथा चिकित्सकों के द्वारा यह सामूहिक चेतना राज्य स्तर पर दी जानी चाहिए, कि यदि हमारा युवा, हमारा मानव समाज सुरक्षित, स्वस्थ्य रहेगा तो हम आगे आर्थिकी को बढा सकते हैं लेकिन यदि हमारा मानव संसाधन सुरक्षित नहीं रहा तो हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। यह बात सभी की समझ में भली भॉति बैठ जाय तो लोगों के अनिवार्य यातायात के अतिरिक्त अन्य विलासिता और आरामदायक आवश्यकताओं पर रोक लगायी जा सकती है। इससे समाज सुरक्षित रह सकता है। यदि यह सत्य है कि यह संक्रमण से ही फैल रहा है तो इससे उचित उपाय और कुछ भी नहीं है। इसे समझने के लिए लम्बी गहरी सोच होनी आवश्यक है। जिससे मानव संसाधन सुरक्षित रहें। कुछ समय केवल स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान रहे। अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति हो, मानव संसाधन सुरक्षित रहें। इससे सामाजिक मानवीय सुरक्षा बन सकती है।

भारत राष्ट्र में (COVID-19) का प्रभाव समाज के उच्च वर्ग पर

भारत में (COVID-19) का प्रभाव उच्च वर्ग पर भी दिखाई दे रहा है। यहाँ पर पैसों का कोई महत्व नहीं दिखाई दे रहा है क्योंकि जहाँ रोग इतना अधिक संक्रमण की स्थिति में पहुंच चुका है कि औशधी का निर्माण न होने से रोग निवारण का कोई दूसरा तरीका नहीं है। अब भारत के लोगों में एक ही उपाय सूझ रहा है, ईश्वर की इच्छा जो होगी वही होगा। इसके अलावा उद्योगपति, मंत्रीमंडल, अधिकारी वर्ग, सभी लोगेां में संक्रमण ने कहर फैला रखा है। यहीं पर एक उदाहरण दिया जा रहा है कि जब फसल सूख जाती है उसके तत्पश्चात वर्षा होने का कोई महत्व नहीं रह जाता है। जब शरीर रोगों की काया बन जाता हैं तो औषधि हो या भौतिक संसाधन, किसी का भी कोई महत्व नहीं रह जाता। इसी प्रकार से समाज के प्रत्येक वर्ग में संक्रमण की स्थिति दिखाई दे रही है और समाज में वैचारिक मतभेद उभर कर आ रहे है, यह भी मानव कृत्य है। मानव कृत्य के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का मानव जूझ रहा है। इसलिए देवता, मानव और दानव को पृथक–पृथक किया गया है। प्राचीन मानव इतिहास में यह उभर कर आता है कि देवता शान्त स्वभाव से शक्तिस्वरूप चारों तरफ चौबीस घड़ी मौजूद है लेकिन मानव स्वभाव में लालच अग्रिम रहता है, जिसका परिणाम वर्तमान में दिखाई दे रहा है। मानव, मानव ही रहे, वह दानव प्रवृत्ति में न जाय। आज इस विषय पर विचार की अति आवश्यकता है। कहावतों, मुहावरों के माध्यम से कई बातें समझाई गई हैं लेकिन मानव स्वभाव में अहंकार, अभिमान के भाव जहाँ आगे आते है वही मानव, दानव प्रवृत्ति में चला जाता है। दानव और मानव का सामंजस्य कहीं भी समानुपात में नहीं है इसलिए भारत में प्राचीन मन्यताओं के आधार पर मानव अधिक मात्रायें स्थायी रूप से निवास करते थे लेकिन वर्तमान वैज्ञानिक–तकनीकि युग में विकसित राष्ट्र की दौड़ में मानव विचार क्षणिक विकास तक सीमित रह

गये हैं। राजनीतिक दलों का स्थायीकरण पाँच वर्ष तक अवधि के लिए नियुक्त किया जाता है। इसलिए एक यह भी क्षणभंगुंर विचार मानव मस्तिष्क को प्रभावित करता है। हे मानव तुझे कैसे समझायें कि कार्य वही करना चाहिए जो सुन्दर हो, शोभनीय हो, सराहनीय हो, जिसकी आलोचना न्यूनतम हो, समालोचना अधिक हो। कभी गुलाम भारत की या प्राचीन मानव का इतिहास पढों तो समझ में नहीं आता है कि मानव वास्तव में कितने जटिल स्वरूप से इस समाज का हिस्सा बना। पहले का मानव रोटी कपडा मकान के लिए पूरा समय व्यतीय करता था और एक शिक्षित सभ्यता की दौड़ में आगे आने का पूर्णतः प्रयास करता था। धीरे-धीरे प्रागैतिहासिक काल से लेकर के मानव आधुनिक वैज्ञानिक काल तक पहुंचा और सभ्यता के विकास में मानव ने अपने को मानव बनाने की कोशिश की है लेकिन वर्तमान में यह जाति, धर्म, क्षेत्र, कार्य, कर्म, क्रिया-कलाप के आधार पर मानवों का विभाजन प्राचीन समाय से प्रायः पाया गया है लेकिन मध्यकाल तथा वर्तमान काल में इसमें परिवर्तन किया गया और जहाँ संविधान की बात हुई उसमें कई प्रकार से नियम सरकारी व्यवस्था के अन्तर्गत लागू किये गये हैं जिससे समाज के भिन्न-भिन्न वर्गो पर अनेक प्रकार के प्रभाव दिखाई दे रहे हैं। कहीं ज्ञान से भी स्थान की कमी दिखई दे रही है, कही केवल जाति के आधार पर साक्षर हो करके या किसी प्रकार से प्रमाण पत्र प्राप्त करने पर ही सिंहासन आसानी से प्राप्त हो जा रहा है। इसलिए कई प्रकार से आज समाज की जो स्थिति दिखाई दे रही है उसका पूर्णत जिम्मेदार मानव ही है। आखिर मानव ने ये स्थिति उत्पन्न की क्योंकि इस पर समाज को जागृत रहने की आवश्यकता है। हम भारतीय ईश्वर पर विश्वास करते हैं तो ईश्वर से प्रार्थना है कि इस प्रकार की भयानक बिमारियों को मानव तथा मानवीय पर्यावरणीय स्थिति तक न आने दिया जाय। हम अपने चारों और इस प्रकार की गन्दगी न फैलायें कि जिससे हमें ही नुकसान उठाना पड़े। हम मानव ही उस गन्दगी के शिकार न बनें।

कोविड-19 का समाज पर प्रभाव, परिणाम, परिवर्तन

महामारी-समाज	राष्ट्र-राज्य
व्यक्ति	जनपद
व्यवहार	विकासखण्ड
स्थिर आवासीय मानवों का समुदाय	गाँव
आगुन्तकों का आगमन जाँच केन्द	चौक खल्ला
क्वांरटीन केन्द्र बिन्दु	व्यक्ति
आगुन्तकों की स्थिति	व्यवहार
सरकारी व्यवस्था	मानसिक शारीरिक स्थिति में प्रभाव

2020 अप्रैल, मई, जून, जुलाई, प्रत्यक्ष प्रदर्शन, प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर स्थिति।

समाज पर कोविड-19 का प्रभाव

सामाजिक स्थिति पर कोविड-19 का प्रभाव देखा जा रहा है, इससे आर्थिक रूप से समाज का मध्यम वर्ग अधिक प्रभावित हुआ है। मध्यम वर्ग में अधिकांशतः नौकरी, गैर सरकारी संस्थान, मध्यम वर्ग के, व्यवसायी वर्ग के लोगेां पर कोविड-19 का अत्यधिक हानिकारक प्रभाव पड़ा है। पारिवारिक बजट की मासिक स्थिति से ले करके वार्शिक स्थिति तक प्रभावित हो रही है, जिसका प्रभाव मध्यम वर्ग के प्रत्येक परिवार पर दिखाई दे रहा है। एक ओर कोविड-19 की भयानक स्थिति संक्रमण फैलने का डर, दूसरी तरफ वर्षा ऋतु का कहर, पहाड़ियों पर भू धसाव, भूस्खलन, बादल फटने तथा बाढ का डर, घाटियों में जल भराव से बाढ का कहर बना हुआ है। इस स्थिति में समाज की क्या स्थिति होगी कहना बहुत जटिल है। इस परिस्थिति से गुजरना भी बहुत जटिल है। ईश्वर पर सब कुछ छोड़कर कोई उपाय लोगों में पूर्णत विश्वसनीय निदान हेतु नहीं बन पा रहा है। उच्च शिक्षण संस्थानों में भारतीय आर्युवेद सम्बन्धी औशधी उपयोग के गुरूमंत्र सीखे जा रहे है। जगह-जगह व्यक्ति अपने वैचारिक आदान प्रदान को संचार के माध्यम से प्रसारित करने की पहल कर रहा है। अभी जुलाई माह में भारतीय आर्युविज्ञान विधि को अपनाने हेतु एक राष्ट्रीय वेबिनार आयोजित किया गया है जिसमें लगभग 1200 लोगों ने भाग लिया, काफी अनुभवी शिक्षकों योग विज्ञान वेत्ताओं तथा विषय विशेषज्ञों ने भाग लिया तथा प्राचीन समय में माँ तुलसी, अश्वगन्धा, कालीमिर्च, अजवाइन, गिलोय, बेल, ऐलोविरा, करेला, नीम, कड़ीपत्ता, जामुन, तेज पत्ता, जैसी सैकड़ों जड़ी बूटियों के मिश्रण से बने हुए काढे का सेवन करने के लिए एक संदेश समाज तक पहुँचाने की कोशिश की है तथा प्रतिदिन योगासन करना, दैनिक दिनचर्या को सही रखना, भोजन को प्राचीन पद्धति से लेना, प्रकृति से जुड़े रहने का एक सन्देश समाज तक पहुँचाने की पहल प्रारम्भ

की है। लेकिन अब समाज इसको कितना अपनाता है और कितना सार्थक होता है कि नहीं यह प्रयोग करने के पश्चात ही पता लगेगा लेकिन अभी सन्देश पहुँचाने की कोशिश की गई है। भारतीय वस्तुओं का उपयोग कीजिए यह सन्देश इस प्रकार की संगोष्ठियों के माध्यम से समाज, व्यक्ति परिवार तक पहुंचाने की एक पहल प्रारम्भ हुई है।

- प्राचीन औषधियों का उपयोग किया जाय।
- अपने आप पकाये हुए भोजन का सेवन किया जाय।
- सामान्य व्यक्ति भी जड़ी बूटियों को उबालकर काढे का सेवन करें।
- अधिक सामूहिक स्थलों पर न जायें।
- सभी नियमों का पालन नियमित रूप से करें

यह संदेश जनता तक पहुँचाने के लिए भारत में प्रयास किये जा रहे है। लेकिन जब तक प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार से नियम पालन नहीं करेगा तब तक रोग का निदान होना मुश्किल है। लेकिन यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी समझे तो कुछ न कुछ लाभ अवश्य मिलेगा। इसलिए हम सब अपने को जिम्मेदार समझें और स्वस्थ तथा सुरक्षित रहने की कोशिश करें।

परिणाम

विश्व तथा भारतवर्ष के तमाम भाहरों के आंकड़े प्रतिदिन न्यूज के माध्यम से प्रसारित हो रहे हैं। जिसमें ठीक हुये, संक्रमित हुये, ईश्वर साथ हो गये के आकडों को सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से प्रसारित किया जा रहा है। लेकिन जनमानस का यह मानना है कि यह आंकडा भी सही नहीं है इसलिए मानव की सामाजिक आर्थिक स्थिति का ग्राफ ऋणात्मक दृष्टिकोण पर दिखाई दे रहा है। इसमें प्राकृतिक कारण भी उभर कर आ रहे कि यदि प्रकृति अपनी रखवाली नहीं कर सकती तो मानव उस पर नियंत्रण कैसे करे। जटिल समस्या मानव के सामने उभर कर आ रही हैं। लगभग सभी लोग ईश्वर पे विश्वास करके बैठे है। इसके अलावा कोई उत्तम उपाय भी मानव मस्तिष्क में सूझ नहीं रहा है। वैज्ञानिक औषधि निर्माण में लगे हुए हैं लेकिन परिणाम उतने उत्तम किस्म के नहीं दिखाई दे रहे हैं। इसलिए मानव कर्म के आधार पर एक कोशिश करता है कि जीवन स्वस्थ्य रहे तभी मानव विकास की नींव तक पहुंच सकता है। लेकिन परिणाम बहुत उत्तम किस्म के अभी तक नहीं मिल रहे हैं इसलिए कोविड–19 एक सामाजिक विभाजन तन्त्र भी माना जा रहा है कि जिससे समाज में खण्डन नीति स्थापित हो रही है। पहले से ही मानवों में क्षेत्रवाद, जातिवाद, धर्मवाद, ऊंच–नीच वाद कूट–कूट के भरा हुआ है। इस महामारी के साथ इन वादों में और अधिक तीव्रता का माहौल दिखायी दे रहा है। आज आवश्यकता है मानवता की जीवन रक्षक वाद की, चाहे कोई भी व्यक्ति हो, किसी भी जन समुदाय के अन्तर्गत जन्मा हो सभी को अधिकार जीने का है। जिस प्रकार से वंशवाद कार्यक्रिया वाद के अन्तर्गत जनमानस अपने आप को सूर्य, चन्द्रमा की तरह अमरवाद में कीर्तिमान स्थापित करता है और हमेशा अमर रहने की इच्छा रखता है। आज इसी प्रकार के विचारों की क्रान्ति मानव–मन को प्रभावित कर रही है। जिससे कोविड 19 का खतरा और अधिक मानव मस्तिष्क को प्रभावित कर रहा है।

लेकिन विभिन्न प्रकार के विचारों से यह परिणाम निकलता है कि मानव जीवन सुरक्षित रहें। चाहें वह सामाजिक मतभेद हो या जाति, क्षेत्र, धर्म, भेद। जीवन रहेगा तो राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव कार्य करेगा और विकसित राष्ट्रवाद को आगे बढायेगा। हे ईश्वर तुझ पर ही सारा सर्वस्व है, तेरी न्याय पद्धति में जैसी औशधी है, तू स्वयं उससे इस मानव जीवन को जीवित रख और मानव को मानवीय गुणों से ओत–प्रोत रखकर जीवित, सक्रिय समाज का अंग बना। चाहे वह कोई भी मानव समुदाय हो या समाज सभी में प्रेम होना अवश्य है। बिना प्रेम के मानव जैविक क्रियाओं में सम्मिलित नहीं हो पाता है। प्रेम ही जीवन का आधार होता है। प्रेम के बिना मानव जीवन व्यापार की भाँति दिखायी देता है।

कहा गया है कि व्यक्ति जब धन पद या शरीर के शिखर पर होता है तब अपेक्षाओं का ताण्डव और भी अधिक होता है। अपने से कमजोर को देखते हुए वह आक्रामक हो जाता है। अपेक्षा चूंकि मन के संकुचन का कार्य करती है। अतः विवेक द्वारा इसका निवारण भी हो सकता है। जो मित अर्थात सीमितीकरण से मुक्त कराते ही वह मानवीय धरातल पर जीना शुरू कर देता है। मानव ज्यों–ज्यों अपेक्षाओं से मुक्त होगा उसका अचेतन खाली होता जायेगा जिससे प्रतिक्रियाओं का सिलसिला बन्द होने लगेगा और नकारात्मक भूमिका सिमटती चली जाएगी। व्यक्ति का यह प्रेम धीरे–धीरे उसकी आत्मा का विस्तार करने लगेगा।

वसुधैव कुटुम्बकम का भाव ही उसे नर से नारायण बना देगा और उसका जीवन जो अपेक्षाओं की बेड़ियों में बंधा या मुक्त हो जायेगा, उर्ध्वगामी हो जायेगा।

अपेक्षा से हमेशा पैदा होता है विषाद।
करें तौबा तो मिले सुख का प्रसाद।

आज इस प्रकार के समाज की आवश्यकता है कि वो समाज में ऐसे मनुष्यों का निर्माण करें कि जो मनुष्य जीवन का उद्देश्य समझे न कि मानव का जीवन, व्यवसायी बन कर रह जाय। इस विषय के अन्तर्गत मानव को परिस्थिति और विचार ही मानव को उत्थान और पतन के मार्गदर्शक बनते दिखायी देते हैं। जिससे कि विचारों को मानव जीवन के पथ प्रर्दशक तथा उत्थानकर्ता भी बनाया गया है। इसी प्रकार से मनोविकारों का वर्णन, प्रदर्शन इस महामारी के अन्तर्गत प्रदिर्शत किया गया है।

उपसंहार

सार स्वरूप यह निष्कर्ष निकला जा रहा है कि मानव में मानवीय प्रवृति जीवित रहनी आवश्यक है। इसके पश्चात हमारे राष्ट्र में सामाजिक, आर्थिक स्थिति में किसी कृत्त, सुकृत्य, नृत्य का अधिक प्रभाव लाभकारी सिद्ध होगा। आज हम विश्व गुरू कहलाने के जो नारे लगाते है वह साकार होगा। लेकिन हमें ध्यान रखना होगा कि हम मानव है दैत्य नहीं। हमें अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करना है। हमे रोज ईश्वर को ध्यान में रखना है। अपने काम को श्रेष्ठ मानना है। कर्तव्य पालन सदैव सतत वाहिनियों की तरह करना है। आध्यात्मिक बनने की पूर्ण कोशिश करनी है। अपने पर नियंत्रण रखना है। आत्म निरीक्षण करना है। अपनी भौतिकवादी आवश्यकताओं को कम करना है। मित्रता को बहुत सावधानी से करना है। सभी जनमानवों के प्रति अच्छी भावना रखनी चाहिए। सदैव मुस्कराने की आदत डालनी चाहिए। दूसरों का तथा अपना भी उत्साह बढाना चाहिए। जितनी वस्तुयें घर पर है उन्हीं से खुश रहना चाहिए। विचारों का आदान प्रदान आवश्यकतानुसार करना चाहिए। यदि भूलवश भी गलती हो गयी तो उससे सीखने की कोशिश करनी चाहिए। अहंकार के भाव को त्यागने की कोशिश करनी चाहिए। अपने गरम स्वभाव को नियंत्रण में रखना चाहिए। गलत कार्यो से दूरी रखनी चाहिए। शरीर को स्वस्थ्य, स्वच्छ रखने की कोशिश करनी चाहिए। यदि इन उपर्युक्त तथ्यों तथा संदेशों को हम इस शोध पत्र तथा पुस्तक के माध्यम से समाज तक पहुँचाते हैं और समाज में इसका आंशिक प्रभाव भी पड़ता है तो हमारे राष्ट्र में सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में सुधार अवश्य दिखेगा और हम जीत हासिल करेंगे। महामारी को दूर भगायेंगें। और जैसे काँटों में गुलाब, खेतों में गेहूँ, पशुओं में नीलगाय तथा गायों का विशेष महत्व है। वैसे ही विश्व में इस महामारी के समय भारत की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था उभर कर आयेगी। हम विश्व गुरू कहलायेंगें लेकिन हमें ध्यान रखना होगा कि हम भारतीय है, हम मानव है, हम मर्यादित है, हममें देव तत्व है, हमारे राष्ट्र में हिम श्रृंखलायें हिमालय पर्वत हैं, हम सम, विषम तथा पर्वत पठार, पहाड़ियों में जीवन यापन करने वाले मूल भारतीय हैं। हमारी भारतीय सामाजिक आर्थिक स्थिति इतनी उत्तम किस्म की होगी कि हमारी जो प्राचीन नीति नियमावली में पेयजल का स्त्रोत हुआ करता था कितने भी व्यक्ति प्राकृतिक जल धाराओं को उपयोग में लाते थे, जल सनातन धारा में सनातन तापमान में रहता था। हम प्रकृति से जुड़े रहने की कोशिश करेगें तो हमें कोई ताकत नहीं मिटा सकेगी। क्योंकि कुम्हार एक घड़े का निर्माण करता है लेकिन मिटटी अपने आप में मिट्टी से जुड़ी होती है। वह व्यक्ति की आवश्यकतानुार उसके किये गये कार्यो पर उसे लाभ देता है। अपने निर्माण आधार पर समय सीमा समाप्त होने पर वह मिट्टी में मिल जाता है। इसलिए कोविड-19 भी मानव ने मानव को समाप्त करने की पहल के रूप में विकसित किया हुआ एक महामारी प्रकोप है। इसलिए अभी सामाजिक स्थिति तथा आर्थिक स्थिति में भी यही दिखाई दे रहा है कि जो व्यक्ति जमीन से जुड़े हुए थे उन पर इस महामारी का प्रकोप न्यूनतम या भून्य पैमाने पर है। जो जमीन से ऊपर उठ गये थे ये उन पर सबसे पहले इसका हमला दिखाई दिया। इसलिए एक सन्देश है कि इस महामारी के मध्य में ही हमारे राष्ट्र में 492 वर्शो से एक लड़ाई चल रही थी वह समाप्त हुई। भारतवर्ष में श्री राम मन्दिर का भूमि पूजन किया गया। मन्दिर निर्माण प्रारम्भ हुआ यह सबसे बड़ा संदेश है कि यदि किसी भी कार्य में अति दुर्बलता, विपत्ति आने पर भगवान अपने आप उसका निदान करते है क्योंकि यह संघर्ष एक लम्बे समय से चल रहा था, अभी यह शुभ मुर्हूत आया। आयोजन करना जटिल हो गया लेकिन भगवान तभी अवतरित होते है जब विनाश की स्थिति में अस्थिरता आती है। यह ऐतिहासिक घटना और राम मन्दिर निर्माण प्रारम्भ होने से यह सन्देश विवेक पूर्ण प्राप्त होता है कि हमें अपनी

मर्यादा में ही रहना चाहिए तो हम सदैव जीवित चेतन स्वरूप मानव कहलायेगें और हम गर्व से कहेंगें कि हम भारतीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रामचरितमानस तुलसीदास*
2. *कल्याण गीता प्रेस गोरखपुर, पेज न. 23*
3. *उत्तराखण्ड का प्रादेशिक भूगोल एस सी खर्कवाल प्रकाशक–विनसर पब्लिशिंग कंपनी 8 प्रथम तल सिटी सेंटर 8–डिस्पेंसरी रोड*
4. *उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति प्रकाशक बुक डिपो डी सी बलूनी लोक गाथाएं बड़ा बाजार बरेली 243003*
5. *The Socio Economic Impact of COVID-19 in India Shanlax Journal of Arts. Science and Humanities, Vol8, Issue I, July, 2020 EISSN:258-0392*
6. *The Hindustan Times, 14 June, 2020 by Roshan Kishore & Abhishek Jha.*
7. *Mohamed & Others, The Extent of COVID-19 Pandemic Socio Economic Impact on Global Poverty, A Global Integrative Multidisciplinary Review, American Journal of Economics, 2020,10(4).*
8. *Over 75 Lack beings at food Camps, : MHA The Tribune, 2020.*
9. *COVID-19 Situation: Nearly 38000 Belief Camps Setup for migrant labours: Govt to SC, The Indian Express, 27 April, 2020.*
10. *Centre Releases Rs 4431 Crore to clear pending wages under MGNREGA, to pay all dues by April, 10' The Economic Times, 27 March, 2020.*
11. *3736 Shramik Special Trains ferried over 48 Lakh migrants since May 1, The Times of India, 28 May, 2020.*
12. *Vyas Mahesh, Unemployment rate touches 26 %, Centre for monitoring Indian economy, April 21, 2020.*
13. *Goyal Malini, COVID-19: How the deadly virus hints at a looming Financial Crisis?, The Economic Times, March 22, 2020.*
14. *Research Centre for Policy, Podcast: How had India's Lockdown impacted unemployment rate and income level?, Scroll in Retrieved April 24th, 2020.*
15. *Biman Mukharjee, Coronavirus Impact: Indian Industry seeks relief measures to aid economy, March 23rd, 2020.*
16. *Singh Sandeep, COVID-19 Pandemic spoils Indian Startup Funding party growth stage worst hit in Q1, 2020, Inc 42 Media, April 1st, 2020.*
17. *Chishti Seema, New resources: How lockdown has impacted Indian farmers, their yields, The Indian Express, May 28th, 2020.*
18. *COVID-19 educational disruption and response, UNESCO, May 24th, 2020.*

उदयपुरवाटी का प्रमुख लोकनाट्य : ख्याल गायकी

सुरेन्द्र कुमार सैनी
शोधार्थी, इतिहास विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

उदयपुरवाटी राजस्थान के शेखावाटी अंचल में स्थित है। उदयपुरवाटी ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट पहचान रखने वाला क्षेत्र है। हर्ष शिलालेख 961 ईस्वी के इस क्षेत्र का नाम उदार्भटिका वर्णित किया गया है। अरावली पर्वतमाला की उपत्यकाओं में बसा यह क्षेत्र अपने सांस्कृतिक वैभव व मनोरम दृश्य से पर्यटकों को भी आकर्षित करता है। शेखावाटी में ख्यालों का इतिहास ढाई सौ वर्ष पुराना रहा है। सबसे पहले फतेहपुर के प्रहलादीराम पुरोहित व झालीराम निर्मल ने अनेकों ख्याल लिखे थे। जिन्होंने अपनी मंडली (समूह) बनाते हुए जगह-जगह अभिनय करते हुए ख्याति प्राप्त की। उन्होंने अपनी कला को व्यावसायिक रूप कतई नहीं दिया, इसी कारण धीरे-धीरे ख्यालों का प्रभाव यहाँ के जागीरदार, सेठ-साहूकार व जनसमूह पर पड़ते हुए लोकप्रियता बढती गई। चिड़ावा के नानूराम राणा इस ख्याल समूह के सदस्य भी थे जिन्होंने बाद में अपनी मंडली बनाकर ख्याल करने लगे। राणाजी शुरू से ही संगीत प्रेमी रहे है वे गुरू की कृपा से संगीत, नर्तक गायक व ख्याल रचना में निपुण थे। मुख्यतः रचनाकार अभिनय भी करने के साथ-साथ संगीत प्रेमी भी होता है जिसमें चिड़ावा के राणा नाथूलाल ख्याति प्राप्त की है। साथ ही उदयपुरवाटी के राजोरिया भजन पार्टी गायक ख्याली जी डोई छापोली इसमें ख्याति प्राप्त की है।

संकेताक्षर : *शेखावाटी, उदयपुरवाटी, लोकनाट्य, ख्याल, अभिनय।*

लोकनाटकों की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है, जिसमें क्षेत्रीयता का बोलबाला होने के कारण सदैव लोकप्रिय है। कहीं-कहीं जगह पर उसे रम्मत तो या फिर तमाशा के नाम से जाना गया है। विशेषतः ख्याति 'ख्याल' की है जिसे उदयपुरवाटी या फिर शेखावाटी में लोकप्रियता मिली है। हालांकि प्राचीन काल में इन ख्यालों में वीर रस की प्रधानता रही है। फिर भी समय व व्यवस्थाओं के साथ इनमें अन्य रसों का समन्वय भी होता गया तो धार्मिक कथानकता का मिश्रण झलकता गया और व्यावसायिकरण से बाहरी क्षेत्रों में भी लोकप्रियता बढ़ती गई। पुरातन दौर में लोक नाट्य में मूलभूत तथ्यों का अभाव रहता रहा है, संभवतः लोग अपने व अन्य का मनोरंजन के लिए ही कला का प्रदर्शन करते थे। इन सबके बावजूद शेखावाटी का 'ख्याल' नाटक तत्वों से भरा होता है। क्षेत्रीय भाषाओं और स्थानीय परिवेश में होने के कारण सांस्कृतिक इकाई को समेटे हुए है। ये ख्याल के हिस्से है जो सांस्कृतिकता को समान आधार दिये हुए है।

हालांकि 'ख्याल' के रचनाकार की पूरी जानकारी लोगों को रहती है। नाटक व ख्याल में सिर्फ यहीं अंतर है कि नाटक में देखना व सुनना दोनों की प्रधनता होती है, परन्तु 'ख्याल' में सुनना ही प्रधान है और देखना गौण बन जाता है। क्योंकि 'ख्याल' संगीतमय और संवादों पर आधारित होता है। ख्यालों के रचनाकारों को कविता की जानकारी आंशिक होती है परन्तु संगीत में वे निपुण होते है। मुख्यतः रचनाकार अभिनय भी करने के साथ-साथ संगीत प्रेमी भी होता है जिसमें चिड़ावा के राणा नाथूलाल ख्याति प्राप्त की है। साथ ही उदयपुरवाटी के राजोरिया भजन पार्टी गायक ख्याली जी डोई छापोली इसमें ख्याति प्राप्त की है। शेखावाटी में ख्यालों का इतिहास ढाई सौ वर्ष पुराना रहा है। सबसे पहले फतेहपुर के प्रहलादीराम पुरोहित व झालीराम निर्मल ने अनेकों ख्याल लिखे थे। जिन्होंने अपनी मंडली (समूह) बनाते हुए जगह-जगह अभिनय करते हुए ख्याति प्राप्त की। उन्होंने अपनी कला को व्यावसायिक रूप कतई नहीं दिया,

इसी कारण धीरे–धीरे ख्यालों का प्रभाव यहाँ के जागीरदार, सेठ–साहूकार व जनसमूह पर पड़ते हुए लोकप्रियता बढती गई। चिड़ावा के नानूराम राणा इस ख्याल समूह के सदस्य भी थे जिन्होंने बाद में अपनी मंडली बनाकर ख्याल करने लगे। राणाजी शुरू से ही संगीत प्रेमी रहे है वे गुरू की कृपा से संगीत, नर्तक गायक व ख्याल रचना में निपुण थे। अपनी ख्यालों में सदैव उनहेंने गुरूजनों को ईश के समान पाया है व अपनी श्रद्धा रखी है।

''श्री हरिदत्त पंडित जी मुत्रकं काव्य का तंत पढ़ाया है।
गुरू कर कर किरण मेरा अज्ञान काम छुटवाया है।
व्रिप गुरु स्योबख्श राय मुकझूं गाना बतलाया है।
गुरु गोमंदराय जी मुझे नृतकारी भेद बताया है।
गुन गुन का मुरसद करना ये वेदों में फरमाया है।''
सुल्तान बादशाह को ख्याल।

प्रमुख ख्याल कलाकार

(1) नानूराम राणा

इन्होंने 50 से अधिक ख्यालों की रचना की थी। जिनमें उनकी निम्न ख्याल ख्याति प्राप्त है– खीमजी आमलदे, नकवै बैठा राजा, जगदेव कंकाली, ढोला मरवण, लैला मजनूं, नल राजा, सभा पर्व, विराट पर्व (चार भाग), हीर रांझा, रिसालू बेलादे, पठाण सहजादी, सुल्तान बादशाह, सोदागर, सेठ मुनीम, भगत पूरणमल, ढुल्लो घाड़ी, इन्द्र कंवर, नणद भौजायी, सेठ–सेठाणी को ख्याल, डूँगजी जवाहर जी, छोटा कंत, मोरधज, अमरसिंह को ख्याल, पद्मावती, पृथ्वीराज चौहान आदि। राणाजी ने अपनी ख्यालों में दूहा, लावणी, शेर, झड, कवित आदि छंदो का समिश्रण सजगता से किया है। वे रस सिद्ध कवि होने के साथ–साथ उच्चस्तरीय गायक भी थे। जिन्होंने गायकी से सभी को मंत्रमुग्ध किया है। उनहेंने सौरठ, भैरवी, असावरी, धना श्री, खमाच–राग–रागिनियों का भी प्रयोग ख्यालों में किया है।

''तुर्रा कलंगी'' ख्याल परम्परा का सुल्तान मरवण भात सीलो सतवंती प्रमुख है। उजीरा तेली की ख्याले शेखावाटी जगत को नये परवान चढ़ाने में भागीदार रही है जिनको कदापि भूला नहीं जा सकता है।

(2) प्रहलादीराम पुरोहित

प्रहलादीराम पुरोहित ख्याल गायकी के साथ कथानक दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका में रहे है, जो चिड़ावा के नानूराम राणा के घनिष्ठतम मित्र रहे है। पुरोहित जी की ख्याल शेखावाटी अंचल की भावनाओं व समाज की घटनाओं पर आधारित रही है जो लोगों की व्यवस्थाओं को प्रदर्शित करती है। प्रहलादीराम जी अनेकों ख्यालें लिखी है जिनमें निहालदे सुल्तान की ख्याल, बारहमासा, कलकत्ते की गजल, दूल्हे धाडवी को ख्याल, शहजादे की ख्याल, मोरध्वज को ख्याल, राजा नल को ख्याल, दानलीला, बिणजारे को ख्याल व गोपीचंद का ख्याल जगत प्रसिद्ध है। ये सभी ख्यालें समाज की हर जाति पर आधारित रही है।

(3) झालीराम निर्मल

निर्मल जी समन्वय व मिश्रण के धनी रहे है, जिनहेंने अपनी गायकी की शैली को नवीन रूप दिया है। जिसमें उन्होंने दूहों का उपयोग किया है। शेखावाटी के अनेकों स्थानों पर उन्होंने अपनी ख्यालों का अभिनय करते हुए रंगमंच तैयार किया है। झालीराम निर्मलजी प्रहलादीराम के समकालीन रहे है परन्तु उन्होंने अपनी अलग मंडली का गठन कर रखा था। इनकी अनेकों ख्याल प्रकाशित भी हो चुकी है :– ख्याल जोहरी का, बिणजारे को ख्याल, शहजादे को ख्याल, निहालदे सुल्तान, रिसालू राजा को ख्याल आदि।

(4) प्रेमसुख भोजक

गायक, कवि व अभिनेता होने के साथ–साथ वे स्वांगधारी थे, जिन्होंने नुक्कड़ नाटकों में गली–मोहल्लों में मंच बनाकर ख्यालों का मंचन किया करते थे। भोजक जी पर स्वतंत्रता संग्राम 1857 ई. का गहरा प्रभाव रहा। उनमें ब्रिटिश विरोधी भावना कूट–कूटकर भरी हुई थी। यही कारण था कि वे देशभक्ति से ओतप्रोत ख्यालें का प्रदर्शन किया करते थे। अंग्रेजों की निरंकुशता के विरुद्ध आवाज उठाते हुए उन्होंने शेखावाटी क्रांतिकारी 'डूंगजी–जवाहर जी ख्याल' पर सशक्त अभिनय करते हुए देशप्रेमी भावना लोगों में भरने की कोशिश की। उनकी वाणी और विचारों में ओज भरा हुआ था। फतेहपुर शेखावाटी में उन्हें लोक देवता के रूप में स्मरित किया जाता है।

'राजा मोरधज' उनकी सबसे प्रभावित करने वाली ख्याल थी। जिसमें राजा मोरधज और उनकी धर्मपत्नी द्वारा राजकुमार रत्नकुंवर के सिर को करोत से चीरने के दृश्य भावुक करने वाला था। राव राजा माधवसिंह (सीकर) इस दृश्य को देख रोने लग गये थे। राव राजा ने भविष्य के लिए भोजकजी को निर्देशित किया कि ऐसे दुखांत ख्याल कभी ना करें। किंतु राजाजी काफी खुश भी हुए। उन्होंने बीस ख्यालें लिखी जिनमें डूंगजी–जवाहरजी, राजा भोज, राजा मोरधज, राजा विक्रमादित्य, राजा करण, सेठ–सेठानी, शिशुपाल–रूकमणी व जाट को मुख्य ख्याले रही।

ख्यालों के अभिनय क्षेत्र

शेखावाटी में ख्यालों के अभिनय का मंचन 19–20वीं सदी में चरम सीमा पर था। यहाँ के चिड़ावा से फतेहपुर शेखावाटी तक फैला था किन्तु ख्याल के जन्म के लिए बिसाऊ विशेष रूप से जाना गया है। क्योंकि नानूराम राणा द्वारा ख्यालों का मंचन प्रथम रूप से यहीं किया करते थे। यहाँ के विद्वानों द्वारा लिखित ख्यालों व प्रेमियों से आज्ञा लेकर ही दूसरी जगह मंचन करते थे। गुरू सदारामजी (बिसाऊ) जो प्रसिद्ध ख्याल लेखक रहे है जो गायक व कलाकार भी थे। यहाँ के प्रमुख कलाकार इन्हीं से निर्देशन प्राप्त करते थे। उनका कोई सानी नहीं था। उनकी 'नसरूद्दीन हसन फरोस' का प्रकाशन भी हुआ है। बिसाऊ में राणा जाति के अनेक लोक गायक भी हुए है। जिन्होंने इस परम्परा को आगे बढ़ाया है। उदयपुरवाटी की राजोरिया भजन पार्टी जो ख्याली डोई स्थानीय छापोली के निवासी रहे है जिनहेंने इस अंचल में ख्याति प्राप्त की है।

स्थानीय सेठ–साहूकारों ने भी शेखावाटी में ही नहीं बल्कि बंगाल, आसाम व महाराष्ट्र आदि राज्यों में भी इस लोक कला का प्रचलन करवाया है। उन्होंने विभिन्न ख्याली मंडलियों को क्षेत्रों में आमंत्रित कर विकास करवाया। उदयपुरवाटी के ही मंडावरा ग्राम पंचायत के सीटंडी ग्राम में धूणेश्वर धाम आश्रम में ख्याल व भजन मंडली द्वारा कार्यक्रम आयोजित होते रहते है।

ख्यालों का कथानक

यहाँ के अधिकांश ख्याल लेखकों ने विभिन्न रचनाओं के माध्यम से कथानक संबंधी परिवर्तन अवश्य किया है। संवाद व गायकी में अवश्य अंतर देखने को मिलता है। ख्याल शुरू करने की भी एक परिपाटी है। जिसमें मूलतः खुले मंच का उपयोग होता है। वादक व गायक निश्चित स्थान पर विराजमान होते है। नारी की भूमिका निभाने वाले भी पुरुष ही होते है। इनके द्वारा सर्वप्रथम गणेश, सरस्वती वंदना की जाती है जिससे की वे अपने गुरू को स्मरण कर सके। इसके उपरांत वे ख्याल का परिचय देकर शुरूआत करते है। उदयपुरवाटी की ख्यालों की विषयवस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक व धार्मिकता के साथ वीर प्रधानता पर आधारित होती है। लोक नाटकों में हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से प्रभावशाली भी बनाया जाता है जिससे कि लोगों को संदेश दिया जा सके। उन्होंने दर्शकों को यहीं संदेश देने की कोशिश की हैं–

''खाना पीना खेलना है, कोई दो दिन की बात।
आखर कू मर जाना बंदे, कछु ना चले है साथ।।''

शेखावाटी में ख्यालों का इतिहास ढाई सौ वर्ष पुराना रहा है। सबसे पहले फतेहपुर के प्रहलादीराम पुरोहित व झालीराम निर्मल ने अनेकों ख्याल लिखे थे। जिन्होंने अपनी मंडली (समूह) बनाते हुए जगह–जगह अभिनय करते हुए ख्याति प्राप्त की। उन्होंने अपनी कला को व्यावसायिक रूप कतई नहीं दिया, इसी कारण धीरे–धीरे ख्यालों का प्रभाव यहाँ के जागीरदार, सेठ–साहूकार व जनसमूह पर पड़ते हुए लोकप्रियता बढती गई। चिड़ावा के नानूराम राणा इस ख्याल समूह के सदस्य भी थे जिन्होंने बाद में अपनी मंडली बनाकर ख्याल करने लगे। राणाजी शुरू से ही संगीत प्रेमी रहे है वे गुरू की कृपा से संगीत, नर्तक गायक व ख्याल रचना में निपुण थे। साथ ही उदयपुरवाटी के राजोरिया भजन पार्टी गायक ख्याली जी डोई छापोली इसमें ख्याति प्राप्त की है। इस प्रकार उदयपुरवाटी की ख्याल गायकी का यहां की लोक नाट्य कला एवं सांस्कृतिक वैभव में महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *देवीलाल सांभर, लोक नाट्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ, , पृ. 12*
2. *एच. एस. आर्य, भोखावाटी का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 2008, पृ. 25*
3. *Shekhawati Anchal Blospot.com, लेख– 6 सितम्बर, 2015*
4. *वही।*
5. *डॉ. अरूण कुमार (सम्पादक), लोकमंच पत्रिका (राजस्थानी लोकनाट्य ख्याल), 24 मार्च, 2020*
6. *वही।*
7. *वही।*
8. *वही।*
9. *डॉ. दिवाकर गरवा, राजस्थानी लोकनाट्य ख्याल, लेख– 7 नवंबर, 2011।*
10. *वही।*
11. *Shekhawati Anchal Blospot.com, लेख– 6 सितम्बर, 2015*
12. *अडूका, लक्ष्मण सिंह –चिड़ावा अतीत से वर्तमान तक, पृष्ठ संख्या 65*
13. *निरंजन जोशी, बिसाऊ का इतिहास, पृष्ठ संख्या 89*
14. *मनोहर सिंह राठौड, उदयपुरवाटी दिग्दर्शन, पृष्ठ संख्या 99*
15. *मनोहर सैनी, निवासी छापोली से ली गई जानकारी*

"लोकनाट्यों के संरक्षण व संवर्द्धन में परम्परागत संचार माध्यमों की भूमिका"

डॉ. योगेश शर्मा
अतिथि शिक्षक, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

शोध सारांश– लोकनाट्य किसी भी देश की सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक अस्मिता की वास्तविक पहचान होते है। लोक संस्कृति एक विशाल सागर के समान है, जिसमें न जाने कितनी ही सांस्कृतियों रूपी नदी–नाले उस सागर में मिल जाते है और उसका अभिन्न अंग बन जाते है। आमजन इन कथाओं से अभिभूत होकर मनोरंजन के साथ–साथ ज्ञानार्जन भी करता है। वर्तमान में बाजारवाद और भूमण्डलीकरण ने शाश्वत मूल्यों का बहुत नुकसान किया है। लोक सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण तीव्रगति से हो रहा है। आज के समय की सबसे बड़ी जरुरत है कि लोक सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण किया जाए। आधुनिक काल में हुए औद्योगिक विकास, आविश्कारों, मनोरंजन के साधन– रेडियों, टीवी व अब मोबाईल के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता को विघटित किया है। ऐसे समय में लोक नाट्यों के संरक्षण व संवर्धन के लिए परम्परागत माध्यमों का उपयोग अवश्यंभावी है। इस शोध पत्र के माध्यम से "लोकनाट्यों के संरक्षण व संवर्द्धन में परम्परागत संचार माध्यमों की भूमिका" की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उसकी उपादेयता के बारे में बताने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *लोकनाट्य, लोक संस्कृति, दंतकथा, भावाभिव्यंजना, धरोहर, परिष्कृत कला, बाजारवादी अपसंस्कृति, भूमण्डलीकरण, कृत्रिम अभिजात्यता, अनुष्ठान, नवनिर्माण।*

भारत के विभिन्न प्रदेशों की पहचान उनकी अलग–अलग भौगोलिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर की जाती है। यहां की लोक संस्कृति का निर्माण जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने के संघर्ष और अभावों से सामंजस्य की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया से हुआ है। समाज में वर्गभेद की भावना को समूल नश्ट करने का उन्होंने जो प्रयास किया वह स्तुत्य और अनुकरणीय है। सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए अपने जीवन का सर्वस्व न्यौछावर करने वाले वीरों को जन मानस ने लोक नायक जैसे उच्च पद पर आसीन किया है। ''बचन बाप मरदां का कहीजै जुग में एक'' कथनी और करनी में इतना सामिप्य और वह भी वीर रस से ओत प्रोत। वीरों का ऐसा आदर्श जीवन चरित जन–मानस के लिए प्रेरणा पुंज है और मार्गदर्शन का स्रोत है।[1] प्रत्येक गांव में देवळ, थान, और चबूतरे लोक मानस के आस्था के केन्द्र के रूप में विद्यमान है। इन वीरों ने अपने दृढ़ आत्म बल के आधार पर लोकमंगलकारी कार्य किए। उन्हीं के समक्ष आज भी हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है।

वर्तमान परिवेश में परिवर्तन के साथ ही साथ परिस्थितियों में व्यापक स्तर पर बदलाव आया है। सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताएं भी बदल गई है। आमजन आर्थिक संसाधन जुटाने के प्रयास में अपनी परम्परागत लोकनाट्य शैलियों से बिछुड़ता जा रहा है। एक समय था जब गली–मौहल्लों में मदारी, जादू, ख्याल, कठपुतली, फड़ वाचन, नट नृत्य को देखने के लिए भीड़ उमड़ती थी। इस प्रकार के प्रदर्शनों से जनसमूह मौज मस्ती, आनंद के साथ लोक देवी देवताओं के जीवनी का स्मरण करते हुए उनके सन्मार्ग पर चलने का संकल्प लेता था। इसके अलावा लोक कलाकारों

को भी यथा योग्य आर्थिक सहायता, अनाज, भोजन सामग्री व कपड़ों आदि को मनोरंजन शुल्क के रूप में देकर लोक नाट्य शैली को सजीव बनाए रखते थे, लेकिन आज यह वातावरण केवन दंतकथा के कथानक की तरह सुनने योग्य रह गया है।

लोकनाट्य किसी भी देश की सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक अस्मिता की वास्तविक पहचान होते है। "लोक संस्कृति में लोकनाट्य का रूप उजागर होता है। लोक संस्कृति एक विशाल सागर के समान है, जिसमें न जाने कितनी ही सांस्कृतियों रूपी नदी–नाले उस सागर में मिल जाते है और उसका अभिन्न अंग बन जाते है।"[2] यह लोक संस्कृति विशाल समुन्द्र बन आम जन–जीवन में रस घोल देती है। राजस्थान की संस्कृति अपनी प्राचीन परम्परा, विविध संस्कृतियों के संगम तथा अनेक कलात्मक अवदनों के कारण आज विश्व जगत में महान संस्कृतियों में अपना विशिश्ट स्थान रखती है। भावना प्रधान आस्था और विश्वास पर होने के कारण लोक नाट्य मानव जाति की विस्तृत भावाभिव्यंजना को प्रकट करते है।

''लोक गाथा और कथाओं के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंगों में लोकदेवी–देवताओं को अभिव्यक्त कर समाज और आमजन को शिक्षा प्रदान की जाती है और लोकदेवी–देवताओं की गाथा किसी पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लौकिक घटनाओं से जुड़ी होती है, जो कथा प्रसंगों के साथ–साथ रहस्यमय घटनाओं से भी ओतप्रोत होती है। ऐसी रहस्यमयी और चमत्कारिक घटनाएं आमजन में अत्यधिक प्रचलित है।''[3] आमजन इन कथाओं से अभिभूत होकर मनोरंजन के साथ–साथ ज्ञानार्जन भी करता है। लोक संस्कृति का स्वरूप मनुष्य जाति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में अभिव्यक्त होता है, जो लोक जीवन को व्यवस्थित और गतिशील बनाने में सहायक है।

इन विभिन्न परम्पराओं एवं संस्कारों में अभिव्यक्त लोक संस्कृति लोक जीवन में रस घोलते हुए लोक को आनंदानुभूति प्रदान करती है। लोक संस्कृति में लोक जीवन का साहित्य किसी भी सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान होता है। अतः सही अर्थो में राजस्थान के लोकदेवी–देवता एवं उनकी कथाएं राजस्थानी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। लोक संस्कृति में धर्म के साथ–साथ पुराण तथा आख्यान सभी कुछ समाया रहता है। लोक का सर्वांगीण रूप लोक का पूर्ण जीवन लोक के हर्ष–विषाद, आवेश–आक्रोश, शौर्य, आशा–निराशा लोक संस्कृति में परिलक्षित होती है। लोकदेवी–देवताओं की वीरता, साहस, पराक्रम और चमत्कारों की अनेक कथाएं और किवदंतियां आज भी लोक समाज में प्रचलित है। "लोकदेवी–देवता सामाजिक पृष्ठभूमि में प्रतिष्ठा प्राप्त करन वाले ऐसे पुरूष और स्त्रियां है, जो कोई बड़े राजा–महाराजा नहीं थे, उनके द्वारा किए गए त्याग और बलिदान से वे समाज में पूजनीय बन गए। आमजन ने इन महापुरूषों और वीरागंनाओं को ईश्वर तुल्य मान–सम्मान दिया और उनकी स्मृति में मंदिर व स्थानक आदि बनवाए।"[4] ऐसे में देखा जाए तो लोक देवी–देवता आज भी जनमानस के हृदय में गहरी पेंठ रखते है।

लोक कलाएं अपनी विषय वस्तु और सामाजिक उपयोगिता के आधार पर सामान्य जन की धरोहर का मजबूत दावा पेश करती है। मार्क्स ने कहा था कि– "समृद्ध मनुष्य वह है, जिसे जीवन की मानवीय अभिव्यक्ति की उनकी सम्पूर्णता में जरूरत होती है तथा जिसके लिए इन्हें प्राप्त करना एक आतंरिक आवश्यकता होती है"। ''सांस्कृतिक उपलब्धियां चूंकि मनुष्य के यथार्थ जीवन के क्रिया–कलापों से परिपुष्ट होती है, इसलिए मानवीय अभिव्यक्तियों की सम्पूर्णता प्रदान करने में इनकी बहुत बड़ी भूमिका और योगदान होता है।''[5] संस्कृति आम जनता के जीवन जीने का सम्पूर्ण ढंग है। साधारण लोग ही इसके निर्माता, संरक्षक और संवाहक होते है। वस्तुतः सस्कृति एक जीवंत और सक्रिय प्रक्रिया है। यह अपने भीतर ही विकसित होती है, इसे ऊपर से थोपा नहीं जा सकता।

भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित लोकनाट्य

क्रम संख्या	राज्य का नाम	प्रचलित लोक लोकनाट्य
1	कश्मीर	भांडजश्न अथवा पथ्र
2	हिमाचल प्रदेश	करियाला
3	असम	अंकियानाट
4	बंगाल	जात्रा, नकाब
5	हरियाणा	स्वांग
6	उत्तरप्रदेश	रासलीला, रामलीला, कीर्तनिया, नौटंकी, भगत
7	बिहार	बिदेसिया, जट जटिन, बिदापत
8	मध्यप्रदेश	माच
9	गुजरात	भवाई
10	महाराष्ट्र	तमाशा, दशावतार, गोंधल, लळित
11	आन्ध्रप्रदेश	कुरवंजि
12	कर्नाटक	यक्षगान, दोड्डाता, बयलाट
13	तमिलनाडु	तेरुकुत्तु या विधिनाटकम्
14	केरल	कुडियाट्टम।
15	राजस्थान	ख्याल, पड़, गवरी, रम्मत, रासलीला व रामलीला।

भारतीय लोक नाट्य और नृत्य की सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति लय (ताल) है। ढ़ोल की हल्की थाप से लेकर परिष्कृत कला के रूप में विकसित होने तक लय और ताल ही नृत्य के मुख्य आधार है। लोक नाट्य, नृत्यों और लोक गीतों में ग्रामीण और आदिवासी समाज का जीवन हिलोरे लेता है। उनके सरल सामुदायिक जीवन में इन्ही के माध्यम से खुशी का इजहार होता है तथा उनके परिश्रम का पर्याय होते है। ये जन-मानस के सामाजिक और धार्मिक जीवन के मुख्य भाग है। "सांस्कृतिक परम्परा को आगे ले जाने व सहेजने में भारतीय व राजस्थानी लोक संगीत, लोक नृत्य और लोक नाट्यों के संरक्षण और विकास में लोक समुदायों का महत्वपूर्ण योगदान है। यह उनके सामान्य जीवन का अंग भी है।"[6]

विश्व सभ्यता के ऊषाकाल से अद्यतन बाजारवादी अपसंस्कृति के प्रदूषित संसार में एक बात स्थापित सत्य है कि जब-जब सहज सहकारी परम्परानुमोदित लोकमानस ने अपने हर्ष, विषाद्, उत्साह, अवसाद, खुशी, पीड़ा, सुख-दुःख इत्यादि मनोवेगों को व्यक्त करने के लिए जिन माध्यमों का आश्रय लिया वे बहुआयामी कहे जा सकते हैं। गेय रूप में उसने गीत गाये, प्रबंध गीत में गाथाएँ रची, भावानुकीर्तन के रूप में नाट्य रचे और जब अंग-प्रत्यंग हर्षित हुआ, उल्लसित हुआ तब उसके अंग संचालन संग भाव मुद्राएँ जिस अशास्त्रीय छंद, लय, ताल की लक्ष्मण रेखा से मुक्त व्यक्त हुई उसे शिष्ट समाज ने लोक नाट्क की संज्ञा से अभिहित किया। लोक नाट्य उतने ही अनादि है और कालातीत है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। ऋग्वेद में लोक शब्द के लिए 'जन' शब्द में प्रयुक्त हुआ है यजुर्वेद में लोक की विराट कल्पना की गई है। वह पुरुष रूप ईश्वर है उसके सहस्त्र मुख, सहस्त्र नेत्र और सहस्त्र पद है- सहस्त्रशीर्ष पुरुष सहस्त्राक्ष सहस्त्रपात।

विद्वान पाणिनि ने अपनी कृति अष्टाध्यायी में लोक तथा सर्व लोक शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनसे 'ठ' प्रत्यय करने पर लौकिक या सार्वलौकिक शब्दों की नियति की है।"[7] भरतमुनि ने अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख लोक की पृथक सत्ता को स्वीकार किया है। महर्षि वेदव्यास ने लोक शब्द का प्रयोग जनसाधारण के अर्थ में किया है साथ ही

'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां हो सर्वदर्शी भवेन्नरः' कटकर लोक की महत्ता स्वीकार की है। लीला पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण ने गीता में लोक संग्रह पर बहुत बल दिया है और वह अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं–

कर्मण्य ही संसिद्धिमास्थिता जनकादयरू लोक संग्रहमेवापि संपश्यनक्रतुमरहसि।

वैसे तो लोक शब्द मानव मात्र का वाचक है। परंतु यह शब्द सामान्यतः ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो निरक्षर या कम पढ़े-लिखे हैं। ब्रिटानिया विश्वकोश में इसकी व्याख्या इस प्रकार दी गई है –आदिकालीन जातियों के समस्त व्यक्तियों को ही 'लोक' की संज्ञा दी जाती है तथा इसके व्यापक अर्थ में किसी भी सभ्य देश के समस्त निवासियों के लिए इसे प्रयोग किया जा सकता हैं।

लोकनाट्य शब्द लोक तथा नाट्य, इन दो शब्दों से बना है। लोक से तात्पर्य जनसाधारण से है, जो चाहे गांव का रहने वाला हो अथवा शहर का। उसकी शिक्षा–दीक्षा, पहनावा, आचार–विचार, संस्कार और व्यवहार उस देश की प्रतिनिधि संस्कृति के प्रतीक हों और जनसाधारण की वृत्तियों का मूर्तरूप हो। लोकजीवन में लोकनाट्य से अर्थ उस सांस्कृतिक विधा से लिया जाता है जो आनंद एव उल्लास के अवसरों पर सामूहिक अभिव्यक्ति का सहज अनुकरण हो। आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलॉजी के असर से कुछ लोकनाट्यों की संरचनाओं में बदलाव भी आया है। कुछ की पहचान धूमिल हुई है तो कुछ लोकनाट्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ख्याति भी पा गए हैं। लोकनाट्यों की इस विपुल और प्राचीन विरासत को लोक ने अपनी साधना और लगन के बल पर लोकजीवन में, मनुष्य के जीवन में उसका एक अंग बनाकर प्रतिष्ठित कर दिया है। ये लोकनाट्य मनोरंजन करने वाली कोरी कलाबाजी नहीं हैं, बल्कि ये इतिहास, संस्कृति, कला, दर्शन और कुल मिलाकर जीवनधर्मिता के वाहक हैं। ये लोकनाट्य हम सभी के हैं।

देश की विविध लोकनाट्य–विधाएँ अपने विशिष्ट गुणों के लिए भी विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। जैसे–नौटंकी खेल अपने प्रेमाख्यानों के लिए पसन्द किये जाते हैं। ब्रज की रासलीलाएँ भक्तिपरक लीलाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। "किसी देश की लोक–संस्कृति का महत्त्व उस देश के जीवन में निर्विवाद है। उसका अपना स्वतंत्र प्रवाह होता है, जो निरंतर प्रभावित हुआ करता है और जो बड़ी कठिनता और युगों के प्रयत्न से किंचित् परिवर्तित किया जा सकता है। उसमें स्थायित्व का तत्व अधिक होता है और परिवर्तनशीलता की प्रवृत्ति बहुत कम।"[8] लोक–संस्कृति लोक अर्थात् जनसामान्य की संपत्ति होती है। समाज का अधिक शिक्षित वर्ग अपनी ऊँची संस्कृति के नशे में शीघ्रता से आगे बढ़ता जाता है और वह परिवर्तन के चक्कर में भी अधिक रहता है। संस्कृति के क्षेत्र में भी उसे प्रयोग करना अच्छा लगता है, जिसका अवश्यंभावी परिणाम संस्कृति का शीघ्रता से रूप–परिवर्तन होता है, पर लोक–संस्कृति का प्रभाव मंद होता है, साथ ही निरंतरता को स्थायित्व देनेवाला भी।

संरक्षण–संवर्धन हेतु सुझाव – वर्तमान में बाजारवाद और भूमण्डलीकरण ने शाश्वत मूल्यों का बहुत नुकसान किया है। लोक सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण तीव्रगति से हो रहा है। आज के समय की सबसे बड़ी जरुरत है कि लोक सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण किया जाए। लोक विश्वास, लोक पर्व, लोक देवता, लोक नाट्यों, लोक नृत्यों और लोक सन्दर्भो की मीमांसा वैज्ञानिक दृष्टि से करने की आवश्यकता है। लोक गीत, लोकगाथा, लोकोक्तियां आदि जैसे विषय लोक संस्कृति अध्ययन के प्रमुख स्रोत हैं। लोक उत्सवधर्मी है, जो अभावों में भी उल्लास का अवसर ढूंढ लेता है। ''यदि गाकर दुःख हल्का करने की चर्चा न होती तो संस्कृति समाप्त हो चुकी होती।''[9] लोक संस्कृति सिमट रही है। परम्पराओं को तोड़ा जा रहा है, नयी पीढ़ी रुचि नहीं ले रही। संस्कार, गीत, ऐतिहासिक बातें, दादी– नानी की कहानियां, लोक नाट्य, लोकगीत व लोकनृत्य इस दौड़भाग भरी जिन्दगी में अपना अस्तित्व नहीं रखते हुए लुप्त हो रहे हैं। यहां लोकगीतों को फिल्मी तर्ज पर फूहड़ तरीके से गाया जा रहा है। वहीं लोकनृत्यों में भी व्यावसायिकरण नजर आ रहा है। भारतीय लोक संस्कृति में छिपे लोक संकेतों का अन्वेषण यदि नहीं किया जायेगा तो यह निश्चित रूप से लुप्त हो जायेगी। लोक संस्कृति के संरक्षण से तात्पर्य उन लोक कलाओं, लोक नाटयों व नृत्यों से है, जिनका वर्तमान में संरक्षण व संवर्धन अति आवश्यक है।

लोक की कल्पना जितनी गहरी होती है, उतनी ही दृढ़ भी। लोक नाटय सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालते है। आस्था और विश्वास के केन्द्र लोक देवी–देवता विपत्ति और निराशा की घड़ियों में सम्बल बन जीवन के व्यतिक्रम को बिखरने, टूटने

से बचाकर आशा का संचार करते आए है। लोक देवी–देवता दीपक की वह उजली, पवित्र, मद्धम–सी जलती लौ है, जो आमजन के हृद्धय रूपी आंगन में निरन्तर उजियारा बिखरेती रहती है। लोक देवी–देवताओं ने धर्म की भावभूमि पर जिस सांस्कृतिक मूल्यों व आदर्शो का निर्वाह किया, जिससे देश की सांस्कृतिक विराटता से लोक मानस का सीधा सम्पर्क व सम्बंध स्थापित होने में बहुत बड़ी सहायता मिली है। ऐसे में यह कहा जाए कि लोक देवी–देवता संस्कृति के सच्चे अर्थो में प्रहरी है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। देश की एकता और अखण्डता को स्थायी रखना है तो वहां की संस्कृति को सहज कर रखना होगा। संस्कृति से तात्पर्य लोक में प्रयुक्त होने वाले वे सभी पहलू शामिल है जिसके अन्तर्गत हमारी संस्कृति रची बसी है। यदि लोक कला बचेगी तो संस्कृति बचेगी और संस्कृति बचेगी तो देश बचेगा अर्थात् सभी लोक नाट्यों का अपना विशेष स्थान है।

राज्य की ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण संवर्धन एंव उनका सर्वागींण विकास करना है। इसी क्रम में राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के रख रखाव एवं उन्नयन के लिए संगीत, नृत्य, नाटक, लोक गीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य, लोक कला आदि का विकास तथा इनका व्यापक प्रचार–प्रसार, प्राचीन पुरातात्विक स्थलों व स्मारकों का संरक्षण, सर्वेक्षण, अनुरक्षण एवं प्राचीन अभिलेखों व दुलर्भ पांडुलिपियों को संग्रहित कर उनका वैज्ञानिक तरीके से संरक्षण तथा राजस्थान की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहरों को सुरक्षित रखना आदि महत्वपूर्ण कार्यो का संपादन करना है। इन महत्वपूर्ण कार्यो के क्रियान्वयन से लोक संस्कृति को अक्षुण बनाए रखने के साथ–साथ भावी पीढ़ी को अपनी संस्कृति के प्रति अभिरूचि उत्पन्न करने का कार्य भी होता है। भारत की समृद्ध सास्कृतिक धरोहर को संरक्षण एवं संवर्धन प्रदान करने के उद्देश्य से विभिन्न विद्यालयों के बच्चों में रचनात्मक एवं लयात्मक अभिरुचि को बढ़ावा देने हेतु गांव की थाती से जोड़ती लोक नाट्यों की फड़ शैली से रूबरू कराया जाना चाहिए। ये लोक नाट्य ही हैं जो हमें गांव की थाती से जोड़ती है। इनका हमारे समाज और संस्कृति की संरचना में महत्वपूर्ण योगदान है। हम सब का कर्तव्य है की हम इसके संवर्धन और संरक्षण के लिए जरूरी कदम उठाएं। इससे कहीं न कहीं ये बात पुष्ट होती है की न केवल शहर और गावों के बीच दूरी बढ़ रही है, बल्कि दो पीढ़ियों के बीच सांस्कृतिक संवादहीनता नजर आ रही है। बदलते दौर में संस्कृति और परम्पराओं के साथ–साथ अपने देश के गौरवशाली इतिहास को बचाने की चुनौती हर सरकार के सामने रही है।

आज विलुप्त होती लोक कलाओं, साहित्य, नृत्यों व लोक नाट्यों को केवल सरकारी हीं नहीं बल्कि सामाजिक संगठनों के सहयोग की आवश्यकता है। ऐसी कलाओं का वास्तविक आधार समाज अथवा लोक है। आधुनिक काल में हुए औद्योगिक विकास, आविश्कारों, मनोरंजन के साधन– रेडियों, टीवी व अब मोबाईल के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता को विघटित किया है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में पाश्चात्य प्रभाव से विकसित हुआ लोगों का कृत्रिम अभिजात्यता से आरोपित व्यक्तित्व लोकोत्सवों के प्रति संकोचशील होकर उनसे विमुख होता जा रहा है। तो दूसरी ओर लोक नाट्यों के व्यवसायियों ने इसे व्यावसायिक रूप दे दिया है, जिससे इसका मूल स्वरूप और भावभूमि खंडित हो रहे है। उचित होगा कि शासकीय एवं संस्थागत संरक्षण के साथ–साथ लोक नाट्यों की इस कला के प्रति लोगों की उपेक्षा को अभिरूचि में बदलने का प्रयास कर इन्हें प्रतिश्ठित करने का व्यापक रूप से अनुश्ठान आयोजित हो।

"वैदिक काल से लेकर अब तक पूरा सस्कृत वांङ्मय और मध्यकालीन तथा अधुनिक शिष्ट साहित्य, दार्शनिक चिंतन, आध्यात्मिक तथा धार्मिक साधना, ललित कलाओं, नृत्य कलाओं और लोक नाट्यों के क्षेत्र की विविध उपलब्धियों के समष्टि रूप में भारतीय संस्कृति के नाम से अनिहित होती हैं पर लोक–संस्कृति के नाम पर हर प्रादेशिक क्षेत्र की अपनी विशेषताएँ हैं। उनके गीत, उनकी लोक कथाएँ उनकी नृत्य–शैली, सबमें भिन्नता मिलेगी।"[10] जब से हमारा देश स्वतंत्र हुआ है तब से हमारे जातीय जीवन के उपेक्षित अंग फिर से मान्यता प्राप्त करने लगे हैं। उनके पुनरुद्धार, विस्तार और संरक्षण के प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे हैं। इन चिर–उपेक्षित अंगों में लोक–संस्कृति भी एक है। आज स्थिति बदल गई है कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम लोक–संस्कृति के अभाव में सफल नहीं समझा जाता। यदि लोक–संस्कृति पर अधिक बल देने से प्रादेशिकता या स्थानीयता की भावना की प्रश्रय मिल सकता है, जो भावात्मक एकीकरण के कार्य में लगे हुए देश के लिए

घातक होगा। इसलिए देश का कल्याण इसी में है कि लोक कलाकारों के साथ साथ लोक–संस्कृति का मान करते हुए उसके संरक्षण का सफल प्रयत्न करते हुए उसके महत्त्व को अतिरंजित न होने दें। आम तौर पर सांस्कृतिक महोत्सवों और कला मेलों में आने वाले नाट्य कलाकार अपनी उपेक्षा और आयोजकों के रवैये से नाराज रहते हैं, ऐसे आयोजनों को दिखावा और महज कुछ लोगों के फायदे के लिए बताते हैं, जो लोक कलाकारों के लिए उपेक्षा की श्रेणी आता है। इस व्यवस्था में बदलाव कर सुव्यवस्थित तरीके से लोक समारोहों का आयोजन होने चाहिए जिससे ऐसी शंकाओं का समाधान हो सके। साथ ही अपने देश के पुरातत्व और इतिहास से जुड़े प्राचीन दस्तावेजों को लेकर अपनी धरोहरों को बचाने और इनके पुनरुद्धार को लेकर कोशिशें की जानी चाहिए।

सुझाव– लोक संस्कृति के तत्वों के विस्तार, इसके संरक्षण और नई पीढ़ी को इससे जोड़ने की कोशिशों के साथ–साथ एक सबसे बडा काम उन लोक नाट्य कलाकारों और संस्कृतिकर्मियों के डाटाबैंक बनाने का भी होना चाहिए, जिससे देशभर के उन तमाम लोगों की पहचान की जा सकें, जो वास्तव में कला और संस्कृति के लिए समर्पित है या जिनका कोई न कोई योगदान इस क्षेत्र में रहा है। इससे उन कलाकारों को पहचानने और उनकी जीवन शैली के साथ–साथ कला और परम्परा को बेहतर बनाने की दिशा में काफी फायदा मिलेगा। ऐसा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किया जा सकता है। संस्कृति का निर्माण हजारों वर्श के सद्संस्कारों से मिलकर होता हैं व्यक्ति अपने जीवन से विदा लेकर चला जाता है, परन्तु वह अपने पीछे जीवन की कुछ ऐसी विशेषताएं छोड़ जाता है, जो आगामी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायी होती है और इन्ही विशेषताओं से भावी पीढ़ी सीख लेती है।

''लोक नाट्य किसी भी देश की सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक अस्मिता की वास्तविक पहचान होते है। लोक संस्कृति में लोक नाट्य का रूप उजागर होता है।''[11] लोक संस्कृति एक विशाल सागर के समान है, जिसमें न जाने कितनी ही सांस्कृतियों रूपी नदी–नाले उस सागर में मिल जाते है और उसका अभिन्न अंग बन जाते है। यह लोक संस्कृति विशाल समुन्द्र बन आम जन–जीवन में रस घोल देती है। राजस्थान की संस्कृति अपनी प्राचीन परम्परा, विविध संस्कृतियों के संगम तथा अनेक कलात्मक अवदनों के कारण आज विश्व जगत में महान संस्कृतियों में अपना विशिश्ट स्थान रखती है।

भावना प्रधान आस्था और विश्वास पर होने के कारण लोक नाट्य मानव जाति की विस्तृत भावाभिव्यंजना को प्रकट करते है। लोक गाथा और कथाओं के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंगों में लोकदेवी–देवताओं को अभिव्यक्त कर समाज और आमजन को शिक्षा प्रदान की जाती है और लोक देवी–देवताओं की गाथा किसी पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लौकिक घटनाओं से जुड़ी होती है, जो कथा प्रसंगों के साथ–साथ रहस्यमय घटनाओं से भी ओतप्रोत होती है। ऐसी रहस्यमयी और चमत्कारिक घटनाएं आमजन में अत्यधिक प्रचलित है। आमजन इन कथाओं से अभिभूत होकर मनोरंजन के साथ–साथ ज्ञानार्जन भी करता है। लोक संस्कृति का स्वरूप मनुष्य जाति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में अभिव्यक्त होता है, जो लोक जीवन को व्यवस्थित और गतिशील बनाने में सहायक है। इन विभिन्न परम्पराओं एवं संस्कारों में अभिव्यक्त लोक संस्कृति लोक जीवन में रस घोलते हुए लोक को आनंदानुभूति प्रदान करती है। "लोक संस्कृति में लोक जीवन का साहित्य किसी भी सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान होता है। अतः सही अर्थो में राजस्थान के लोक देवी–देवता एवं उनकी कथाएं राजस्थानी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। लोक संस्कृति में धर्म के साथ–साथ पुराण तथा आख्यान सभी कुछ समाया रहता है।"[12] लोक का सर्वांगीण रूप लोक का पूर्ण जीवन लोक के हर्श–विशाद, आवेश–आक्रोश, शौर्य, आशा–निराशा लोक संस्कृति में परिलक्षित होती है। लोकदेवी–देवताओं की वीरता, साहस, पराक्रम और चमत्कारों की अनेक कथाएं और किवदंतियां आज भी लोक समाज में प्रचलित है। ''लोकदेवी–देवता सामाजिक पृष्ठभूमि में प्रतिष्ठा प्राप्त करन वाले ऐसे पुरूष और स्त्रियां है, जो कोई बड़े राजा–महाराजा नहीं थे, उनके द्वारा किए गए त्याग और बलिदान से वे समाज में पूजनीय बन गए।''[13] आमजन ने इन महापुरूषों और वीरांगनाओं को ईश्वर तुल्य मान–सम्मान दिया और उनकी स्मृति में मंदिर व स्थानक आदि बनवाए। ऐसे में देखा जाए तो लोक देवी–देवता आज भी जनमानस के हृदय में गहरी पेंठ रखते है।

निष्कर्षतः यह कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है

कि लोक नाट्य लोक संस्कृति के सच्चे अर्थो में प्रहरी है। समाज को साम्प्रदायिक एकता, भाईचारे, सहयोग, जनकल्याण और समाज की आदर्श, नैतिक व उज्जवल चरित्र के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देते है। अगर आज आमजन इनके सन्देशों को अपने जीवन में उतारता है तो समाज से सभी प्रकार की बुराईयां समाप्त होने के साथ ही आदर्श समाज व राष्ट्र के नवनिर्माण की संकल्पना के साथ राम राज्य की परिकल्पना को साकार होने से कोई नही रोक सकता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मारवाड़ का इतिहास भाग प्रथम– विश्वनाथ रेउ पृष्ठ 3*
2. *मारवाड़ री परगनां री विगतः भाग तृतीय, नारायण सिंह भाटी पृष्ठ 2*
3. *मुंहता नैणसी री ख्यात– भाग–3, सम्पादक – बदरीप्रसाद साकरिया पृष्ठ 58*
4. *संस्कृत नाटकों में चित्रकला, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृष्ठ 100*
5. *रामदला की पड़– डॉ. महेन्द्र भानावत, पृष्ठ 2*
6. *राजस्थान लोक संस्कृति और साहित्य– डॉ. डीआर आहूजा, पृष्ठ 15*
7. *आदि पुराण पर्व 6 श्लोक 19*
8. *संस्कृति के चार अध्याय– रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 4*
9. *भौमधणी भील– देवीलाल, पृष्ठ 14*
10. *मत्स्य पुराण– गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ 42*
11. *राजस्थान के लोक तत वाद्य– डॉ. वन्दना कल्ला, पृष्ठ 98*
12. *ऋग्वेद–मंडल 3, सुक्त 59–8*
13. *राजस्थान के लोक नृत्य और लोक नाट्य– कालूराम परिहार पृष्ठ 54.*

बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों में वर्षा आधारित फसलों में आय बढ़ाने वाले सुझाव

ओमप्रकाश
शोधकर्ता, मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों की कृषि फसले जो वर्षा आधारित हैं। इन फसलों में नई- नई तकनीकी के द्वारा आय में वृद्धि की जा सकती हैं। वर्तमान में बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों के आस-पास के गावों में वर्षा से कृषि फसलें पूरी तरह से प्रभावित हैं। यहाँ के किसानों की गरीबी, अशिक्षा, नई तकनीकी का अभाव, कृषि ऋण की अनुपलब्धता, कम निवेश क्षमता, इत्यादि के कारणों से फसलों का उत्पादन कम हो रहा हैं। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई तकनीकियों का उचित समय पर किसानों तक न पहुँच पाना भी इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन की गिरावट का प्रमुख कारण हैं। इसी कारण मैंने शोध हेतु इस विषय का चयन किया जिससें किसानों को उचित जानकारी दी जा सकती हैं। इन सभी कारणों के आधार पर बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों के किसानों की वर्षा पर आधारित फसलों की आय को दुगना करने की आवश्यकता। इसके लिए राज्य सरकार एवं संगठन काम कर रहे हैं। उत्तम बीज, कीटनाशक, जैविक खाद, आदि का समुचित उपयोग करके फसलों की आय में वृद्धि की जा सकती हैं। इनके बारे में किसानों को जागरूक करने की आवश्यकता हैं।

संकेताक्षर : *परिचय, कृषि की समस्यायें, वर्षा की कमी, तकनीकी, सुझाव, उपाय।*

किसान देश की जीवन रेखा हैं और किसी भी देश का विकास उसके कृषि क्षेत्र के विकास के बिना अधूरा हैं। आज भारत आत्म निर्भर हैं लेकिन किसानों को अपने उत्पाद का लाभकारी मूल्य नही मिल पाता हैं अतरू सरकार का मानना हैं की कृषि क्षेत्र में अन्न एवं कृषि उत्पादों के भंडारों के साथ-साथ किसान की जेब भी भरे व उनकी आय भी बढ़े। इसी आशय के साथ दिनांक 28 फरवरी 2016 को बरेली में आयोजित किसानों की एक रैली में माननीय प्रधानमंत्री जी ने कहा था- ''मैं वर्ष 2022 तक, जब भारत अपनी आजादी की 75वीं सालगिरह मनाये, किसानों की आय को दोगुना करना चाहता हूँ । मैंने इसे एक चुनौती के रूप में लिया हें, पर यह केवल एक चुनौती नही हैं। एक अच्छी रणनीति, सुनियोजित कार्यक्रम, पर्याप्त संसाधनो एवं क्रियान्वयन में सुशासन के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता हैं''

वर्तमान में बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों के वर्षा आधारित क्षेत्र विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रसित हैं। इनमें मुख्यतरू प्राकृतिक समस्याओं, ढलान वाली भूमि सतह, मृदा में फसल पोषक तत्वों की कमी, मृदा जैविक कार्बन अंश का कम होना, कमजोर मृदा संरचना, अधिक तापमान इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता हैं।

इनके अतिरिक्त बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों में निम्न समस्याएं पाई जाती हैं

1. सामाजिक समस्याएँ - गरीबी, अशिक्षा, जनसंख्या, जोत विखंडीकरण इत्यादि ।
2. आर्थिक समस्याएं - कम निवेश क्षमता, कृषि ऋण की अनुपलब्धता, समुचित बीमाकरण जैसी सुविधा की कमी, इत्यादि।
3. अन्य समस्याएं - सिंचाई की कमी, अपर्याप्त भंडारण सुविधा, कृषि आगतों की उपलब्धता में कमी, परिवहन सुविधा की कमी।

इन क्षेत्रों की कृषि को और विकट बना देती हैं। उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त कृषि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई तकनीकियों का उचित समय पर किसानों तक न पहुँच पाना भी इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन की गिरावट का प्रमुख कारण हैं। यद्यपि इन समस्याओं के समाधान की दिशा में सरकार एव गैर सरकारी संगठनों द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। यही कारण है कि इन क्षेत्रों के किसानों की कृषि आय को दोगुना करने के लिए अधिक प्रयासों एवं योजनाओं की आवश्यकता हैं।

वर्तमान में बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों के अधिकांश गावों में भी सुखा देखने को मिल रहा हैं। बिलाड़ा तहसील में बाला, रावर, कूपडावास, उदलियावास एवं पीपाड़ तहसील में अनावास, रावनियाना, चिरडाणी, खारिया–अनावास, में सूखा देखने को मिला हैं । इन क्षेत्रों के अंतर्गत लगभग 30 प्रतिशत खाधान्न फसल क्षेत्र एवं लगभग 70 प्रतिशत अखाद्यान्न फसल क्षेत्र आते हैं । इन क्षेत्रों में ज्वार, बाजरा, दलहन, कपास और तारामीरा की कुल बिजाई क्षेत्रफल का क्रमशरू 80, 75, 80, 70, 65 प्रतिशत हिस्सा बोया जाता हैं । यह कृषि की समृद्धि मृदा की गुणवत्ता एवं जल की उपलब्धता तथा इन दोनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर निर्भर करती है। इसके अलावा एकीकृत फार्म प्रबंधन के सभी महत्वपूर्ण घटकों फसल, पशु, चारा, बागवानी, कृषि – वानिकी, रोग एवं कीट, कृषि यांत्रिकीकरण, विपणन तंत्र प्रबंधन इत्यादि, का समावेश करना भी अति आवश्यक हैं। बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों के किसानों की कृषि आय को दोगुना करने के लिए अन्य प्रयासों के साथ – साथ क्षेत्र में विशेष एवं फसल विशेष के लिए सुधार की भी अति आवश्यक हैं।

ऐसे क्षेत्रों के लिए जारी कुछ बाधाए, कारण, सुधार का विवरण सारणी – 1 में दर्शाया गया हैं।

बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों की फसलों में बाधाएं एवं सुधार

क्र. सं.	बाधाएं	कारण	सुधार
1.	खेतो में पोषक तत्वों की कमी	खेतों में गोबर खाद का कम उपयोग	गोबर खाद का अधिक से अधिक उपयोग
2.	मिट्टी का उपजाऊपन कम होना	रासायनिक खाद का अधिक प्रयोग	जैविक खाद का उपयोग कर
3.	मौंसम फसलें उगाना	फसल–चक्र का अभाव	फसल चक्र के बारे में जानकारी देना
4.	मिश्रित फसलें बोना	रोग–प्रतिरोधक क्षमता के कारण	फसल–पारूप के अनुसार
5.	कृषि यंत्रो की कमी	किसानों की आर्थिक दशा कमजोर	ऋण की सुविधा उपलबंध कराना
6.	अतिवृष्टि, पाला, अनावृष्टि	प्राकृतिक प्रकोप	फसल बीमा करवाना
7.	कम उत्पादन होना	बिना मिट्टी की जॉच करवाए फसलें बोना	मृदा स्वास्थ्य परिक्षण की सुविधा देना
8.	कृषि मौसम परामर्श सेवाओं का अभाव	किसानों का कम शिक्षित होना	समय – समय पर कृषि परामर्श कैंप किसानों के गावों में लगाकर जानकारी देना
9.	किसानों की संकीर्ण मानसकिता	खेतों का छोटे–छोटे भागों में विभाजन	खेतो का भाइयों के मध्य बड़ा विभाजन करना
10.	फसलों का उचित मूल्य नही मिलना	बिचौलियों का मध्य में होना	इंटरनेट के माध्यम से फसलों के भाव की जानकारी

बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों में वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों की आय को दो गुना करने के सुझाव

1. प्रति बूंद अधिक फसल के सिद्धांत पर प्रयास संसाधनों के साथ सिंचाई पर विशेष बल ।
2. प्रत्येक खेत कम करने के लिए कम कीमत पर फसल बीमा योजना की शुरुआत ।
3. वर्तमान समय में किसानों को शिक्षा की आवश्यकता हे इसके लिए 4–5 लोगो का एक समूह बनाकर गावों में जाकर किसानों को नई–नई तकनीकी के बारे जानकारी दे सकता है।
4. किसानों को कम पानी में होने वाली फसलों एवं मिट्टी के बारे में जानकारी देनी चाहिए जिससे किसान उचित फसल का चयन कर सकता हे।
5. किसानों को फसलों का उचीत मूल्य दिलवाने का प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे किसानों का मनोबल बढ़ सके।
6. किसानों की समय–समय पर संगोष्ठी करनी चाहिए जिससे किसानों को फसलों के बार नई–नई जानकारी मिलती रही।
7. विकसित की गई कृषि तकनीकों को समय के साथ पुनः परिष्कृत/संशोधित करके पूर्ण पैकेज के रूप में किसानों तक पंहुचाया जाना चाहिए ।
8. प्राकृतिक संसाधनों में मृदा एवं जल के समुचित प्रबंधन को सर्वोपरी प्राथमिकता देते हुए, इस दिशा में और कार्य करने की आवश्यकता है ।
9. अनुसंधान, नीतियाँ एवं कार्यक्रमों का दायरा प्रत्येक किसान के खेत पर केंद्रित करने की आवश्यकता है, क्योंकि इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की विविधता विद्यमान है।
10. प्राकृतिक संसाधनों में देशी खाद को प्राथमिकता देते हुए, अधिक उत्पादन लिया जा सकता है ।
11. तकनीक के सभी घटकों (बीज, रासायनिक खाद, बिजाई यंत्र, पशुधन की नस्लें, खेत तालाब इत्यादि) को एक साथ किसानों तक पहुंचाया जाए।
12. माल की उचित विविधिकरण के साथ कृषि प्रणाली में पशुधन को शामिल करने की जरूरत है।
13. गाँव स्तर पर सामुदायिक बीज एवं चारा बैंक, सामुदायिक उपयोग केंद्र, कृषि बीमा, विपणन तंत्र इत्यादि पर नीतियाँ और क्रियान्वयन के लिए ठोस रणनीति बनाने की आवश्यकता है ।
14. वर्तमान में कृषि, ज्ञान आधारित होती जा रही है। अतरू ऐसी रणनीति एवं योजनायें बनाने की जरूरत है, जिनसे शिक्षित युवा इस तरफ आकर्षित हो सकें।
15. कृषि मौसम सलाह को प्रत्येक गाँव के स्तर तक पहुँचाने की अति आवश्यकता है । इस दिशा में कृषि विस्तार तंत्र को और मजबूत करने की जरूरत है। साथ ही साथ कृषि विस्तार की नई विधाएं विकसित करने की आवश्यकता है, जिससे उपलब्ध तकनीकों एवं सूचनाओं को सरल भाषा एवं तीव्रता के साथ किसानों तक पहुँचाया जा सके।
16. कृषि आगतों (बीज, रासायनिक खाद, जीवाणु खाद, कृषि यंत्र, रोग एवं कीटनाशक दवाइयां इत्यादी) की सुगम एवं सुलभ उपलब्धता की दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है ।
17. इन क्षेत्रों में तकनीकी दक्षता हासिल करने के लिए वैज्ञानिकों के बहुआयामी एवं बहु संस्थान दल तैयार कर अनुसंधान का दायरा बढ़ाने की जरूरत है ।
18. खेत–खेत से जुडी गतिविधियों एवं सहायक कृषि क्षेत्रो जैसे मधुमकखी पालन, मशरूम की खेती, खाद बनाना, लाख की खेती, कृषि वानिकी आदि को बढ़ावा देना ।
19. कृषि एवं कृषि विकास में निवेश के बीच सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ताकि कृषि के लिए सार्वजनिक निवेश, विशेषकर कोर्पोरेट सेक्टर के निवेश में बढ़ोतरी हो ।
20. बाज़ार हस्तक्षेप तथा फसल उत्पादन के बाद की प्रक्रियाओं को प्राथमिकता देना ।

समय पर उपरोक्त सुझावों पर कार्रवाई की जाती है तो इससे कृषि प्रणाली में स्थिरता प्रतिस्पर्धा, विपरीत जलवायु से लड़ने की क्षमता के साथ ही उपलब्ध संसाधनों का सरंक्षण एवं समुचित उपयोग भी किया जा सकता है। इस प्रकार इन बिलाड़ा एवं पीपाड़ तहसीलों के कृषकों में कृषि आय को दोगुना करने की क्षमता भी विकसित की जा सकती है । इसके लिए किसानों को सप्ताह में एक बार पंचायत में बुलाकर उनको अधिक आय प्राप्त करने के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए जिससे और किसानों में जागरूकता होगी। इन तहसीलों के छोटे–छोटे गावों के किसानों को भी इसका लाभ मिलेगा।

वर्तमान समय में किसानों की आय बढ़ाने की नई सरकारी कृषि योजनाये

क्र.सं.	योजना	उदेश्य	सरकारी वेबसाइट
1.	प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना 2018	1. किसानों को आत्मा निर्भर बनाना 2. सशक्त बनाना	https://pmkisankisan.gov.in/
2.	प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना 2022	किसानों को फसल सम्बन्धित नुकसान की भरपाई करना	https://pmfby.gov.in/
3.	प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना 2022	फसलों के उत्पादन में बढ़ोतरी, अर्थव्यवस्था का विकास	http://pmksy.gov.in
4.	राजस्थान कृषि अनुदान 2022	किसानों की आर्थिक मदद और कृषि को उन्नत बनाना	Agriculter.rajasthan.gov.in
5.	राजस्थान फसल सुरक्षा योजना 2022	किसानों की पैदावार को बढ़ावा देना	http://agriculture.rajasthan.gov.in
6.	राजस्थान सूक्ष्म सिंचाई मिशन	सिंचाई पाइप लाईन बिछाने के लिए	-
7.	राजस्थान जैविक खेती मिशन	आमजन के बेहतर स्वास्थ्य एवं किसानों को प्राकृतिक खेती की और बढ़ावा देना	-
8.	ई-नाम योजना : दाम भी ईनाम भी	किसानों की आय बढ़ाने में सहायक	-
9.	राजस्थान बीज उत्पादन एवं वितरण मिशन	स्वावलंबन योजना के आकार को दो गुना करना	-
10.	राजस्थान मिलेट्रस प्रोत्साहन मिशन	निशुल्क बीज वितरण	सेंटर ऑफ एक्सीलेंस फॉर मिलेट्रस की जोधपुर में स्थापना

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *खंडेलवाल आर.बी.लाल : कृषि फसलों का अधिक उत्पादन 1991*
2. *हुसैन माजिद, कृषि भूगोल : रावत पब्लिकेशन, जयपुर*
3. *कुमार एम.वी, लक्ष्मी : कृषि भूगोल*
4. *अग्रवाल एम.एल (1977) : ''भारतीय कृषि का अर्थतन्त्र'' राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमिक, जयपुर*

पत्र पत्रिकाए – राजस्थान सुजस

साक्षात्कार :

1. *श्री चुतराराम भाकराणी, भूतपूर्व कृषि उपनिदेशक – जोधपुर, से वर्षा वाले क्षेत्रों में फसल आय में वृद्धि दो गुना करने एवं समस्याओं एवं सुझाव पर चर्चा, दिनांक 1 जून 2022,*
2. *डॉ. मंगलाराम सीरवी, (कृषि विशेषज्ञ) बिलाड़ा से वर्षा वाले क्षेत्रों में फसल आय में वृद्धि से सम्बन्धित सुझाव पर चर्चा, दिनांक दिनांक 5 जून 2022,*
2. *श्री राजूराम राठौड़, बिलाड़ा, (जैविक खेती सलाहाकार), किसान से वार्ता वर्षा वाले क्षेत्रों में फसल आय में वृद्धि किस प्रकार से की जाय पर चर्चा, दिनांक 10 जून 2022*

निर्धनता एक विश्वव्यापी समस्या : एक अध्ययन

डॉ. बी. नूरजहां
सबौर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

निर्धनता एक विश्वव्यापी समस्या है। यह एक ऐसी समस्या है जो मानव समाज के प्रत्येक युग एवं समाज में सर्वत्र व्यास रही है। दुनिया का कोई भी ऐसा देश या समाज नहीं है जहां निर्धन लोग तथा निर्धनता नहीं पाई जाती है। निर्धनता वह दशा या स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होता है। जिसका प्रभाव व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर पड़ता है। वर्तमान आलेख में लेखक ने निर्धनता क्या है, निर्धनता को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं और समाज पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है तथा सरकार द्वारा निर्धनता उन्मूलन के लिए कौन-कौन से प्रयास किए जा रहे हैं, का विस्तृत उल्लेख किया है।

संकेताक्षर :

निर्धनता एक स्थिति है जो किसी के पास किया है उसके पास क्या होना चाहिए को व्यक्त करता है। साथ ही यह एक आंतरिक रचना है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का निर्धनता के संबंध में अनुभव और अनुभूति विशिष्ट और अनन्य होती है, लेकिन 'शक्तिहिंता' और 'संसाधनहिंता' की अनुभूति सभी व्यक्तियों में होती है। ऐसी धारणा और मान्यता है। समानतया निर्धनता उस समस्या को कहते हैं जिसमें व्यक्ति अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा और मकान को पूरा करने में असमर्थ होता है। आर्थिक दृष्टिकोण से उस व्यक्ति को गरीबी रेखा के नीचे माना जाता है जिसमें आय का स्तर कम होने पर व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है।

भारत में निर्धनता एक मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक समस्या है। भारत एक जनाधिक्य वाला देश है आर्थिक विकास की दृष्टि से भारत की गिनती विकासशील देशों में होती है। आर्थिक नियोजन के क्रियान्वयन के बावजूद भारत को गरीबी की समस्या से निजात नहीं मिली है। देश की बहुसंख्यक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने के लिए मजबूर है। भारतीय गांव में निर्धनता एक सामाजिक और आर्थिक समस्या हैं। इसकी उत्पत्ति और स्वरूप बड़ा जटिल है। ग्रामीण पुनरूत्थान करने वालों के सामने यह सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक चुनौती है। गरीब के कारण लोगों का अच्छा भोजन, वस्त्र और निवास नहीं मिल पाता है। भारत सरकार के एक अतिरिक्त सचिव ने स्वयं छुट्टी लेकर मजदूरों में भूख का सर्वेक्षण करने पर पाया कि उत्तर प्रदेश में कुछ मजदूर परिवार प्रतिवर्ष 60 से 90 दिन भूखे सोते हैं, बिहार के कुछ क्षेत्रों में 90 से 150 दिन भूखे रहते हैं, कर्नाटक में 60 से 70 दिन भूखे रहने के तथ्य पाए गए। औद्योगिक क्रांति से पूर्व भारतीय गांव छैदृष्टि से आत्मनिर्भर और संपन्न नही ंतो कम से कम जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को जुटाने में असमर्थ था ही।

गरीबी एक सापेक्ष शब्द हैं। इसका अर्थ यह भी है कि एक देश जिसे हम गरीब कहेंगे, उसे दूसरा देश धनवान कह सकते है। इसका कारण यह है कि गरीबी का निर्धारण उस देश की प्रथाओं और जीवन-स्तर के आधार पर होता है। भारत में गरीबी रेखा वह नहीं है जो अमेरिका और इंग्लैंड में हैं। प्रत्येक देश में साधनों के अनुसार जीवन स्तर का एक आदर्श स्थापित कर लिया जाता है और सभी व्यक्ति उसी आदर्श को पाने का प्रयत्न करते हैं इसलिए गरीबी का

संबंध जीवन स्तर से हैं।

भारत एक जनाधिक्य वाला देश है। यहां बहुसंख्यक जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने के लिए मजबूर हैं। गरीबी रेखा का अधार कैलोरी ऊर्जा को माना जाता है। भारत में छठी पंचवर्शीय योजना में कैलोरी के आधार पर गरीबी रेखा को परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार गरीबी रेखा का तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्र में 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी ऊर्जा के प्रति व्यक्ति उपयोग से है। NSSO के 68 वें चक्र तथा तेंदुलकर समिति की सिफारिशों के अनुसार वर्ष 2011–2012 में अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 816 और शहरी क्षेत्रों के लिए 1000 मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय को गरीबी रेखा माना गया है। यूरोपीय देशों में गरीबी की अवधारणा को परिभाषित करने के लिए सापेक्ष गरीबी के आधार पर आकलन किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति की आय राष्ट्रीय औसत आय के 60% से कम है तो उस व्यक्ति को गरीबी रेखा के नीचे हैं। और आर्थिक कल्याण को बता सकते हैं क्योंकि राष्ट्रीय आय के अंक को आर्थिक कल्याण का अनुमानित सूचकांक भी माना जाता है। इससे उस देश की आय का वितरण लोगों के रहन–सहन का स्तर, आदतों तथा प्रति व्यक्ति आय आदि को जानना संभव हैं। राष्ट्रीय आय के आधार पर ही कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति (Grand national product) तथा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति (Net national product) ज्ञात की जाती है। आय की भांति ही लोगों द्वारा उपभोग पर किए जाने वाले खर्च (consumption expenditure) के आधार पर गरीबी को मापा जा सकता है। समाज में गरीबी मापने के लिए एक पैमाना प्रति व्यक्ति व्यक्तिगत आय (per capita personal income) का भी है।

निर्धनता अपने आपमें एक अभिशाप है और इसके लिए अनेक कारण उत्तरदाई हैं। जिसमें प्रमुख ये है–

1. आर्थिक कारण
2. व्यक्तिक कारण
3. सामाजिक कारण
4. भौगोलिक कारण
5. जनसंख्या

वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में उपयोग की वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन बड़े–बड़े कारखानों में अत्याधुनिक मशीनों द्वारा कम समय में तथा कम श्रम में हो जाता है, परंतु कुछ दशक पूर्व में यही उत्पादन परंपरागत मशीनों द्वारा संपनन होता था जिसमें लाखों श्रमिकों को रोजगार मिला हुआ था। परंतु वर्तमान समय में मशीनीकरण के फलस्वरूप निर्धनता की स्थिति उत्पन्न हो गई है। निर्धनता सामाजिक विसंगतियों जैसे– धर्म, अंधविश्वास, जाति व्यवस्था, पारिवारिक कलह, दोषयुक्त शिक्षा व्यवस्था, या तकनीकी शिक्षा की कमी आदि के कारण भी उत्पन्न होती है। भारतीय परंपरागत समाज जजमानी व्यवस्था पर आधारित था तथा उसी व्यवस्था के अनुसार समाज में श्रम विभाजन भी पाया जाता था। इस श्रम विभाजन का मूल आधार आर्थिक पक्ष से संबंधित था। यही व्यवस्था एक लंबे समय तक बनी रही, जिसके कारण समाज का बड़ा वर्ग निर्धन बना रहा हैं इसके अतिरिक्त भारतीय शिक्षा पद्धति विकसित देशों के मुकाबले में अव्यवहारिक लगती है। वर्तमान समय में शिक्षा का रोजगार होना अनिवार्य है। व्यक्ति शिक्षा तो प्राप्त कर लेता है लेकिन रोजगार नहीं मिलने के कारण वह बेकारी की स्थिति में परिवार पर ही बोझ बना रहता है, जिससे निर्धनता में वृद्धि होती है। इसलिए आज के परिपेक्ष में शिक्षा का तकनीकी तथा औद्योगिक होना अति आवश्यक है। भारतीय भौगोलिक दशाएं भी निर्धनता के लिए उत्तरदाई है। अकाल, बाढ़, भूकंप आदि प्राकृतिक आपदाएं समय–समय पर आती रहती हैं जोकि व्यक्ति को आर्थिक रूप से कमजोर बना देती है। भारत में प्रतिवर्ष बढ़ती जनसंख्या की बाढ़ ने भी गरीबी को बढ़ावा दिया है। जिस गति से यहां जनसंख्या बढ़ती है उस गति से जीवन यापन के लिए साधनों और सुविधाओं में वृद्धि नहीं होता। परिणाम स्वरूप लोगों को बेकारी और भूखमरी का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक अस्थिरता और उथल–पुथल भी गरीबी को जन्म देती है। ऐसी स्थिति में चारों और असंतोष, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी, जमाखोरी पनपती है। फलस्वरूप व्यापार में उतार–चढ़ाव आते हैं। वर्तमान में किसी भी व्यवसाय के फलने–फूलने में राज्य की सहायता और आर्थिक नीतियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। साथ ही अज्ञानता और अशिक्षा भी निर्धनता मुख्य कारण है। शिक्षा की कमी के कारण लोग अज्ञानी होते हैं वे तार्किक दृष्टिकोण के स्थान पर भावात्मक दृष्टि से ही किसी वस्तु का मूल्यांकन करते है। ग्रामीणों की अशिक्षा और अज्ञानता का लाभ जमींदार और साहूकार उठाते हैं और उनका आर्थिक शोषण करते है।

निर्धनता मुख्यतः दो प्रकार के होते है। पूर्ण निर्धनता जिसमें व्यक्ति के पास मकान, भोजन, चिकित्सा, सुविधा एवं जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं का अभाव होता है। पूर्ण गरीबी को सामान्यतः जीवन की आवश्यकताओं को जुटाने के लिए पर्याप्त धन के अभाव के रूप में परिभाषित किया जाता हैं। सापेक्ष निर्धनता–गरीबी को सापेक्ष तथ्य मानने वालों ने पूर्ण गरीबी की अवधारणा की इस आधार पर आलोचना की है कि पूर्ण गरीबी की अवधारणा स्थिर है, यह आवश्यकताओं और सुविधाओं के बदलते मानदंड को सम्मिलित नहीं करता है। जो चीज आज सुविधा की मानी जाती है वही आने वाले समय में आवश्यकता बन जाती है।

निर्धनता को किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति यह नही चाहता है कि वह निर्धन हो। सभी व्यक्ति चाहतें हैं कि वह धन अर्जन कर जीवन स्तर को उन्नत कर सकें। निर्धनता के कारण समाज बहुत सारे दुष्परिणाम से स्वंय को नही बचा सकता। गरीबी अनेक शारीरिक कमियों को जन्म देती है। इसी कारण ही लोगों को व्यवसायिक थकान, चिकित्सा के प्रति उपेक्षा, गंदे मकान, मनोरंजन का अभाव, बुरा स्वास्थ्य, छूत की बीमारियां एवं कुपोषण आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसका सीधा प्रभाव व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। निर्धनता का प्रभाव व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा, पद एवं भूमिका पर पड़ता हैं। व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा को ऊंचा करने के लिए अपराध का सहारा लेता है। रोजगार न मिलने के कारण अनेक लोग तो अपराध करने लगते हैं, परंतु जो ऐसा नहीं कर पाते। जैसे– महिलाएं, अपाहिज तथा वृद्ध तो व भिक्षावृत्ति के कार्य में लग जाते हैं, जो कि निर्धनता का परिणाम है। गरीबी के कारण उच्च चरित्र बनाए रखना संभव नहीं हो पाता ऐसी स्थिति में स्त्रियां अपना तन बेच कर अपने परिवार का भरण–पोषण करने लगती हैं। गरीबी के कारण व्यक्ति मानसिक चिंता एवं निराशा से ग्रस्त हो जाते हैं तथा तनाव कम करने के लिए भाराब पीने लगते हैं, जुआ खेलने लगते है या वेश्यागमन करने लगते हैं।

निर्धनता को निवारण के लिए भारत सरकार राज्य सरकारों की सहायता से अनेक कार्यक्रमों का संचालन कर रही है जिनसे की निर्धनता की समस्या से छुटकारा मिल सके। गांव की दशा को सुधारने के लिए सामुदायिक विकास योजनाएं प्रारंभ की गई। जिसमें कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, सहकारी समितियां, शिक्षा, यातायात अनेक विशयों के विकास पर जोर दिया गया। निर्धनता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम बनाए गए जिसमें प्रमुख हैं पंचवर्शीय योजना, काम के बदले अनाज योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम, अंत्योदय योजना, परिवार कल्याण कार्यक्रम, प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना, स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना, सामुदायिक विकास योजना, भाक्ति योजना, पोशाहार कार्यक्रम, अंबेडकर आवास योजना, 20 सूत्री कार्यक्रम आदि। 65 वर्शो की योजनाओं के बाद भी भारत अभी तक विश्व के सबसे अधिक निर्धन देशों में से एक है। कई देशों ने जो कि भारत से कहीं छोटे हैं, प्रगति की है। संसार के निर्धनों में हर तीसरा व्यक्ति भातरीय हैं और इस संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। निर्धनता के निवारण के लिए समय–समय पर सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम बनाए जाते हैं। परंतु भारत एक विशाल देश है जहां की जनसंख्या के हिसाब से जो प्रयास किए गए हैं वे ऊंट के मुंह में जीरा जैसा ही सिद्ध हुए हैं। सिर्फ सरकारी प्रयत्नों एवं कार्यक्रमों द्वारा निर्धनता का निवारण नहीं किया जा सकता। इसके लिए जनता के द्वारा भी प्रयत्न किया जाना आवश्यक है।

निर्धनता उन्मूलन के लिए गांव में कुटीर व्यवसायों एवं बेकारी की समस्या के लिए कृषि से संबंधित की व्यवसायों की व्यवस्था की जाए। कृषि के परंपरागत तरीकों के स्थान पर नवीन तरीकों, उन्नत खाद, बीज एवं नवीन सिंचाई के साधनों का उपयोग किया जाए। कृषि में हरित क्रांति को बढ़ावा देकर कृषि उत्पादन बढ़ाया जाए। आर्थिक विकास में वृद्धि के लिए अधिक से अधिक औद्योगीकरण किया जाए, गांव में छोटे उद्योगों एवं व्यवसायों को बढ़ावा दिया जाए तथा साथ ही बड़े कारखाने भी स्थापित किए जाएं। निर्धनता उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा जो भी प्रयत्न किए गए उसको कारगर ढंग से संचालित किए जाएं। निर्धनता उन्मूलन के लिए औद्योगिक और सामान्य शिक्षा का प्रसार किया जाए, जिससे एक तरफ रोजगार के अवसर बढ़ेगें तो दूसरी ओर अज्ञानता, रूढ़ियों एवं सामाजिक कुरीतियों से भी छुटकारा मिल सकेगा। निर्धनता को दूर करने के लिए जनसंख्या वृद्धि को कम

किया जाए ताकि जीडीपी में वृद्धि का प्रतिबिंब प्रति व्यक्ति जीडीपी के रूप में दिखाई दे। जब जीडीपी में वृद्धि की गति तीव्र होती है तब रोजगार के नए अवसर बनते हैं। गरीबी को दूर करने के लिए कृषि का विकास करने का विशेष प्रयत्न किया जाना चाहिए। उन्नत बीज, खाद, सिंचाई के साधनों को उपलब्ध कराना चाहिए। छोटे किसानों को उचित प्रकार की वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए। निर्धनता की समस्या एक अभिशाप है, परंतु सरकार अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से गरीब लोगों को रोजगार उपलब्ध करा रही है। जिससे गरीबी की समस्या को दूर किया जा सके और एक दिन हमारा देश एक संपन्न और परिपूर्ण होकर विश्व धरातल पर अपनी अमिट छाप रख सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *एम. एल. गुप्ता एवं डी. डी. भार्मा, समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, सन् 2001*
2. *राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, सन् 2016*
3. *रविंद्रनाथ मुखर्जी एवं डॉ. भरत अग्रवाल, समाजशास्त्र, एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा उत्तर प्रदेश, सन् 2021*
4. *प्रोफेसर एम. एल. गुप्ता एंव डी. डी. भार्मा, भारतीय ग्रामीण सामजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, सन् 2022*
5. *डॉ. जी. के. अग्रवाल, समाजशास्त्र. साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2019*
6. *श्रविंद्र नाथ मुखर्जी एवं भरत अग्रवाल, भारतीय सामाजिक समस्याए, एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा, उत्तर प्रदेश, 2022*

ठाकुर केसरीसिंह बारहठ के पत्रों में जीवन की अनमोल सिखावनियां

डॉ. प्रेम बाफना
सह–आचार्य, जीएचएस राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुजानगढ़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र में देश की स्वाधीनता एवं स्वधर्म की रक्षा हेतु राजपूताने में सशस्त्र क्रांति का बिगुल बजाने वाले महानायक ठाकुर केसरीसिंह बारहठ द्वारा अपने परिजनों एवं प्रियजनों को लिखे गए पत्रों में निहित अनमोल सीख को उजागर किया गया है। राजपूताने का यह बारहठ परिवार ऐसा है, जिसके एक या दो नहीं वरन चार–चार वीरों ने स्वातंत्र्य राजसूय में अनाम आहूतियां दी हैं, इस नाते इस बारहठ परिवार के त्याग, बलिदान एवं संघर्ष की स्पष्ट छाप इतिहास के पन्नों पर अंकित है। इस परिवार के मुखिया ठा. केसरीसिंह बारहठ ने जेल में रहते हुए अपने परिजनों को जो पत्र लिखे हैं, उनकी विषयवस्तु, भाव एवं संदेश अत्यंत प्रेरणास्पद हैं। इन पत्रों में अभिव्यक्त विचारों की प्रासंगिकता एवं महत्ता अक्षुण्ण है। ये पत्र पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की सफलता के सूत्र हैं, इसके साथ ही इन पत्रों में राष्ट्रधर्म की शिक्षा, निष्काम कर्म एवं सेवा की सुभग सीख है। ये पत्र जहां एक ओर परिजनों के प्रति आत्मिक प्रेम को उजागर करते हैं, वहीं दूसरी ओर ठा. केसरीसिंहजी की सकारात्मक सोच, उत्कृष्ट संस्कार, विस्तृत दृष्टिकोण, कर्त्तव्यनिष्ठता एवं उज्ज्वल आचार–विचार को दर्शाते हैं, जो भावी पीढ़ी के लिए सदैव प्रेरक एवं मार्गदर्शक रहेंगे।

संकेताक्षर *: ठा. केसरीसिंह बारहठ, जामाता, शाहपुरा रियासत, मृगमरीचिका, सौभाग्यमणि, सहस्रमुखी, परिग्रह–संग्रह, विधि–विडम्बित अवस्था, पदार्थाभिमुखता, आत्माभिमुखता।*

पत्र–लेखन भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। 'पत्र' साहित्य की एक ऐसी विद्या है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने भावों और विचारों को दूसरों तक सम्प्रेषित करता है। प्राचीनकाल में तो पत्रों का अत्यधिक महत्त्व था, जब व्यक्ति दूर रहने वाले संबधियों, मित्रों या अन्य लोगों तक कोई भी समाचार केवल पत्र के माध्यम से ही पहुंचा पाता था। आजकल हमारे पास बातचीत करने के कई इलेक्ट्रॉनिक साधन उपलब्ध हैं जैसे मोबाइल, टेलीफोन, ई.मेल, फैक्स इत्यादि। तकनीक और विज्ञान के युग में सूचना और संचार के बढ़ते प्रयोग के कारण पत्र–लेखन का रूप परिवर्तित हो गया है। अधिकांश बातचीत तो टेलीफोन के माध्यम से ही कर ली जाती है। बावजूद इसके यह भी सत्य है कि पत्र एक लिखित दस्तावेज होता है, जिसमें लिखी गई बात का प्रभाव पढ़ने वाले के मानस पर अधिक स्पष्ट रूप से अंकित होता है। पत्र के दायरे में व्यावसायिक, राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और व्यक्तिगत सभी तरह के पत्र समाहित है। पत्र मित्रों एवं नजदीकी संबंधियों से सम्पर्क साधने के साथ–साथ आत्मीयता अभिव्यक्त करने में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कुछ महापुरूषों के ऐसे विशिष्ट पत्र हैं, जो भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बन गए हैं। ऐसे पत्रों में महात्मा गाँधी के 'बा' के नाम लिखे पत्र, पं. जवाहरलाल नेहरू के अपनी पुत्री प्रियदर्शिनी के नाम लिखे पत्र, स्वामी विवेकानन्द द्वारा अमेरिका से अपने शिष्यों को लिखे गए पत्र, भगतसिंह के द्वारा पिता और साथियों को लिखे गए पत्रों को उल्लेखनीय पत्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसी कड़ी में क्रांतिकारी ठा. केसरीसिंह बारहठ के पत्र है, जिनमें से अधिकांश पत्र उन्होंने जेल जीवन के दौरान अपनी पुत्रियों और जामाताओं को लिखे। इन पत्रों में अभिव्यक्त विचारों की महत्ता और प्रासंगिकता अक्षुण्ण है। ये पत्र जहां एक ओर पिता व पुत्री के आत्मिक प्रेम को उजागर करते हैं, वहीं दूसरी ओर ठा. केसरीसिंहजी की सकारात्मक सोच, उत्कृष्ट संस्कार, विस्तृत दृष्टिकोण, कर्त्तव्यनिष्ठता एवं उज्ज्वल आचार–विचार को दर्शाते हैं।

ठा. केसरीसिंह बारहठ का जन्म संवत् 1929, मार्गशीर्ष कृष्णा 6, तद्नुसार 21 नवम्बर, 1872 ई. को राजपूताना में मेवाड़ राज्यान्तर्गत शाहपुरा रियासत की पैतृक जागीर के गांव देवपुरा में हुआ।[1] देश की स्वाधीनता, स्वधर्म और संस्कृति की अभिरक्षा हेतु राजपूताना के जिस बारहठ परिवार ने अपने प्राणों की आहुति देकर अप्रतिम त्याग और बलिदान का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया, उसके महानायक रहे हैं–ठा. केसरीसिंह बारहठ। देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले वे एक महान यौद्धा थे। स्वाधीनता के लिए पूर्णरूपेण समर्पित रहने के साथ ही उन्होंने अपने परिवार, समाज एवं स्नेहीजनों के प्रति अपने कर्त्तव्य को भी पूर्ण ईमानदारी के साथ इस रूप में निर्वाहित किया, जो कि आने वाली पीढ़ियों के लिए मिसाल बन गए। उनके द्वारा अपने परिजनों को लिखे गए पत्र अपने आपमें व्यावहारिक जीवन के सरल सूत्र हैं, जिन्हें अपनाकर कोई भी अपने पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को साफल्यमंडित कर सकता है। ठा. केसरीसिंह के पत्र तब और अधिक विशिष्ट, महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय हो जाते हैं, जब आज विवाह संस्कार और विवाहेत्तर संबंधों का स्वरूप छिन्न–भिन्न होता जा रहा है। भारतीय सामाजिक परम्परा में तो विवाह और वैवाहिक संबंधों का स्थान महत्त्वपूर्ण हैं तथा हिंदू धर्मग्रंथों में यह एक पवित्र संस्कार माना गया है। भारत में प्राचीनकाल से ही प्रत्येक माता–पिता द्वारा अपनी पुत्री को विवाह पश्चात् इस भाव से विदा किया जाता है कि उसका भावी जीवन सुखमय हो, उनकी पुत्री सदैव सुयश प्राप्त करे। प्राचीन धर्मशास्त्रों में इसी भाव की शिक्षा दी गई है। भारतीय वांग्मय में गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस शिक्षा की दृष्टि से अनुपम कृति है, जिसमें सीताजी का चरित्र नारी समाज के सम्मुख एक आदर्श उदाहरण के रूप में चित्रित हुआ है। जनकपुर से विवाहोपरान्त सीता की विदाई के समय माता द्वारा पुत्री सीता को आशीर्वाद देकर कर्त्तव्यपालन की सुंदर सीख देती ये पंक्तियां द्रष्टव्य है–

पुनि–पुनि सीय गोद करि लेहीं।
देइ असीस सिखावन देहीं।

होएहु संतति पियहि पियारी।
चिरु अहिबात असीस हमारी।।

सास–ससुर गुरु सेवा करेहू।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।

अति सनेह बस सखीं सयानी।
नारि धरम सिखवहिं मृदु बानीं।।[2]

माता द्वारा सास–ससुर और गुरु की सेवा करने का उपदेश दिया गया है। पति के सुख–दुख की सदैव साझीदार रही सीताजी ने अपनी माता की शिक्षा को पूर्णरूप से जीवन में उतारकर तपोमय जीवन व्यतीत किया। हिन्दू धर्मशास्त्रों में विवाह को पति–पत्नी के बीच जन्म जन्मान्तरों का संबंध माना है। अग्नि के सात फेरे लेते हुए ध्रुव तारे को साक्षी मानकर दो तन–मन पवित्र बंधन में बंधते हैं। हमारे यहां दाम्पत्य जीवन को एक श्रेष्ठ नैतिक जीवन मानते हुए उत्कृष्ट आध्यात्मिक साधना के रूप में देखा गया है। देखा जाए तो ''विवाह भी तो एक दीक्षा है, जैसे दीक्षा संस्कार, वैसे विवाह संस्कार। अंतर इतना ही है कि एक सामाजिक दीक्षा है, दूसरी धार्मिक और आध्यात्मिक दीक्षा है। दीक्षा कैसी भी हो, वह पूरे प्रशिक्षण के बाद ही दी जानी चाहिए।''[3] ठा. केसरीसिंह जी के पत्र भावी पीढ़ियों के लिए प्रशिक्षण स्वरूप ही हैं।

ठा. केसरीसिंह बारहठ द्वारा अपने परिजनों एवं परिचित जनों को लिखे पत्रों में व्यक्त विचारों का सार देखें तो यह कहना गलत नहीं होगा कि वे एक ऐसे नवीन समाज का निर्माण करने के पक्षधर थे, जो कुरीतियों एवं रूढ़ियों से पूर्णरूपेण मुक्त हो। वे महान समाज सुधारक थे। उन्होंने अपनी प्रचंड इच्छा शक्ति को समाज सुधार के कार्य में लगा दिया था। उनका मानना था कि सामाजिक सुधारों के माध्यम से ही राजनीतिक चेतना लाई जा सकती है। उनकी सोच व्यावहारिक थी। यही कारण था कि उन्होंने जो कुछ कहा, उसे आचरण में उतारते हुए तदनुरूप वातावरण बनाने का जीवनपर्यन्त अथक प्रयास किया। वस्तुतः आकांक्षा, स्पर्धा, प्रतिक्रिया, संघर्ष, क्रूरता और करुणा–इन सबके बीज मानवीय चेतना में छिपे हुए हैं। संग्रह की चेतना भी मनुष्य में है और उसके विसर्जन की चेतना भी मनुष्य में है। मनुष्य की चेतना को बदले बिना केवल आचार संहिता और दंड संहिता के आधार पर नए समाज के निर्माण का स्वप्न मृगमरीचिका से अधिक कुछ नहीं है।''[4] वर्तमान में सामाजिक जीवन में सामंजस्य, सहयोग, समझ एवं सम्मान की कमी दिखाई दे रही है, परिणामस्वरूप वैवाहिक रिश्तों में आज तनाव और अलगाव दृष्टिगोचर होता है। युवाओं के इस भटकाव और परिवारों के बिखराव की स्थिति में

ठा. केसरीसिंह जी के पत्र अतीव प्रासंगिक एवं प्रभावकारी हैं, जिनमें उनके हद्‌योद्‌गार हैं, अन्तर्मन के भावों में भावी जीवन का मार्गदर्शन है, निःस्वार्थ सेवा और कर्म की प्रेरणा है। ये विचार श्री केसरीसिंह के उच्च संस्कारों की पहचान कराते है। उन्होंने अपने आचरण से ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसे पढ़कर बच्चों में स्वाभाविक रूप से सेवा भाव का संस्कार एवं जीवन के प्रति समझ विकसित हो जाए। वस्तुतः ''संवेदनशीलता, संविभाग, मृदुता और अहंकारमुक्ति पर विचार किए बिना संबंधों की मधुरता पर विचार नहीं कर सकेंगे। अहंकार बहुत बड़ी भूमिका निभाता है संबंध-विच्छेद और विभाजन में। यह आदमी को पूरी तरह से उद्विग्न बना देता है। अगर हम चाहते हैं कि हमारे संबंधों में कभी कटुता न आए, मधुर रहें तो विनम्रता का विकास करना बहुत जरूरी है।''[5]

जो पत्र ठा. केसरीसिंहजी द्वारा अपने पुत्र-पुत्रियों और जामाताओं के नाम लिखे गये हैं, उनमें से इस आलेख में कतिपय पत्रों के प्रेरक कथनों को उद्‌घृत किया गया है। समय साक्षी है, उन विचारों की उपादेयता आज भी उतनी ही प्रासंगिक प्रतीत होती है, जितनी कि उस समय थी, जब ये लिखे गए थे। लगभग नौ दशक बीत जाने के पश्चात् भी भारतीय समाज में आज भी कई सामाजिक बुराइयां देखी जा सकती है। निरन्तर बढ़ते शिक्षा के प्रतिशत के बावजूद भी महिलाओं को लेकर समाज की सोच में अपेक्षित बदलाव नहीं आ पाया है। स्वयं को शिक्षित कहलाने वाले वर्ग की यह मानसिकता चौंकाने वाली है कि पुत्र के पद के हिसाब से दहेज की मात्रा निर्धारित करते हैं। ऐसे उदाहरण आज भी सामने आते रहते हैं जहां कम दहेज लाने पर बेटियों को अनेक प्रकार से शारीरिक और मानसिक प्रताड़नाओं का शिकार होना पड़ता है। कभी-कभी ये यातनाएं इतनी बढ़ जाती है कि बेटियां आत्महत्या जैसा घातक कदम तक उठा लेती हैं। ऐसे में केसरीसिंह जी के पत्र उन लोगों के लिए सीख है जो महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार करते हैं तथा महिलाओं के साथ घरेलू हिंसा जैसा जधन्य अपराध करते है। आंकड़ों पर दृष्टि डालें तो भारत में घरेलू हिंसा को रोकने के लिए वर्ष 2005 में कानून बना परन्तु महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा के मामलों में अपराध आज भी कम नहीं हुए हैं। केंद्र सरकार की एजेंसी नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) ने सितम्बर 2021 में आंकड़े जारी किए, जिसके मुताबिक 2020 में देश भर में महिलाओं के खिलाफ अपराध के 3,71,503 मामले दर्ज किए गए। राजस्थान के आंकड़े देखे तो वर्ष 2020 में क्राइम अगेन्स्ट वुमेन के 34,535 केस दर्ज हुए। ये तो वो मामले हैं, जो दर्ज करवाए गए जबकि घरेलू हिंसा की शिकार ऐसी कितनी महिलाएं हैं, जो अशिक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा पर कलंक का भय, जागृति का अभाव जैसे कई कारणों से पुलिस थाने तक पहुंच ही नहीं पाती हैं तथा चुपचाप अपने भाग्य को कोसती हुई नारकीय जीवन व्यतीत करती रहती हैं।

ठा. केसरीसिंहजी के पत्र महिलाओं के प्रति आदर एवं सम्मान का भाव रखने की सीख तो देते ही हैं साथ ही परिवार, समाज और देश के प्रति कर्त्तव्यपालन के लिए प्रेरित भी करते हैं। तत्कालीन समय में उनके ऐसे प्रगतिशील विचार उनकी दूरदर्शिता के परिचायक हैं। ये पत्र वर-वधू के भावी-जीवन का मार्गदर्शन करते हैं। महिला शिक्षा के प्रबल पक्षधर ठा. केसरीसिंह जी पुत्रों की भाँति पुत्रियों में भी देशभक्ति की भावना जागृत करना चाहते थे। कतिपय पत्रों के अंश उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करना समीचीन लगता है।

सन 1914 के अंत में जब ठा. केसरीसिंहजी को आजन्म कारावास की सजा हो चुकी थी, वे कोटा सेंट्रल जेल में थे। इस समय तक बारहठ परिवार के समस्त परिवार की पैतृक जागीर, हवेली एवं धन-संपति सब कुछ छीना जा चुका था। उनके अनुज जोरावरसिंह एवं सुपुत्र प्रतापसिंह फिरंगी शासन से बचने हेतु फरारी काटने को विवश थे। ऐसे विषम एवं विपरीत समय में भी ठा. केसरीसिंह बारहठ ने अपनी सुपुत्री सौभाग्यमणि को तनिक भी विचलित हुए बिना जो पत्र लिखा, ऐसा एक अटूट एवं सच्चा देशभक्त ही लिख सकता है-

''भारत में जन्म लेने के साथ ही जो कर्त्तव्य मानव जीवन के साथ अविच्छिन्न प्राप्त होते हैं, जो ऋण प्रत्येक देश-संतान, चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, पर रहता है। उसी कर्त्तव्य को पूर्ण करने, उसी ऋण से मुक्त होने में हमारा कल्याण है। मेरे हिस्से को मेरे लिए ही छोड़ दो।''[6] इसी पत्र में पुत्री को अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए ठा. केसरीसिंह लिखते हैं-''तुम अवश्य यह जानकर संतुष्ट होगी कि भारत के एक महत्त्वपूर्ण प्रदेश में जागृति होने का प्रारम्भ अपने परिवार की महान् आहूति से ही हुआ है। इस राजसूय यज्ञ में हम लोगों की बलि मंगलरूप हुई है। नाशवान शरीरों की तुच्छता और इस महाभारत अनुष्ठान की महत्ता मिलाकर देखने से ही यह सब प्रतीत होगा।[7]

जामाता श्री जयकर्ण बारहठ को जोधपुर से दिनांक 17 मई, 1928 को लिखे गए पत्र में ठा. केसरीसिंहजी ने अपनी पुत्री को दहेज स्वरूप जो पत्र दिए, वे अतीव व्यावहारिक एवं सहज बोधगम्य हैं। जामाता जयकर्ण को ''निर्धन की निधि, मेरे प्यारे जामाता!'' जैसे संबोधन से संबोधित करते हुए लिखते हैं कि ''इच्छा होती है कि अब आप गार्हस्थ जीवन में कदम रख रहे हैं, जीवन के नवीन पाठ पर पहली अंगुली रख रहे हैं। ठीक उसी समय अपने अनुभवों को कुछ न्यौछावर करूं। मेरा कर्त्तव्य भी यही है। आप इनको ध्यानपूर्वक मनन करें और हृदयंगम करके व्यावहारिक रूप से स्वीकार करें। चाहता हूं ये भाव आपके निज के हो जाएं। .....प्रिय बातें बहुत सामान्य हैं परन्तु परिणाम बड़ा सुन्दर होगा। पिता अपनी पुत्री को जब किसी के हाथों में सौंपता है तो अवश्य ही वह सेवा के लिए देता है, परन्तु सेवा और दासत्व में भेद है। एक सात्विक है और दूसरा तामासिक। एक दैवी है, दूसरा आसुरी। .... मैं जितना कर सकता था उतना शायद आप न कर सकें क्योकि मैं उनको (पत्नी) आप कहता था तथापि (आप) 'तुम' 'थे' से नीचे न उतरें। यह मैंने इसलिए लिखा कि वर्तमान मूर्ख चारण जाति में स्त्री को जूतों की जगह पर मानने की क्षुद्र भावना है। डंडे से खबर लेते लज्जा तक नहीं आती। उनका 'जी' कहने में जी निकलता है। तमीज, पेशवाई की तो बात ही कहाँ? किन्तु मेरे घर में यह सब था ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः''। यही शास्त्र-आदेश है।..... 'प्रेम' प्रकाशन की विधि प्रारम्भ से ही सामान्य होनी चाहिए कि उसमें उत्तरोत्तर बढ़ने का स्थान रहे। ...अतः प्रारम्भ में प्रेम प्रदर्शन की अति न हो। निर्दोष तो एक परमात्मा है। कौन शरीरधारी है, जिसमें दोष नहीं अतः मित्र के दोष क्षमापूर्वक आलिंगन से ही मिट सकते हैं। आंखों की उदासी ही प्रेमी के लिए असहृदय दंड है, ललाई नहीं। मौन ही भर्त्सना है, कुवाक्य नहीं।[8]

पुत्री सौभाग्यमणि के नाम जोधपुर से दिनांक 17 मई, 1928 को लिखे एक अन्य पत्र में सेवाधर्म का अर्थ एवं मंतव्य समझाते हुए ठा. केसरीसिंहजी लिखते हैं कि ''.....प्यारी बच्ची! नवीन संसार में पाँव रखती हो, इस समय दो शब्द कहना मेरा धर्म है। इन शब्दों को पूर्णतया हृदयंगम कर लेना।.....सेवा में दो दिन की दौड़ धूप दिखाने से काम नहीं चलेगा। यह तो आजीवन व्रत है अतः परम शांति, धैर्य, सहिष्णुता और आनन्द से फल की इच्छा छोड़कर साधना करते रहना और सेवा में थक कर के भी सदा प्रसन्नचित्त रहना। .....घर की सेवा तो सब ही करते हैं परन्तु सच्चा सेवा धर्म यह है कि पड़ोस और आस पास का कोई कुटुम्ब व घर ऐसा न छूटे, जिसमें तेरी सेवा की छाप न लगी हो, फिर वह चाहे किसी जाति या स्वभाव का क्यों न हो।[9]

सन 1930 में वे अपनी सुपुत्री को वाणी एवं विचारों की पवित्रता का संदेश देते हुए एक पत्र में लिखते हैं कि ''तुम्हारे लिए तुम्हारी माता (मातुश्री माणिक कँवर) का दिव्य जीवन ही आदर्श है। .....पुत्री! यदि जीवन को सुखमय और यशस्वी बनाना हो तो ध्यान से निम्नलिखित बातों को बार-बार पढ़ो, खूब समझो और व्यवहार में लाओ। .....सच्चा गार्हस्थः सुख साम्य में हैं, सम्पदा में नहीं। सम्प वहाँ है जहां शील (उत्तम चरित्र और उत्तम स्वभाव) है, संतोष है, क्षमा है, उदारता है, एकता है, सहिष्णुता है और सेवाधर्म प्रधान है। साम्य वहां टूटता है, जहाँ आचरण में दोष हो, स्वार्थ (सिर्फ अपने ही सुख की चिन्ता) हो, धन की प्रबल कामना हो, कृपणता हो, फिजूल खर्ची हो, दूसरों पर विश्वास न हो, अपने रूप और गुण पर मिथ्या अभिमान हो, कृतघ्नता हो, दुख ही दुख की भावना हो, आत्मप्रशंसा हो, पीठ पीछे निन्दा (चुगलखोरी) हो, क्रोध हो, दोष ही देखने की आदत हो, कानाफूसी हो, आलस्य हो, ईर्ष्या हो, पक्षपात हो, मिथ्या हो, भाषा में कटुता हो, छिपकर बात सुनने की आदत हो, दूसरों की चीज को अपने काम में ले लेना परन्तु अपनी चीज को बचाए रखना हो, तुनक मिजाजी हो, अपने दोष और अपराध को स्वीकार न करना हो, हठ हो, अहसास करके बताना हो, प्रेम का अभाव हो, जरा जरासी बात को बढ़ाकर कहने की आदत हो। .....सदा सावधान रहकर उपर्युक्त दोषों से बचो। वही जीवन सुखी है, जिसमें-1. मैत्री, 2. करुणा, 3. मुदिता और 4. उपेक्षा, इन चार बातों का अभ्यास हो। बिना पवित्रता के निर्भयता नहीं, बिना निर्भयता के शांति नहीं, बिना शांति के सुख नहीं। ईश्वर पर विश्वास रखना सीखो, जो उस पर विश्वास रखता है वह निराशा का दुख नहीं उठाता।[10]

ठा. केसरीसिंहजी ने सन 1929 में अपनी सुपुत्री चंद्रमणि के नाम लिखे पत्र में जीवन के सत्य का अभिज्ञान करवाते हुए आत्मिक उन्नति का संदेश दिया है। वे लिखते हैं कि ''प्यारी बच्ची! .....माता पिता के पवित्र संस्कारों से तुम्हारे हृदय में जन्मभूमि भारत माता के लिए जो प्रेम की पवित्रता की चिनगारी जगी

है, उसे बुझने न दो।...''क्षणभंगुर रूप, यौवन, देह, सम्पति और सुख विनोद, जो प्राणी मात्र के लिए सामान्य बात है उसे दुर्लभ समझने के भ्रम में न पड़कर आत्मा को ऊँची उठाओ। वह मार्ग निष्काम प्रेम का है।''...''मेरे लिए पुत्र-पुत्री में भेद नहीं। आत्मा में जाति भेद कहाँ ? प्रताप की सहोदरा चाहे अधिक न करें परन्तु स्वदेश प्रेम को हृदय मे पोषण तो दे ही सकती है। जो सहस्रमुखी संसार का मुख ताकता है वह कुछ नहीं कर सकता। अपनी आत्मा की अन्तर्ध्वनि सुनने की चेष्टा करो और फिर वह कहे उसी की मानो।[11]

इन पत्रों के माध्यम से एक पिता द्वारा अपनी पुत्री को जो आत्मिक उन्नति, निष्काम कर्म और सेवा, त्याग और संयममय जीवन जीने का मूलमंत्र दिया गया है, वह कोई सच्चा देशभक्त ही दे सकता है। आज की समस्या क्या हैं ? परिवार की समस्या क्या है ? माता-पिता प्रारम्भ से बच्चों को स्वार्थ-चेतना की दिशा में ले जाते हैं। ''यही उपदेश दिया जाता है कि कमाओ और घर भरो। परिग्रह-संग्रह तथा लोभ की वृत्ति पैदा होती है और परिणाम है स्वार्थ-चेतना की प्रबलता। व्यक्ति-चेतना का जो प्रशस्त रूप है-अध्यात्म-चेतना का विकास, उस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं करता।''[12]

ठा. केसरीसिंहजी के पत्रों में संकीर्ण प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर घर की सेवा के साथ-साथ अपने संपूर्ण परिवेश एवं समाज के प्रति सेवाभावी बनने की अनुकरणीय अपील की गई है। उनके हृदय में सेवा के संबंध में कोई भौगोलिक सीमा रेखा नहीं थीं। उन्होंने मानवता की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म और कर्म माना है। इस संबंध में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा गीता में कहा गया है कि ''ते प्राप्नुवन्ति मामेव, भूतहिते रताः'' (12/4) अर्थात जो प्राणिमात्र के हित में लगे हुए हैं, वे मुझे यानी परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी की यह चौपाई ''परहित सरिस धर्म नहिं भाई/परपीड़ा सम नहिं अधमाई'' परोपकार की महत्ता को दर्शाती है। निःस्वार्थ सेवा और कर्म करने वाले ही सही मायने में ईश्वर की सेवा करते हैं तथा समाज को जीवंत बनाए रखते हैं। स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी आदि सभी महापुरुषों के विचारों से हमें निःस्वार्थ कर्म की प्रेरणा मिलती है। ठा. केसरीसिंह बारहठ साहित्य एवं संस्कृति के अध्येता होने के साथ ही स्वामी दयानन्दजी एवं गाँधीजी के तो व्यक्तिशः संपर्क में रहे अतः उनके व्यक्तित्व में इन महापुरुषों के व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। ये पत्र उनके अपने जीवन के दीर्घ अनुभवों का निचोड़ है। ''वस्तुतः हम अपने जीवन व्यवहार में सामंजस्य की बात को महत्त्व नहीं देंगे तो शांतिपूर्ण सहवास की बात संभव नहीं बन पाएगी। यदि साथ में रहना है, सह-चिंतन, सह-चित्त, सह-वास या सह-अस्तित्व चाहते हैं तो सामंजस्य का सूत्र अपनाना ही होगा।''[13]

हजारीबाग सेंट्रल जेल से 17 दिसम्बर, 1918 को ठा. केसरीसिंहजी अपने जामाता ईश्वरदान आसिया को संबोधित पत्र में लिखते हैं कि ''विधि-विडम्बित अवस्था में जिस कुटुंब का हृदय उच्च, स्नहेपूर्ण कर्त्तव्यपरायणता और धैर्य आदि सद्‌गुणों से देदीप्यमान रहे, उस कुटुंब का भविष्य कभी मंद नहीं होता।''[14] आज पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की समस्या यह है कि विचारों के अंतर को कोई बर्दाश्त नहीं करता। विचारों का यह भेद व्यवहार रूप में परिणत होता है फलस्वरूप रिश्तों में तनाव एवं टकराहट का जन्म होता है। इन पत्रों में ठा. केसरीसिंहजी ने पारिवारिक सौहार्द हेतु पारस्परिक समझ, सम्मान, सहिष्णुता, संयम, समन्वय, सेवा, सहयोग, संस्कार, समर्पण, सत्यपरायणता की आवश्यकता पर बल देते हुए इन्हें आचरण में उतारने की सलाह दी है, जिससे पारिवारिक शांति, स्नेह एवं सरसता बनी रहे। ये विचार भावी पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करते रहेंगे, जिससे कि वे अपने दायित्वों का निर्वहन सम्यक रूप से करते रहें।

ठा. केसरीसिंहजी ने रूप, यौवन, देह आदि को क्षणभंगुर बताते हुए आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। यह प्रयोगसिद्ध सत्य है कि जब तक व्यक्ति आंतरिक रूप से उन्नत नहीं होता तब तक व्यवहार में असमंजस, आवेग, आक्रोश, अंतर्द्वंद्व आदि बना रहता है, जिसके परिणामस्वरूप जीवन में शांति स्थापित नहीं हो सकती। जीवन में सुख एवं शांति लाने के लिए दृष्टिकोण बदलना आवश्यक होता है। हमारे समक्ष पारिवारिक जीवन की अनेक समस्याएं हैं, जो अधिकांशतः पदार्थपरक दृष्टिकोण के द्वारा उत्पन्न हुई है, उन्हें भोगना पड़ेगा, चाहे व्यक्ति कितना ही बड़ा बन जाए। जो व्यक्ति पदार्थ जगत से हटकर आत्मा के जगत में थोड़ा सा भी प्रवेश पा गया, उसने अपने लिए सुख और शांति का मार्ग खोज लिया। पदार्थ एवं आत्मा, ये दो रास्ते हैं। पदार्थाभिमुखता से आत्माभिमुखता की ओर प्रस्थान करना ही पारिवारिक शांति का मूल मंत्र है।[15] यद्यपि जन सामान्य के लिए

पदार्थ से संपृक्त होना स्वाभाविक है, फिर भी पदार्थ के प्रति उसे इतना आग्रही नहीं होना चाहिए कि आत्म तत्व उपेक्षित हो जाए। इस तथ्य एवं सत्य को ठा. केसरीसिंह बारहठ ने न केवल कहा एवं लिखा वरन स्वयं अपने आचरण में उतार कर दिखाया।

निष्कर्षतः ठा. केसरीसिंहजी के पत्रों में वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं के सहज समाधान हैं, ये पत्र संस्कार निर्माण के सूत्र हैं, स्वस्थ परिवार-निर्माण के तंत्र एवं पारिवारिक शांति के मंत्र सदृश हैं। वर्तमान में मानव समाज के समक्ष अनेक समस्याएं हैं, चुनौतियां हैं परन्तु सबसे बड़ी चुनौती नैतिक चरित्र के निर्माण की है। आज तेजी से नैतिक चरित्र का पतन एवं अपसंस्कृति का फैलाव हो रहा है, ऐसे में नैतिक चरित्र निर्माण की महती आवश्यकता है। व्यक्ति के संस्कारों का निर्माण परिवार में ही होता है। परिवार से मिले संस्कारों की जड़ें इतनी मजबूत एवं गहरी होती है कि आधुनिकता के अंधानुकरण की अपरिमित आँधी इन संस्कारित-जड़ों को हिला नहीं पाती। ठा. केसरीसिंह बारहठ ने इन पत्रों के माध्यम से अपने मनोभावों, संवेदनाओं और अंतर्द्वंद्वों का सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है। निस्संदेह उनके द्वारा अभिव्यक्त विचार वांछित परिवर्तन का हेतु बनेंगे। ये विचार परिवार को सुसंस्कारित करने वाले हैं। ये पत्र नौजवानों को उनके अधिकारों एवं दायित्वों का बोध कराते हैं। इन पत्रों का सार यही है कि व्यक्ति और परिवार के स्वस्थ और खुशहाल होने पर ही समाज एवं राष्ट्र की स्वस्थता, खुशहाली एवं उन्नति संभव हो सकती है। अस्तु!

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रथम खण्ड) भूमिका, पृ. 9 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1984*
2. *गोस्वामी तुलसीदास : रामचरित्र मानस बालकांड 1/334/2-3*
3. *महाप्रज्ञ ने कहा : संपादक-साध्वी विश्रुतविभा एवं साध्वी विमलप्रज्ञा, पृ. 39-40, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, नई दिल्ली*
4. *कैसी हो इक्कीसवीं शताब्दी : आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 09, जैन विश्व भारती, लाडनूं, 2001*
5. *क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रथम खण्ड) पृ. 167 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1984*
6. *स्वातंत्र्य राजसूय में बारहठ परिवार की आहूति- ओंकारसिंह लखावत, पृ. 13 (ठा. केसरीसिंह जी ने सन् 1914 ई. के अंत में आजन्म कारावास हो जाने के पश्चात् कोटा सैंट्रल जेल से यह पत्र अपनी पुत्री सौ. चंद्रमणि देवी को लिखा था)*
7. *क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रथम खण्ड) भूमिका, पृ. 167 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1984*
8. *क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (द्वितीय खण्ड), पृ. 66-68 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1986*
9. *वही, पृ. 69-71*
10. *वही, पृ. 72-74*
11. *वही, पृ. 75*
12. *परिवार के साथ कैसे रहें-आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 09, जैन विश्व भारती, लाडनूं, 16 वां संस्करण, अगस्त 2019*
13. *वही, पृ. 23*
14. *क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्रथम खण्ड) भूमिका, पृ. 172 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1984*
15. *परिवार के साथ कैसे रहें-आचार्य महाप्रज्ञ , पृ. 93, जैन विश्व भारती, लाडनूं, 16वां संस्करण, अगस्त 2019*

प्राकृतिक संसाधनो का दोहन एवं पर्यावरण विनास

डॉ. सुरेश चन्द वैष्णव
सह आचार्य (भूगोल), अ.रा.ब.जैन विश्व भारती महाविद्यालय, छबड़ा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पंचभूत जन्य सृष्टि प्रकृति बिना संभव नहीं है, यही पर्यायवरण है, जिससे हम आच्छदित है। यह हमारा पोषक एवं रक्षक है, यही ब्रह्माण्ड है, इसके जीवोपयोगी पदार्थ प्राकृतिक संसाधन कहलाते है, यही जीव मात्र को प्रकृति का अनुपम उपहार है। कुछ साधन प्रयत्न जन्य है जैसे खनिज जीवाष्म ईधंन इनका उपयोग कैसे हो? उत्तर स्वर्ण अडें वाली मुर्गी की तरह लोभ रहित उपयोग करे, अन्यथा संकटापन्न होंगे। वृक्षों से फल मिलते है किन्तू उन्हें खाद, पानी, संरक्षण देना पडता है। शोषण परख स्थितियॉ उसका अस्तित्व मिटाती है, साथ ही अपने पैरों पर कुल्हाडी भी। प्राकृतिक संसाधनों की जागरूकता वन्य जीव रक्षक और भावी पीडी सरंक्षण, जीवाष्म ईधंन दोहन न्यूनीकरण, प्रदूषण नियन्त्रण, प्राकृतिक धरोहर एवं सांस्कृतिक मूल्य सरंक्षण, WORLD WIDE FOR NATURE की वार्षिक रिपोर्ट एवं LIVING PLANET REPORT 2003, के अनुसार यदि वर्तमान दर से संसाधन दोहन चलता रहा तो 50 वर्षो बाद हम 2 पृथ्वी जितना शोषण कर चुकेंगे जबकि पृथ्वी एक ही है। हम विश्व पारिस्थीकीय सेवाओं का 60 प्रतिशत अपोषणीय रूप से शोषित कर रहे है सन् 1970 से सन् 2020 के बीच पृथ्वी की 42 प्रतिशत जीव प्रजातियॉ विलुप्त हो चुकी है। जिम्मेदार है पश्चिमी देश, हम भंयकर स्थिति की और है। बढती जनसंख्या औद्योगीकरण व नगरीकरण तथा गहन कृषि वृद्धि इस विनाश के कारक है। आज हम जल संकट, उर्जा संकट एवं बाढ सूखा, वायु एवं जल प्रदूषण जलवायु प्रदूषण एवं मरूस्थलीयकरण से जूझ रहे है। जिसका मूल कारण अविवेक पूर्ण संसाधनो का दोहन है।

संकेताक्षर : *शोषण, अवक्रमण, पर्यावरण, आच्छादित, ब्रह्माण्ड, प्राकृतिक संसाधन, जीवाष्म ईधंन, उन्मूलन, शोषण परख, औद्योगीकरण, नगरीकरण, उर्जा संकट, मरूस्थलीयकरण, भूमझलीय उष्णता, संसाधन संकट, उत्सर्जित, संविकास, अपोषणीय, आनुवंशिकता, विस्तृतीकरण।*

पंचभूत से निर्मित मानवीय सृष्टि का अस्तित्व इस संसार में प्रकृति के बिना सभंव नहीं है प्रकृति वह मूल तत्व है जिसका परिणाम यह जगत है। यह पर्यावरण है जो हमारे चारों और आच्छादित है हमारा पालन–पोषण करने के साथ ही हमारे अस्तित्व का कवच भी है। यह संकट से सुरक्षा और शांति काल में प्रगति का सूचक है व्यापक अर्थ में यह प्राकृतिक और भौतिक पदार्थिक जगत या ब्रह्माण्ड़ है।

वह प्राकृतिक पदार्थ जो जीवोपयोगी होते है तथा अपने मूल रूप में अत्यधिक मूल्यवान समझे जाते हैं, प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। यह वह स्त्रोत या साधन हैं, जो मानव जाति के कार्यो के बिना उपस्थित है। इनके बिना प्राणी मात्र का जीवन असंभव है। अतः मानवीय अथवा जैविक सेवा से संबंधित प्रकृति का तत्व प्राकृतिक संसाधन है। यह जीवन मात्र को प्रकृति का अनुपम उपहार है सृष्टि कर्ता ने सृजन के समय प्राणी के लिए आवश्यक उन तत्वों की व्यवस्था प्रारभ से ही की हुई है। इनमें कुछ सहज सुलभ है यथा–हवा, पानी, मिट्‌टी एवं प्रकाश तथा कुछ साधनों को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त भी किया जाता है जैसे खनिज सम्पदा तथा जीवाष्म ईंधन इत्यादि।

अब प्रश्न उठता है इनका उपयोग कैसे किया जाए? तो उत्तर है कि सृष्टि का ये नियम है कि यदि एक दूसरे की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए पदार्थो की प्राप्ति तथा उपयोग किया जाए तो संसाधन एक लम्बी अवधि तक अपने

सेवा कार्यों में सलंग्न रह सकते हैं किंतु 'मुर्गी द्वारा प्राप्त सोने के अंडे' की कथा–अनुसार यदि लोभवश उपयोग के स्थान पर उपभोग किया जाए तो प्रकृति शनैः शनैः अपने अस्तित्व से उस पदार्थ का क्षरण करते हुए प्राणी के लिए संकट कालीन स्थिति उत्पन्न कर देती है।

अतः किसी भी संसाधन के लिए आवश्कता है कि उसका उचित उपयोग कर तथा उसका पोषण करते हुए दोहन करें जैसे वृक्षों से फल प्राप्त करने हैं तो उन्हें आवश्कता अनुरूप जल–खाद तथा संरक्षण देकर उनसे सामग्री संचित की जाए न कि उनके फलों के साथ पत्ते शाखाएँ यहाँ तक कि जडों का भी उन्मूलन कर देने जैसी शोषणपरक स्थितियों से हम उसका अस्तित्व तो मिटा ही देते हैं साथ ही स्वयं के अस्तित्व के लिए भी संकट उत्पन्न कर लेते हैं। अतः प्राकृतिक संसाधनों का दोहन प्राणी मात्र के हित में नही है। यह पर्यावरण समाप्त कर जीवन की अवधि को नष्ट करता है।

उदेश्य

1. प्राकृतिक संसाधनो के बारे में जागरूकता बढाना।
2. वन्य जीवों की रक्षा और भविष्य की पीढियों के लिए इसे संरक्षित करना।
3. जीवाष्म ईधन के दोहन को कम करना।
4. प्रदूषण पर नियन्त्रण करना।
5. प्राकृतिक धरोहर को संरक्षित रखना।
6. सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण।

अध्ययन क्षेत्र

World wide for Nature ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट LIVING PLANET REPORT 2003' में बताया है, कि यदि आधुनिक मनुष्य वर्तमान दर से प्राकृति संसाधनो का दोहन करता रहा तो अगले 50 वर्षों में हम दो पृथ्वी के बराबर संसाधनो का शोषण कर लेंगे। लेकिन मानव शायद भूल गया है कि उसके पास केवल एक ही पृथ्वी है।

विश्व के 95 देशों के 1350 शोधार्थीयों द्वारा चार वर्षो तक किये गये एक अनुसंधान MILLENNIUM ECOSYSTEM ASSESSMENT में ''विश्व पारिस्थितिकी सेवाओ'' की योग्यता परीक्षा की 2500 पृष्टों की रिपोर्ट बताती है, कि विश्व पारिस्थितिकी सेवाओं का 60 प्रतिशत अपोषणीय रूप में शोषित किया जा रहा है।

WWF की वार्षिक रिपोर्ट 2009 से ज्ञात है, कि मनुष्य विश्व के संसाधनों का दोहन इतनी तीव्रता से कर रहा है, कि पृथ्वी के जीवन को पोशित करने की क्षमता तेजी से नष्ट हो रही है। उक्त रिपोर्ट में बताया गया है, कि वर्तमान में मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग पृथ्वी की संसाधन उत्पादन क्षमता से 20 प्रतिशत अधिक कर रहा हैं। साथ ही साथ 1970 से 2020 के बीच पृथ्वी के जीव–जन्तुओं की 42 प्रतिशत प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं, अतः इन आंकड़ों के अनुसार मानव द्वारा प्रकृति की सम्पदा का अंधा–धुंध शोषण पूरी मानव जाति पर ''पारिस्थितिकी कर्ज'' को इतना बढ़ा चुका है कि अब हम यह ऋण कभी चुका नहीं पायेंगे। पृथ्वी की 6 प्रतिशत विलियन जनसंख्या का ''पर्यावरण प्रभाव'' भयप्रद है। पश्चिमी देशों की जनसंख्या पर्यावरण को सर्वाधिक नुकसान पहूंचा रही है। उत्तरी अमेरिका के निवासी का ''पर्यावरणीय प्रभाव'' यूरोपियन से दुगना एशियन तथा अफ्रीकन से औसत 7 गुना अधिक है। अतः पूर्व की अपेक्षा पश्चिम के विकसित राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कई गुना अधिक कर रहे है। अतः हमें यह कहने मे कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, कि ''हम भयप्रद स्थिति की और बढ़ रहे है।''

यह सर्व विधित है कि सम्पूर्ण पृथ्वी विनाश के कगार पर खड़ी है, इसका उत्तरदायी मनुष्य स्वयं है। तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या अधिक विस्तृत व गहन होता औधौगीकरण व नगरीकरण तथा अधिक खाद्यान्न आपूर्ति हेतु गहन कृषि में वृद्धि ने इस विनाश की तीव्रता को बढ़ाया है। आज हम जल संकट, भुखमरी, ऊर्जा संकट, बाढ़, सूखा, वन विनाश, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूण्डलीय उश्णता, जलवायु परिवर्तन, मरूस्थलीकरण, कृषि उत्पादन में निरन्तर ह्रास कृषि भूमि का अभाव, संसाधनों पर स्वामित्व हेतु युद्ध, प्राकृतिक आपदा आदि झेल रहे हैं। उक्त ह्रास का मुख्य कारण है कि प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण उपयोग एवं उनका शोषण रहा है। पृथ्वी उतनी तीव्रता से संसाधनों को पुनः उत्पादित नहीं कर पाती जितनी तीव्रता से हम उनका दोहन अधिक सीमा से कर रहे हैं। परिणामस्वरूप आज हम संसाधन संकट (resources crisis) का सामना कर रहे है। जिनके परिणाम भविष्य में मानव समुदाय के लिए काफी विनाशकारी होंगे। 1961 से 2001 तक जैव ईधन (कोयला, प्राकृतिक गैस, खनिज तेल) के उपभोग में 700 प्रतिशत वृद्धि हुई है। जो वायु प्रदूषण, के मुख्य

कारण हैं। दिल्ली व आस–पास के शहरों में जैव ईधन के अत्यधिक उपयोग के कारण वायु में कार्बन ऑक्साइड जैसी विशैली गैसें उत्सर्जित होती हैं, जो कि वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण हैं। इससे बचने के लिए दिल्ली सरकार द्वारा CNG व बैट्री चालित वाहनों के उपयोग को प्राथमिकता देने के लिए प्रदूषण रहित वाहनों पर अनुदान देना सत्र–2012 से प्रारम्भ कर दिया है। कार्बनडाई ऑक्साइड गैस के कारण ही भूमण्डलीय ताप में वृद्धि हो रही है। जैव ईधन का उपयोग इस दर से होता रहा तो अगले 100 वर्षो में पृथ्वी के सभी तेल भण्डार खत्म हो जायेंगे। लेकिन डीजल, पेट्रोल के बिना हम आधुनिक युग की कल्पना भी नहीं कर सकते।

1950 से 2002 तक वायुमण्डल में कार्बनडाइ ऑक्साइड की मात्रा 311.25 ppmv (Ports per Million Volume) से बढ़कर 370ण्89 चचउअ हो गई, जो 8 अप्रेल 2021 को बढ़कर 421.21 ppmv तक पहुॅच गई है। जो कि 18वीं सदी के स्तर से डेढ़ गुना कार्बनडाइ ऑक्साइड की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ गई है। पृथ्वी की सतह का औसत तापमान 1950 में 13.8 डिग्री सेल्सियस था, जो 2020 में बढ़कर 15 डिग्री सेल्सियस हो गया है। यही भूमण्डलीय उश्णता पृथ्वी की हिमानियों तथा हिमखण्डों को प्रभावित कर रही है, जिससे उत्तरांचल व हिमाचल प्रदेश में विगत वर्षो में कई बार भूस्खलन व बाढ़ की घटनाऐं हुई हैं तथा बाद में सूखे की समस्याऐं उत्पन्न हो रही हैं। जिसका विपरीत प्रभाव कृषि भूमि में सिंचाई व खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा। सम्पूर्ण जगत जल संकट व खाद्यान्न संकट में आ जावेगा। वर्तमान में भी हम जल प्रदूषण, जल संकट व खाद्यान्न का सामना कर रहे हैं। सम्भवतः यह संकेत है, उस भयंकर व विनाशकारी भविष्य का। प्रत्येक 15 सेकेण्ड में एक बच्चा जल सम्बन्धी रोगों से मर जाता है। इसी तरह अफ्रीका महाद्वीप में 7760 बच्चे प्रतिदिन जल रोगों से अपनी जान गंवा देते हैं। यहॉ का सबसे गरीब राष्ट्र तंजानिया जहाँ स्कूली बच्चे अपने विद्यालय में पानी के अभाव के कारण शोच हेतु 'गहरे गड्डे' का प्रयोग करते हैं। इसके बाद भी उनके पास अपने हाथ धोने हेतु पानी नहीं होता है, और वर्षा के दिनों में गड्डे व स्कूल मैदान में वर्षा का जल भर जाता है। अतः अफ्रीका के देश वर्ष के कुछ महीनें बाढ़ से आक्रांत रहते हैं, तो कुछ महीनों में सूखें की समस्या से ग्रसित रहते हैं, जिसका मुख्य कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन व पर्यावरण अवक्रमण है। 2002 में संयुक्त राष्ट्र के (World Food Programme Wep) विशेषज्ञों ने मौजैम्बिक, जिम्बावे, जाम्बिया, मालवी एवं लेसोपो अफ्रीकी आदि 6 राष्ट्रों का दौरा किया और उन्होने पाया की यहाँ की महिलाऐं घांस के बीज एकत्र कर उन्हें पत्थरों पर पीसकर, उनका पेस्ट बनाकर अपने भूख से तड़पते बच्चों को खिलाया करती थीं। वहाँ के लोगों के पास खाने के लिए हरी मक्का व घांस ही मात्र खाद्यान्न था। हालत यह था कि लोग एक दूसरे की फसल चुरा लेते थे। यही स्थिति बारां जिले के शाहबाद, किशनगंज तहसीलों के आदिवासी खानाबदोश सहरिया, भील लोगों की है, जिनके बच्चे व महिलाऐं अधिकांशतः कुपोषण के शिकार हैं। जिसका मुख्य कारण मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अंधा–धुंध शोषण एवं निर्धनता, अशिक्षा आदि रहा है।

मानव विकास एवं पर्यावरण अवक्रमण

मानव का आर्थिक विकास पर्यावरण अवक्रमण का कारण बना और साथ ही साथ संसाधनों का अभाव भी हुआ, किन्तु यहाँ कुछ प्रश्न उठते हैं कि क्या मानव को अपनी उन्नति के लिए प्रयास बंद कर देने चाहिए? क्या हमें संसाधनों का अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप उपयोग करना बन्द कर देना चाहिए? क्या हमें अधिक कीटनाशकों व रासायनिक खादों का प्रयोग कृषि में बन्द कर देना चाहिए ? क्या गहन कृषि बन्द कर देनी चाहिए ? क्या हमें आनुवंशिक्तः सवंर्धित बीजों (geneticaly modified sheeds) का निर्माण व उपयोग बन्द कर देना चाहिए। क्या हमें तेल, खनिज व प्राकृतिक गैस का खनन बन्द कर देना चाहिए ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर है नही! क्योंकि आज के युग में मानव जाति के अस्तित्व को बचाने के लिए इन सभी क्रियाकलापों की तार्किक आवश्यकता है। यहाँ पुनः एक प्रश्न उठता है, यदि हम इन सभी आर्थिक क्रियाकलापों को बन्द नहीं कर सकते तो फिर संसाधनों के शोषण की इनके अभाव की और इसके दुष्प्रभावों की हम चर्चा क्यों करते हैं? हम भविष्य को लेकर चिन्तित हैं? क्या आवश्यकता है ये सब हाहाकार मचाने की? यदि विकास करना है तो उद्योग भी लगाने होंगे, नगर भी बसाने होंगे, गहन कृषि भी करनी होगी। जिनके परिणाम स्परूप अपशिष्ट भी उत्पन्न होंगें, कीटनाशक व रासायनिक खाद का प्रयोग, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस का खनन भी करना होगा। जिसकी आर्थिक विकास हेतु आवश्यकता होगी। यह सच है कि क्या हम यह सब कुछ संसाधनों का शोषण न कर उनका पोषण

कर उपयोग करके नहीं कर सकते? क्या हम अपोषणीय विकास को छोड़कर संविकास तथा पोषणीय विकास की और नहीं जा सकते ?

आज हम जिन काँच गृह गैसों (Green House Geshs) जो कि भूमण्डलीय उष्णता के लिए उत्तरदायी हैं, का उत्सर्जन कर रहे हैं। क्या हम उनका उत्सर्जन संयुक्त राष्ट्र आचार–संहिता सन्धि द्वारा निर्धारित स्तर पर नहीं कर सकते? जबकि हमें ज्ञात है कि कीटनाशक व रासायनिक खाद की विशाल मात्रा का उपयोग हमारे भू–जल भण्डारों को प्रदूषित कर रहा है, तो क्या हम इसके स्थान पर जैविक किटनाशक व खाद का प्रयोग क्यों नहीं कर रहे हैं। जबकि हम जानते हैं कि आनुवंशिकतः सवंर्धित फसलों के उगाने से सुपर खरपतवार उत्पन्न होती है, तो ऐसे आनुवंशिकतः सवंर्धित बीजों का उपयोग करने की वकालत क्यों करेंगे ?

वर्तमान समय में ऐसा ही हो रहा है। आज का मनुष्य जानता है कि यह सब गलत है, किन्तु वह मजबूर है, वह एक अजीब कुचक्र में फॅस गया है इस कुचक्र की एक जटिल क्रियाविधि है, जिसके कारण मनुष्य निरन्तर अपोषणीय विकास की ओर जा रहा है। वास्तव में मानव आज संकट में है। जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, वैसे–वैसे इसके भरण पोषण हेतु अधिक खाद्यान्न की आवश्यकता है। जिसकी पूर्ति के लिए अधिक उत्पादन, गहन कृषि करनी होगी और वर्तमान कृषि भूमि का भी विस्तृतीकरण करना होगा, जिसके लिए अतिरिक्त कृषि भूमि की आवश्यकता है। यह वनों को काटकर चारागाह भूमि को समाप्त करके प्राप्त की जाती है। इसी प्रकार जनसंख्या के बढ़ने से नगरों में वृद्धि हुई है और नगरों के विस्तार हेतु कृषि भूमि पर नगर बस रहे है। वनों को काटा जा रहा है। उद्योग भी वन भूमि व कृषि भूमि पर ही लगाये जा रहे हैं। तीनों चीजों की आवश्यकता है– खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि, नगरीकरण व औधोगीकरण। लेकिन समस्या यह है कि तीनों के विकास व विस्तार के लिए भूमि की आवश्यकता है और भूमि संसाधन सीमित है। यदि वनों को काटकर भूमि प्राप्त की जाए तो जैव–विविधता प्रभावित होती है, दूसरी ओर यदि कृषि भूमि का उपयोग नगरीकरण और औधोगीकरण हेतु किया जाए तो खाद्यान्न में कैसे वृद्धि करें। सम्भवतः यही कारण है, कि आज गहन कृषि को बढ़ावा मिला है। कम कृषि भूमि से ज्यादा पैदावार प्राप्त करने की होड़ में अधिक कीटनाशक, अधिक रासायनिक खाद, अधिक सिंचाई का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। साथ ही भांकर बीजों द्वारा फसल उत्पादन किया जाने लगा है। इस से जहाँ एक और कीटनाशकों व रासायनिक खादों के भारी प्रयोग से जल प्रदूषित हुआ, वही अधिक सिंचाई हेतु नलकूपों द्वारा भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन करने से भू–जल स्तर में कमी आयी। साथ ही आनुवांशिक सवंर्धित बीजो कें प्रयोग से सुपर खरपतवार उत्पन्न होने लगी जिन्हें खत्म करना असम्भव है।

इसी प्रकार बढ़ते नगरीकरण, ऊर्जा, जल, विधुत आदि के उपभोग में विशाल वृद्धि हुई है। जहाँ एक ओर जैव ईधन के प्रयोग से वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण बढ़ा है, वही दूसरी ओर नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन से रेडियोधर्मी प्रदूषण तथा जल प्रदूषण बढ़ा है। इसी तरह जल विधुत उत्पादन हेतु विशाल बाँध बनाये गये, जिससे एक ओर इनके निर्माण में विशाल राशि खर्च होने से आर्थिक दबाव बढ़ा है, वही दूसरी और पारिथितिकीय असंतुलन भी बढ़ा है। जिसका उदाहरण टिहरी बांध के भरनें से भूस्खलन तथा महाराष्ट्र के कोयना बांध में जल भरने से भू–असंतुलन के कारण लाथूर तथा उस्मानाबाद जिलों में भूकम्प का आना मुख्य कारण रहा है।

अतः विशाल जलाश्यों के बनने से एक विशाल वनसम्पदा डूब जाती है, तो दूसरी ओर उनमें रहने वाले जीव–जन्तुओं तथा अन्य प्राणियों के आवास छिन जाते हैं। जिससे जैव विविधता में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। वही दूसरी और इन जलाशयों में गाँव के गाँव डूब जाते हैं। जिससे लाखों लोगों को विस्थापित होना पड़ता हैं। ऊर्जा संसाधनों के उपयोग से भी समस्याऐं उत्पन्न हुई है, वहीं दूसरी और इनके अंधा–धुंध उपभोग ने ऊर्जा संकट पैदा कर दिया है, ग्रीन हाऊस प्रभाव, भू–सतह के तापन में वृद्धि, औजोन परत का क्षरण, जलवायु परिवर्तन आदि समस्याऐं, नगरीकरण, औधोगीकरण के कारण हुए वायुमण्डलीय प्रदूषण के कारण उत्पन्न हुई है। अतः संयुक्त राष्ट्र की ''मानव पर्यावरण पर'' ''स्टॉक होम घोशणा'' में कहा गया है कि ''पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधन जिसमें हवा, पानी, भूमि, जीव–जन्तु, वनस्पति भी भामिल है, तथा मुख्य रूप से प्राकृतिक व्यवस्था के प्रतिनिधि प्रतिदृश्यों को वर्तमान तथा भविष्य की पीढ़ियों हेतु सचेत नियोजन व प्रबन्धन के माध्यम से संरक्षित किया जाना चाहिए।'' लेकिन आधुनिक मानव ऐसा करने में सदैव विफल रहा है। उसने संसाधनों का शोषण अपोषणीय ढंग से किया है। आज मनुष्य अपनी गलती महसूस तो करता है

नदियां, खनिज तथा ऐसे संसाधन राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पदा का निर्माण करते है ये संसाधन किसी भी पीढ़ी द्वारा नादानी में व्यर्थ करने तथा विनाश करने के लिए नहीं हैं। प्रत्येक मानव पीढ़ी का यह कर्त्तव्य बनता है कि राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों का विकास एवं संरक्षण श्रेष्ठ एंव सम्भव तरीके से करें। यही मानवता व राष्ट्र के हित में है। अतः प्रत्येक पीढ़ी को जल, वायु एवं मृदा संसाधन को उतना ही शुद्ध एवं स्वच्छ रहने देना चाहिए जितना कि ये तब थे, जब से पृथ्वी पर आये। लेकिन मानव ने अपनी कमियों को सुधारने में अपनी कटिबद्धता पर सुदृढ़ता से कार्य नहीं किये हैं। आज विश्व की अर्थव्यवस्था खनिजों की दृष्टि से लुटेरी अर्थव्यवस्था कही जाती रही है। पृथ्वी के संसाधनों का जिस राष्ट्र ने जितना ज्यादा शोषण किया वह राष्ट्र उतना ही अधिक पर्यावरण को क्षति पहुँचाता रहा है। प्राचीन रोमन साम्राज्य ने एक विधिक सिद्धान्त को विकसित किया था, जो ''सार्वजनिक धरोहर का सिद्धान्त'' (Doctrine of the Public Trust) के नाम से जाना जाता था। इस सिद्धान्त का मूल यह था कि विशेश संसाधन जैसे– हवा, जल, वन, आम लोगों के लिए इतने अधिक महत्वपूर्ण है कि इन पर व्यक्तिगत स्वामित्व बनाना कतई न्यायोचित नहीं होगा। उपरोक्त संसाधन प्रकृति की देन हैं, अतः व्यक्ति को भले ही उसकी कुछ भी हैसियत हो उसे प्राकृतिक संसाधन, मुक्त रूप से उपलब्ध करायें जाने चाहिए। अर्थात संसाधनों का प्रयोग व्यक्तिगत स्वामित्व तथा व्यापार के लिए न होकर सर्व हितार्थ होना चाहिए। ऐसे उक्त सिद्धान्त की मान्यता थी।

सारांश

पर्यावरण की रचना भौतिक तथा जैविक घटकों के सम्मिलित रूप से हुई है। इन घटकों का पर्यावरणीय तंत्र में सदैव सन्तुलन बना रहता है। यह तंत्र सम्पूर्ण जीवों को क्रियात्मक रखकर नियन्त्रित करते हैं।

इन पर्यावरण के तत्वों का उपयोग करके मानव विकास करता है, किन्तु इस व्यवस्था में मानवीय तथा प्राकृतिक कारकों के कारण व्यवधान आ जाते हैं, जिससे पारिस्थितकीय क्षति होती है। जैसे मृदा अपरदन, भूस्खलन, ज्वालामुखी, प्राकृतिक खनिज तेल, गैस, कोयला आदि के अत्यधिक दोहन व बढ़ते औद्योगिक विकास, नगरीकरण, जनसंख्या वृद्धि व कृषि में आधुनिकीकरण ने पर्यावरण को काफी क्षति पहुँचायी हैं। वर्तमान समय में मानव पारिस्थितिकी को वृहत स्तर पर परिवर्तित करने में सक्षम हो गया है। प्राणी जगत में मनुष्य सर्वाधिक कुशाग्र तथा ऊर्जा सम्पन्न प्राणी है, वह पर्यावरण को उस सीमा तक परिवर्तित करने में समर्थ है, जहाँ पर्यावरण प्रत्येक जीव के लिए संकटग्रस्त हो जायेगा। जनसंख्या वृद्धि के कारण बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का शोषण बुद्धिमान मानव ने तीव्र गति से करना प्रारम्भ कर दिया जिससे पारिस्थितिकी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार मानवीय हस्तक्षेप के कारण मानव जनित पर्यावरण संकट उत्पन्न हुआ।

अतः वास्तव में आर्थिक विकास एवं पर्यावरण अवक्रमण में एक नकारात्मक सहसम्बन्ध विकसित हो गया है। जितना अधिक आर्थिक विकास अर्थात उतना ही अधिक संसाधन दोहन के परिणाम स्वरूप जीवन स्तर तो विकसित हुआ है, किन्तु पर्यावरण का अवनयन होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *G–16/वाता.*
2. *संयुक्त राष्ट्र संघ वार्षिक रिपोर्ट*
3. *Google Net द्वारा पर्यावरण के आँकड़े।*
4. *सिंह अरविन्द 2010 जलवायु परिवर्तन के सम्भावित परिणाम, योजना, अप्रेल 2010*
5. *शर्मा संजीव 2011 'प्रादेशिक विकास में पर्यावरणीय मुद्दे तथा सततः विकास' भूगोल और आप जनवरी–मार्च 2011*
6. *असलम तारिक 2003 'हमारा पर्यावरण' विज्ञान प्रगति जून 2003*
7. *जैव विवधता संरक्षण एवं दशायें भूगोल और आप 2012*
8. *ओइन रेन 2002 खाद्य और पोषण सुरक्षा भारतीय संदर्भ वालंटरी एक्शन नेटवर्क इंडिया नई दिल्ली*
9. *विश्व खाद्य सम्मेलन रोम (13–17 नवम्बर 1996) के दस्तावेज के आधार पर।*
10. *वार्षिक संदर्भ ग्रंथ भारत 2003, 2013 सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।*
11. *ब्रून जेम्स एन 1992 ''टिहरी बांध भूकम्प उपेक्षित पर आवश्यक पक्ष'' पहाडी पत्रिका।*
12. *G–19/ वार्ता.*

अभिलेख लेखन परम्परा शाहाबाद क्षेत्र के विशेष संदर्भ में

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587
RNI RAJHIN/2011/40531
shodhshree@gmail.com

डॉ. जया भार्गव
अजमेर

शोध सारांश

शाहाबाद क्षेत्र से प्राप्त विभिन्न प्रकार के अभिलेखों में प्रस्तर लेख, प्रतिमालेख, स्तम्भ लेख, वीर स्मारक-लेख, एवं कूप या बावड़ी लेख, आदि उल्लेखनीय हैं। इस क्षेत्र में अभिलेखों की प्राप्ति के आधार पर अभिलेखों के उत्कीर्णन के लिए प्रमुखतः प्रस्तरों के उपयोग की जानकारी मिलती है। अभिलेख प्रायः मंदिर के विभिन्न भागों जैसे-भित्ति में लगे प्रस्तरों, प्रवेश द्वार के सिरदलों, स्तम्भों व प्रतिमाओं के आसनों अथवा पादपीठों, दुर्गों की भित्तियों के प्रस्तरों, वीर स्मारक-स्तम्भों, पहाड़ की चट्टान तथा कूपों, बावड़ियों में लगे प्रस्तरों, आदि पर उत्कीर्ण मिलते हैं। प्रस्तर लेखों से, मन्दिर निर्माण के उल्लेखयुक्त कुछ अभिलेखों में यहाँ के इतिहास से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं। इन प्रस्तर-लेखों में मन्दिर निर्माण के उल्लेख के साथ-साथ निर्माण करवाने वाले निर्माताओं, उनके वंश-वृक्षों, निर्माण की तिथि, दान तथा राजनैतिक व सांस्कृतिक गतिविधियों आदि की भी जानकारी मिलती है। कुछ मंदिर निर्माताओं के रूप में विभिन्न राजवंशों के शासकों के अलावा उनके राज्याधिकारियों व आर्थिक रूप से सम्पन्न श्रद्धालुओं का भी उल्लेख मिलता है।

संकेताक्षर : *प्रस्तर लेख, प्रतिमालेख, कूप, सिरदलों, वंश-वृक्ष, प्रस्तर-पट्टों, स्तूप।*

प्राचीन खण्डहर एवं मुद्राओं की भांति राजस्थान के इतिहास की जानकारी के लिए सबसे अधिक विश्वस्त इतिहास बताने वाला एक साधन अभिलेख हैं। जहाँ कई अन्य साधन मूक अथवा अस्पष्ट हैं वहाँ इतिहास के निर्माण में हमें अभिलेखों से बड़ी सहायता मिलती है। ये अभिलेख शिलाओं, प्रस्तर-पट्टों, भवनों या गुहाओं की दीवारों, मंदिरों के भागों, स्तूपों, स्तम्भों, मठों, तालाबों, बावड़ियों तथा खेतों के बीच गढ़ी हुई शिलाओं, मुद्राओं आदि पर बहुधा मिलते हैं।[1]

अभिलेखीय साक्ष्य समकालीन होने के कारण ऐतिहासिक लेखन को वस्तुनिष्ठता प्रदान करने के साथ-साथ घटनाओं की प्रमाणिक जानकारी प्रस्तुत करते हैं। यह कई विवादास्पद ऐतिहासिक गुत्थियों के समाधान में सहायक होने के साथ ही इतिहास लेखन को एक ठोस आधार प्रदान करने वाले स्त्रोत के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। सम्भवतः अभिलेखों के उत्कीर्णन के लिए इनके प्रयोग की पृष्ठभूमि में किसी कार्य या घटना को शताब्दियों तक आने वाली पीढ़ियों के स्मरण में बनाए रखने की भावना रही होगी। प्राप्त अभिलेखों में प्रस्तर पर उत्कीर्ण लेखों की संख्या अधिक है। इस क्षेत्र के मन्दिर निर्माण से सम्बन्धित अभिलेखों में शाहाबाद, रामगढ़, भण्डदेवरा आदि स्थानों से प्राप्त कुछ उल्लेखनीय प्रस्तर-लेखों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है-

1. सहजनदेव का अभिलेख

शाहाबाद दुर्ग से प्राप्त 17 पंक्ति के, श्री मुख संवत्सर 1250 के प्रस्तर-लेख में सहजनदेव द्वारा महारुण्डा (चामुण्डा) माता के मंदिर का निर्माण करवाने की जानकारी के साथ सहजनदेव के पिता राजराज धंधलदेव का भी उल्लेख मिलता है।

2. मलय वर्मा का अभिलेख

भण्डदेवरा नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में राजा मलयवर्मा द्वारा किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में

अपने इष्ट महादेव के मंदिर का निर्माण करवाने के विषय में जानकारी मिलती है।[2]

3. तीर्थयात्रियों से सम्बन्धित अभिलेख

भण्डदेवरा मंदिर से पाए जाने वाले लेखों में से एक लेख फाल्गुन सुदी वि.सं. 1761 (1704 ई.) का प्राप्त हुआ है जिस पर यहाँ आने वाले दर्शनार्थियों तथा तीर्थ यात्रियों के नामों का वर्णन है।[3]

4. परमार राजाभोज का अभिलेख

एक अन्य लेख मालवा के परमार राजाभोज के कार्यकाल से सम्बन्धित है। यह लेख 21 पंक्तियों का है। लेखन शिल्प तथा विद्वानों के अनुमानुसार यह लेख ईसा की लगभग 12वीं शताब्दी का है।[4]

भण्डदेवरा से प्राप्त अन्य स्तम्भ लेखों का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत अध्याय में आगे किया गया है।

5. राव छत्रसिंह का अभिलेख

शाहाबाद से प्राप्त वि. सं. 1678 (28 जनवरी, 1622) की तिथि के लेख में राव छत्रसिंह द्वारा एक नमन (स्मारक) राजा के युवराज के लिए निर्माण कराने का उल्लेख मिलता है।[5]

6. जामा मस्जिद अभिलेख

शाहाबाद जामा मस्जिद से प्राप्त 1671 ई. के लेख से औरंगजेब के दारोगा मकबूल के निरीक्षण में मस्जिद निर्माण सम्बन्धी सूचना की जानकारी मिलती है।[6]

औरंगजेब कालीन एक अन्य लेख से स्थानीय करों की व्यवस्था तथा मुगलों की समयोचित नीति पर प्रकाश पड़ता है।[7]

प्रतिमालेख प्रायः प्रतिमाओं के आसनों अथवा पादपीठों पर अंकित मिलते हैं। प्रतिमा लेखों में अधिकांशतः प्रतिमा के प्रतिष्ठाकाल तथा प्रतिष्ठा करवाने वाले श्रद्धालुओं के नामों का उल्लेख होता है। इस क्षेत्र में प्राप्त प्रतिमा लेखों में सर्वाधिक लेख भण्डदेवरा से प्राप्त हुए हैं।

कूपों व बावड़ियों में लगे प्रस्तरों पर उत्कीर्ण अभिलेखों में शासकों, उनके राज्याधिकारियों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए जनहित के कार्यों के साथ ही शासकों के शासनकाल व उनके वंश-वृक्ष आदि की भी जानकारी मिलती है।

उपर्युक्त अभिलेखों के अलावा मंदिरों, प्रस्तरों पर शिल्पी चिह्न (मैसन मार्क्स) भी प्राप्त होते हैं। यह शिल्पी चिह्न इनके निर्माण कार्य में सहायक शिल्पियों व दानदाताओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

शाहाबाद क्षेत्र में प्राप्त इन अभिलेखीय साक्ष्यों से जनसामान्य के इतिहास से लेकर राजनीतिक इतिहास तक की विषय सामग्री प्राप्त होती है, जो इस क्षेत्र के इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने में सहायक है।

अभिलेखों का महत्व

पुरातत्व में उत्खनन का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके अन्तर्गत शिलालेख, मुद्रा व स्मारक आदि का परिगणन सामग्री के रूप में किया जाता है। ऐतिहासिक अन्वेषण में जहाँ अन्य प्रकार के साधन सत्यता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं, वहाँ अभिलेख ही इतिहास की कड़ियाँ खोलते हैं। धातुओं एवं पत्थरों पर उत्कीर्ण होने के कारण इनकी प्रामाणिकता में संदेह नहीं किया जा सकता है।

श्रीकृष्ण ओझा जी ने लिखा है कि अभिलेखों पर अंकित तथ्यों का विवरण बिना किसी आशंका के प्रयुक्त किया जा सकता है। पुस्तकों का विवरण तो क्षेपक अंशों के कारण उसी रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता है। सदियों से प्रचलित होने के कारण इतने बड़े देश में प्रक्षिप्त भाग को मौलिक अंश में मिलाया जाना असंभव नहीं है। शिलालेखों पर जो लिख दिया गया, वह अमिट है। इनसे तत्कालीन लेखन शैली का तो ज्ञान प्राप्त होता ही है, साथ ही उसके स्वरूप, भाषा शैली, आकार प्रकार के आधार पर उनका समय भी निश्चित किया जा सकता है।[8]

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए हमें अनेक सामग्रियां जुटानी पड़ती है। उनमें से प्रायः मूक सामग्रियां ही अधिक हैं जिनकी मूक भाषा में ही मुखर कथा सुननी पड़ती है। साथ ही वह भी इतनी उलझी गुत्थी है कि उसको इतिहास की कसौटी पर रखकर सुलझाना भी बहुत सरल नहीं है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि राजतरंगिणी जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ के अभाव तथा इतिहासकार की स्पष्ट वाणी की कमी में हमारा इतिहास ही अन्धकार में रख छोड़ा हो फिर भी हमारे पास इतने साधन हैं कि उसको जोड़कर हमारा सारा का सारा पुराना इतिहास बड़ी सरलता एवं वैज्ञानिकता से तैयार किया जा सकता है।

इसके मूल स्त्रोतों में एक पठनीय स्त्रोत हैं अभिलेख जो भारत भूमि में बिखरे पड़े हैं। आवश्यकता है इनको

पढ़ने और समझने की। इनके द्वारा हमारा अतीत पुनः अपने वास्तविक रूप में जीवित हो उठता है तथा सत्य की अनवरत धारा में अपना इतिहास सुनाने लगता है। यह अभिलेख भले ही राजाश्रित या व्यक्तिगत छाया में खुदे हों पर इनमें ऐसी ऐतिहासिक सामग्रियां संजोई गई हैं जो समकालीन हैं, सत्य है तथा विश्वसनीय है।[9]

शिवस्वरूप सहाय जी ने इस प्रकार का चेदिवंशीय शासक खारवेल का एक उदाहरण दिया है। यदि हाथिगुम्फा अभिलेख उपलब्ध न हुआ होता तो खारवेल इतिहास के लिए एक अज्ञात शासक मात्र ही बना रहता। दूसरे समुद्रगुप्त नामक गुप्तवंशी शासक की महती विजय से हम अनभिज्ञ रह जाते यदि हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति उपलब्ध न हुई होती। इसी प्रकार अशोक जैसे महान शासक की बहुमुखी कृतियों के अध्ययन का एकमात्र व्यवस्थित स्त्रोत उसके अभिलेख हैं। दूसरी ओर मौखरि, उत्तरगुप्त, राष्ट्रकूट, चोल आदि राजवंशों का इतिहास हमारे लिए अन्धकार की गर्त में ही पड़ा रहता यदि इनके अभिलेख प्राप्त न हुए होते। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमारे इतिहास के पृष्ठों पर बिखरे पड़े हैं।[10]

अभिलेखों द्वारा व्यक्तिगत चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। इसमें प्रसंगवत लेखक अपने शासक की कृतियों की चर्चा करते हुए उसके चरित्र का भी वर्णन करते पाये गये हैं। कई अभिलेखों का तो इस दृष्टि से एकान्तिक महत्व है क्योंकि अन्य किसी भी स्त्रोत से इस पक्ष पर प्रकाश ही नहीं पड़ता यदि ये अभिलेख न लिखे गये होते तो इतिहास उस राजा के चरित्र से पूर्णतया वंचित ही रह जाता। इस दृष्टि से हम हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति को ले सकते हैं। समुद्रगुप्त के इतिहास को जानने का यही अभिलेख एकमात्र साधन है। इसमें समुद्रगुप्त के गुणों की चर्चा की गई है कि वह विद्या में कविकुल गुरु था। शास्त्र तत्वार्थ भर्तुः था। संगीत में गुरु, नारद और तम्बरू के समान था तथा युद्ध में यम और कुबेर की तरह था। इसी प्रकार मेहरोली के ''चन्द्र'' अभिलेख तथा पुलकेशिन द्वितीय के एहोल अभिलेख से भी क्रमशः चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा चालुक्य-वंशीय शासक पुलकेशिन द्वितीय का ज्ञान प्राप्त होता है।[11]

ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के पूर्व भारतवर्ष में अभिलेख उत्कीर्ण कराने की प्रथा प्रचलित नहीं थी। कुछ विद्वानों ने बस्ती में प्राप्त पिपरहवा-कलशलेख और अजमेर में प्राप्त बड़ली-अभिलेख को पूर्व अशोककालीन बता कर उपर्युक्त कथन को खण्डित करने की चेष्टा की है। परन्तु यदि हम इन दो अभिलेखों को पूर्व अशोककालीन स्वीकार भी कर लें तो भी वे अपवाद के रूप में ही ग्रहण किये जा सकते हैं, नियम के रूप में नहीं। अभिलेखों की परम्परा तो अशोककाल से ही भारतवर्ष में सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित हुई दिखाई पड़ती है।[12]

इतिहास का निर्माण आकस्मिक रूप से प्राप्त किसी एक उल्लेख से नहीं हो सकता। एक साधन पर अवलम्बित हमारा ज्ञान बहुधा सन्दिग्ध रहता है। इतिहास को असन्दिग्ध पीठिका पर स्थापित करने के लिये अनेक स्थानों की आवश्यकता होती है। इतिहास निर्माण का यह प्रारम्भिक नियम है कि निश्चित सत्य के रूप में प्रतिपादित करने के पूर्व हमें अपने कथन की पुष्टि विविध साधनों से करनी चाहिए। पुरातत्व के द्वारा यह गुरु कार्य भली-भाँति सम्पादित हुआ है। उसने अनेक प्रचलित धारणाओं का खण्डन-मण्डन किया है।[13]

विमलचन्द पाण्डेय जी ने लिखा है, पतंजलि के महाभाष्य के कतिपय वाक्यों से ऐसा प्रतीत होता था कि पुष्यमित्र शुँग ने कोई यज्ञ किया था। परन्तु एक व्याकरण-ग्रन्थ के एक-दो वाक्यों के आधार पर इतना बड़ा निष्कर्ष निकालने में अनेक विद्वान संकोच कर रहे थे। ऐसी सन्दिग्ध परिस्थिति में पुरातत्व ने उनका शंका-समाधान किया। अयोध्या का अभिलेख मिला और उसने स्पष्ट स्वर में घोषित किया- 'द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य'। इस प्रकार पुरातत्व ने पतंजलि के महाभाष्य के कथन की पुष्टि करते हुए यह कहा कि पुष्यमित्र शुँग ने दो अश्वमेघ यज्ञ किये थे। यह पुरातत्व के समर्थक रूप का महत्व है।[14]

अभिलेख लिखने के अवसर

अभिलेखों के विषय विभिन्न और विविध हैं जिनमें राजवर्णन, वंशवर्णन प्रमुख हैं। इनमें अधिकांश राजाओं की उपलब्धियों का प्रशंसायुक्त वर्णन रहता है और इसीलिए इनको प्रशस्ति भी कहते हैं। उनमें कई में राजाओं के आश्रित या उनसे सम्बन्धित पुरुष तथा राजवंश के क्रम का विस्तृत वर्णन मिलता है। राजाओं, सामन्तों, रानियों, मंत्रियों तथा अनेक धर्मपरायण व्यक्तियों द्वारा बनवाये गये मंदिरों, मठों, बावड़ियों

आदि में लगे हुए लेखों में निर्माणकर्ता के वंश–क्रम तथा राजवंश का वर्णन विस्तार से होता है। कुछ ऐसे भी शिलालेख होते हैं जिनमें राजाज्ञा, विजय यज्ञ, खेतों की सीमा, वीर पुरुषों का चरित्र, सती होना, झगड़ों के समाधान, पंचायत के फैसले आदि घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं।[15]

कई लेख तो एक प्रकार से स्वतः काव्य हैं जिनके द्वारा हमें न केवल ऐतिहासिक घटनाओं का ही बोध होता है वरन् कई अज्ञात किन्तु प्रतिभा–सम्पन्न कवियों की काव्यशैली का बोध होता है। उनके द्वारा हम उस युग के बौद्धिक स्तर का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे शिलालेख व्यक्ति–विशेष की साहित्यिक रुचि के स्मृति चिह्न हो जाते हैं।

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज का रचा हुआ– 'हरिकेलि नाटक', उक्त राजा के राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नाटक और विग्रहराज या किसी दूसरे राजा के समय के बने हुए चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की शिलाओं में से पहली शिला–यह सब अजमेर (ढाई दिन का झोंपड़ा) से प्राप्त हुई है। सेठ लोलाक ने 'उत्तम शिखर पुराण' नामक जैन पुस्तक बीजोलिया के पास एक चट्टान पर वि.सं. 1226 में खुदवाई थी, जो अब तक सुरक्षित है। महाराणा कुंभा ने कीर्तिस्तम्भों के विषय की एक पुस्तक शिलाओं पर खुदवाई थी, जिसकी पहली शिला के प्रारम्भ का अंश चित्तौड़ में मिला है। महाराणा राजसिंह ने तैलंग भट्ट मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ से 'राजप्रशस्ति' नामक 24 सर्ग का महाकाव्य, जिसमें महाराणा राजसिंह तक का मेवाड़ का इतिहास है, तैयार करवाकर अपने बनवाये हुए राजसमुद्र नामक तालाब की पाल पर 25 बड़ी शिलाओं पर खुदवाकर लगवाया था जो अब तक वहाँ विद्यमान हैं।[16]

लगभग सभी शाखाओं के राजपूत राजाओं के या उनके समय के अनेक शिलालेख मिले हैं जो तिथि–क्रम निर्धारित करने तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाश डालने के लिए बड़े उपयोगी हैं। इसी प्रकार साहित्यिक तथा अन्य सामग्रियों को शुद्ध कराने अथवा पूर्ण कराने में इनकी सहायता असामान्य सिद्ध होती है। कई वीरों तथा साहित्यों के स्मारक घटनाचक्र को समझने और युद्धों की तिथियों को निर्धारित करने में लाभप्रद प्रमाणित हुए हैं। इसी प्रकार इन अभिलेखों से राजस्थान तथा सुलतान और मुगल सम्राटों के राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों पर भी प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

(ब) शाहाबाद क्षेत्र के शिलालेख

इस क्षेत्र के प्रायः प्रत्येक ग्राम में अभिलेख मिलते हैं। अधिकांश शिलालेख सतियों और वीरों के स्मारक हैं। इनमें से किसी–किसी पर शासक का नाम भी होता है। इस प्रकार के शिलालेख इतिहास के लिए विशेष महत्व के नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसे शिलालेख भी सैकड़ों पाये जाते हैं जिनसे उस समय की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता हो। सबसे प्राचीन शिलालेख अन्ता के पास बड़वा गाँव में मिले हैं जो विक्रम सम्वत् 295 के मालूम होते हैं।[17] इसके पीछे पाँचवी, छठी, आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों के कुछ महत्वपूर्ण शिलालेख और तदुपरान्त प्रत्येक शताब्दी के सैकड़ों शिलालेख ऐसे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। दूसरी से चौदहवीं शताब्दी तक के लेखों का सम्बन्ध मौखरी, मौर्य, गुप्त, नाग, परमार, मेद आदि राजपूत वंशों से है। पन्द्रहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक के कुछ शिलालेख खींची और गौड़ राजपूतों के भी मिले हैं परन्तु ये विशेष उपयोगी नहीं हैं। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से अब तक के शिलालेखों का सम्बन्ध बूँदी और कोटा के नरेशों से तथा झाला जालिम सिंह से है और यह शिलालेख कोटा राज्य के इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी है।[18]

शाहाबाद के शिलालेख

शाहाबाद मध्य युग का एक महत्वपूर्ण नगर था। यहाँ से प्राप्त शिलालेख स्थानीय शासकों के साथ–साथ मुगल बादशाहों के भी हैं। अधिकांश शिलालेख मंदिरों, छतरियों व पत्थरों की शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। शोध–विषय की दृष्टि से उल्लेखनीय, ये शिलालेख शाहाबाद क्षेत्र की तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति के साथ शासकों की स्थापत्य कला में रुचि को भी प्रदर्शित करते हैं।

राजा जयगम के काल का शिलालेख

राजा जयगम (जगमणि) के काल का एक लेख माघ बदी 13, सोमवार वि.सं. 1678 (28 जनवरी, 1622 ई.) की तिथि का प्राप्त हुआ है। इस लेख में राव छत्रसिंह द्वारा एक नमन (स्मारक) राजा के युवराज के लिये निर्माण कराने का विवरण है। इस युवराज ने अपने मामा रामसाही पंवार के उकसाने पर कुछ अनैतिक कार्य कर डाला था। अन्त में उसे अर्थात्

युवराज को अपने किये पर पश्चाताप् हुआ और उसने आत्महत्या कर डाली।[19]

औरंगजेब के शासनकाल से संबंधित शिलालेख

मुगल बादशाह औरंगजेब के शासनकाल का हिन्दी भाषी शिलालेख प्राप्त हुआ है। यह लेख द्वि-भाषी है। इस लेख की एक भाषा हिन्दी एवं दूसरी भाषा फारसी है और अंकन नसतालीक लिपि में कराया गया है। इस लेख में कस्बे में रहने वाले ब्राह्मणों तथा महाजनों को संबोधित किया गया है। इसमें नूर मोहम्मद का नाम भी अंकित है। इस लेख का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है।[20]

ऐतिहासिक महत्व

उपर्युक्त शिलालेख मुगलकाल के प्रथम हिन्दी शिलालेख व हाड़ौती अंचल का प्रथम द्विभाषी शिलालेख है साथ ही मुगल साम्राज्य की परंपरागत नसतालीक कला शैली का हाड़ौती में प्रथम प्रस्तुतीकरण भी दर्शाता है।

शाहाबाद की जामा मस्जिद का फारसी शिलालेख

बारां से लगभग 75 कि.मी. की दूरी पर पूर्व दिशा में बारां से शिवपुरी की ओर जाने वाले राजमार्ग पर पहाड़ों के मध्य प्राचीन नगर शाहाबाद स्थित है। इस नगर में फारसी भाषा में लिखे हुए कुछ प्रस्तर शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे मध्यकाल में शाहाबाद नगर से मुगलों के सम्बन्ध की जानकारी मिलती है।

जामा मस्जिद शिलालेख (1671-72 ई.)

शाहाबाद के मध्य में स्थित जामा मस्जिद के प्रवेश द्वार के ऊपर एक फारसी भाषा का शिलालेख अंकित है।

मूल पाठ[21]

''ई मस्जिद व अहतमाम दारोगा मकबूल ब अहद आलमगीर औरंगजेब तामीर याफ्त।''

अनुवाद

इस मस्जिद का निर्माण कार्य दरोगा मकबूल के निरीक्षण में बादशाह औरंगजेब आलमगीर के द्वारा कराया गया।

ऐतिहासिक महत्व

यह शिलालेख औरंगजेब के शासन काल का है इसका निर्माण हिजरी सन् 1082 (1671-72 ई.) है। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि शाहाबाद दिल्ली शासन के अन्तर्गत आता था।

नाहरगढ़ दुर्ग का फारसी शिलालेख

बारां जिले की किशनगंज तहसील में नाहरगढ़ नामक एक छोटा सा कस्बा स्थित है। इस स्थान पर मुस्लिम शासक द्वारा निर्मित शानदार दुर्ग विद्यमान है। यह दुर्ग दिल्ली के लाल किले के परकोटे की नकल है। दुर्ग के प्रवेश द्वार के ऊपर दीवाल के प्लास्टर में एक फारसी भाषा का लेख प्राप्त हुआ है।

अनुवाद

इस दुर्ग का निर्माण कुतुबुद्दीन ने 20 जमादी उस्मानी, 1090 हिजरी (1678 ई.) में कराया। ज्ञातव्य है कि कुतुबुद्दीन नाहर सिंह राठौड़ का पुत्र था तथा किशनगंज कस्बे का स्वामी था। बाद में इसने इस्लाम ग्रहण कर लिया था।[22]

ऐतिहासिक महत्व

इस लेख से यह ज्ञात होता है कि नाहरगढ़ का शासक कोटा राज्य से पृथक हो गया और मुस्लिम धर्म स्वीकार कर अपने को मुगल सत्ता का मनसबदार घोषित कर दिया तथा उसने स्वतन्त्र रूप से शासन करना प्रारम्भ कर दिया।[23]

शाहाबाद दुर्ग का लेख

शाहाबाद दुर्ग से प्राप्त एक अभिलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वर्तमान में यह पुलिस उप अधीक्षक आवास, शाहाबाद में एक चबूतरे पर स्थापित कर दिया गया है। इस अभिलेख में 17 पंक्तियाँ लिपिबद्ध है। अभिलेख का प्रारम्भिक भाग लगभग अपठनीय है किंतु इसका लगभग अन्तिम भाग पठनीय है, जो निम्नवत् है-

''1250 श्री मुख..... संवत्सरो माद्यमासो गुरु दिवसे एकादशी... तिथि।।

..... विरूदावली विराजमानेन रतन गिरि दुर्गे विनिर्मते धधेड़े वंश का उपगोत्रे।

श्रीमत् धंधल देव राजराजश्रीः सहजनदेवेम्। महा रूंडायाः कुल देवी

..... महिदावौड ग्रामे स्थापना कृता।। शुभम।। लिखिता... कृत् पंडित कीर्तिवरेण।।''

पठनीय अभिलेख का अनुवाद[24] निम्न प्रकार है-

''1250 श्री मुख संवत्सर में एकादशी गुरुवार के दिन रत्नगिरि दुर्ग में विराजमान धंधेड उपगोत्र के श्रीमान् महाशक्तिशाली राजराज धंधलदेव के पुत्र श्री सहजनदेव द्वारा महारूण्डा (चामुण्डा) कुल देवी की महिदावौड ग्राम

में स्थापना करायी गई। कल्याण हो। इस लेख को पण्डित कीर्तिवर द्वारा लिखा गया।''

ऐतिहासिक महत्व

इस प्रकार उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि शाहाबाद दुर्ग का प्राचीन नाम रत्नगिरि दुर्ग था और धंधेड उपगौत्र के श्री सहजनदेव द्वारा महारूण्डा (चामुण्डा) देवी की स्थापना करायी गयी जो उनकी कुलदेवी थी। दुर्ग की बस्ती का नाम महिदावौड ग्राम रहा होगा, अथवा इस ग्राम से सम्बद्ध रहा होगा। दुर्ग की स्थापना 1250 श्री मुख संवत्सर में की गयी थी।

शाहाबाद का लेख (1679 ई.)

यह लेख प्रारम्भ में कोतवाली के निकटस्थ एक चबूतरे में मिला जिसे तहसील के दफ्तर में सुरक्षित कर दिया गया। यह लेख द्विभाषी है और खण्डित अवस्था में है।[25] इसमें वर्णित है कि कस्बे के महाजन, व्यापारी और ब्राह्मणों ने शाही दरबार में उपस्थित होकर यह फरियाद की थी कि उनसे अपनी अचल सम्पत्ति पर सायर (कर) की वसूली की जा रही है। इस अभ्यर्थना पर औरंगजेब ने यह तगदीर जारी की, कि इस प्रकार का सायर लेना अनुचित है अतएव वह उनसे न लिया जाये।[26]

इस हुक्म के तहत जागीरदार रंधुल्लाखाँ ने मुत्सद्दियों को यह आदेश दिया कि वे इस प्रकार की सायर वसूल न करें। इसका फल यह हुआ कि आधी रकम, जकात, बँटाई, खूत-तलाई, कोतवाली आदि से वसूल की गई और आधी रकम देने वाले की मर्जी पर छोड़ दिया गया जिसे वे या तो न दें या जमा करावें। परन्तु पैदाइश, विवाह आदि पर लिये जाने वाले करों को माफ कर दिया गया। अन्त में उन लोगों को (हिन्दू एवं मुसलमान) राम तथा अल्लाह के श्राप का भाजन बतलाया गया जो इसकी तामील नहीं करेंगे। यह लेख स्थानीय करों की व्यवस्था पर तथा मुगलों की समयोचित नीति पर प्रकाश डालता है।[27]

रामगढ़ के लघु शिलालेख

बारां जिले में स्थित शाहाबाद से लगभग 55 कि.मी. की दूरी पर रामगढ़ नामक एक प्राचीन कस्बा स्थित है। प्राचीन समय में इसका नाम ''श्रीनगर'' था। रामगढ़ के निकट स्थित जंगल में एक प्राचीन शिव-मंदिर 'भण्डदेवरा' नामक स्थित है जो ईसा की दसवीं शताब्दी की निर्माण रचना है। वर्तमान में यह मंदिर जर्जर अवस्था में है, परन्तु पहाड़ी से घिरे हुए जंगल के बीच भण्डदेवरा नामक यह शैवमंदिर जीर्णावस्था में अब तक खड़ा है उससे पता चलता है कि श्रीनगर दशवीं शताब्दी के आसपास एक समृद्ध नगर होगा।[28]

भण्डदेवरा नामक इस मंदिर में कुछ लेख पाये गये है-।

राजा मलयवर्मा का शिलालेख (10वीं शताब्दी ई.)

भण्डदेवरा नामक मंदिर से एक संस्कृत भाषा का खंडित शिलालेख प्राप्त हुआ है। वर्तमान में यह शिलालेख कोटा के राजकीय पुरातत्व संग्रहालय में संग्रहित है। लेखन-शिल्प की दृष्टि से यह लेख ईसा की लगभग 10वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। इस लेख में वर्णित है कि राजा मलयवर्मा ने किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में अपने इष्ट महादेव के इस मंदिर का निर्माण करवाया।

मूल पाठ [29]

''..... श्रीमलय देव वर्मण.....
विजयोल्लास-विनभ्रस्य सहस्त्रा वधि परास्त.....
भक्ति, कीर्ति मूर्तिः।''

राजा त्रिशास वर्मा का शिलालेख (1162 ई.)

भण्डदेवरा के शिव-मंदिर के पीछे की ओर स्थित एक स्तम्भ पर राजा त्रिशास वर्मा का वि.सं. 1219 (1162 ई.) का लेख अंकित है। यह लेख इस मंदिर के जीर्णोद्धार से संबंधित है।

मूल पाठ[30]

'' संवत 1219 ..... त्रिशास वर्मा .....
मेड़वंशीय ..... महाराज श्रीमती सिंहस्य।''

परमार राजा भोज का शिलालेख (12वीं शताब्दी ई.)

भण्डदेवरा शिव-मंदिर से एक अन्य खंडित एवं अपूर्ण लघु लेख प्राप्त हुआ है। यह लेख मालवा के परमार राजा भोज के कार्यकाल से सम्बन्धित है, जिसकी भाषा संस्कृत है। यह लेख 21 पंक्तियों का है तथा वर्तमान में कोटा के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित है। लेख के प्रारम्भ में महालक्ष्मी की स्तुति की गई है। 15वीं पंक्ति में परमार नाम, 16वीं पंक्ति में भोज का नाम, तथा 21वीं पंक्ति में वि. सं. ..... (अपाठ्य) अंकित है। लेखन-शिल्प की दृष्टि से विद्वानों का अनुमान है कि यह लेख ईसा की लगभग 12वीं शताब्दी का होना चाहिए।[31]

भण्डदेवरा मंदिर की मूर्ति का लेख (1175 ई.)

भण्डदेवरा शिव–मंदिर में स्थित यम की मूर्ति के चरणों पर इसकी प्रतिष्ठा की तिथि अंकित है। यह तिथि संवत् 1232 (1175 ई.) स्पष्ट ही दिखलाई पड़ती है।

पाद टिप्पणी

1. *गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत (पुरातत्व भाग–1), पृ. 41*
2. *कार्पस इन्सक्रप्शन इन्डीकेरम–जिल्द–1, पृ. 31–32 और परिशिष्ट संख्या 6*
3. *एस.आर. खान – हाड़ौती के बोलते शिलालेख 1998, पृ. 266*
4. *एनुअल रिपोर्ट, इण्डिया एपिग्राफिक 1962–63, पृ. 147*
5. *वही, पृ. 42*
6. *एस.आर. खान – हाड़ौती के बोलते शिलालेख 1998, पृ. 329*
7. *गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत (पुरातत्व भाग–1), पृ. 230*
8. *श्रीकृष्ण ओझा – भारतीय पुरातत्व, पृ. 25*
9. *शिवस्वरूप सहाय–भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, 2006, पृ. 40*
10. *वही, पृ. 41*
11. *वही, पृ. 41*
12. *विमल चन्द्र पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–1, पृ. 18*
13. *वही, पृ. 18*
14. *वही, पृ. 18*
15. *गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत (पुरातत्व भाग–1), पृ. 41*
16. *वही, पृ. 42*
17. *जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, 2008, पृ. 3*
18. *वही, पृ. 3*
19. *एनुअल रिपोर्ट, इण्डिया एपिग्राफिक 1962–63, पृ. 42*
20. *वही, पृ. 42*
21. *एस.आर. खान – हाड़ौती के बोलते शिलालेख 1998, पृ. 329*
22. *वही, पृ. 331*
23. *वही, पृ. 331*
24. *यह अनुवाद श्रीमान भूपेन्द्र भार्गव, व्याख्याता संस्कृत, अ.रा.ब.जै. विश्वभारती स्नातकोत्तर महाविद्यालय छबड़ा ने मेरे लिए किया।*
25. *गोपीनाथ शर्मा –राजस्थान के इतिहस के स्त्रोत, पुरातत्व भाग–1, पृ. 230*
26. *वही, पृ. 230, एच.सी. जैन एवं नारायण माली– राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लोपीडिया, जनवरी 2012, पृ. 27–28*
27. *गोपीनाथ शर्मा –राजस्थान के इतिहस के स्त्रोत, पुरातत्व भाग–1, पृ. 230*
28. *जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, 2008, पृ. 19*
29. *कार्पस इन्सक्रप्शन इन्डीकेरम–जिल्द–1, पृ. 31–32 और परिशिष्ट संख्या 6*
30. *वही, पृ. 31–32 और परिशिष्ट संख्या 6*
31. *एनुअल रिपोर्ट, इण्डिया एपिग्राफिक 1962–63, पृ. 147*

ब्रिटिशकालीन मारवाड़ में किसानों से लिए जाने वाले लगान व लाग–बाग तथा जागीरदारों द्वारा किसानों का शोषण

कुलदीप चौधरी
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजपूत रियासतों में शासक भूमि का वास्तविक मालिक होता था। राजपूत शासक अपनी जाति के प्रमुख की हैसियत से बहुत से रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों को सामंत बनाकर जागीर प्रदान करता था। इस प्रकार मारवाड़ की आधी से ज्यादा जमीनें जागीरदारों के कब्जे में चली गई थी। खालसा भूमि पर शासक का सीधा नियन्त्रण होता था। इस प्रकार मारवाड़ राज्य की भूमि खालसा और जागीर नामक दो श्रेणियों में बाँटी हुई थी। मारवाड़ के खालसा क्षेत्रों की तुलना में जागीरी क्षेत्रों में रहने वाले किसानों की हालत अत्यन्त ही दुःखद और दयनीय थी। इसका प्रमुख कारण जागीरदारों द्वारा किसानों पर लागू किया गया भारी लगान और साथ में उनसे लिए जाने वाले गैरकानूनी लाग–बाग व बेगार और ऊपर से जागीरदारों के जुल्म, सितम, शोषणकारी, तानाशाही प्रवृति थी। इसी के परिणामस्वरूप मारवाड़ में किसान आन्दोलन की शुरुआत सर्वप्रथम जागीर क्षेत्रों में हुई थी।

संकेताक्षर : *खालसा, जागीर, ठाकुर (जागीरदार), लगान (भू–राजस्व), लाग–बाग, किसान, बेगार, शोषण।*

मारवाड़ में राज्य का शासक प्रदेश का वास्तविक मालिक होता था। ठाकुर (जागीरदार) राजा के सहयोगी होते थे। जागीरदार जागीरी क्षेत्रों से प्रशासन, लगान वसूली, राज्य के लिए सैनिक सहायता से सम्बन्धित कार्य करते थे। मारवाड़ राज्य की भूमि को दो श्रेणियों में बाँटा गया– एक खालसा और दूसरी जागीर। मारवाड़ राज्य का कुल क्षेत्रफल 36 हजार 21 वर्ग मील और उसकी तत्कालीन जनसंख्या लगभग बाईस लाख थी। रियासत की कुल भूमि का 17 प्रतिशत खालसा तथा शेष 83 प्रतिशत भाग जागीरदारी क्षेत्र में आता था। मारवाड़ की कुल 1400 जागीरों में से 400 अशासनिक जागीरें यानि धार्मिक जागीरें थी जिनसे राज्य को कोई आय नहीं होती। शेष 1000 में से 48 जागीरें प्रमुख थीं जिन्हें अधिकार थे जबकि 952 जागीरदार सर्वथा अधिकार विहीन थे जो रेख–चाकरी के नाम से राजा को नाममात्र की राशि देते थे। लेकिन यह जागीरदार किसानों से मनमाना लगान वसूलते तथा अनेक लाग–बाग लेते तथा उनसे बेगार करवाते व शोषण करते थे।[1]

खालसा भूमि : इस भूमि पर शासक का सीधा नियन्त्रण होता था। इसके तीन प्रकार थे–बापीः वह जमीन जिनके पूर्वजों को पीढियों से उसे जोतने के अधिकार थे और जोतने वाला 'बापीदार' कहलाता था। उसे जमीन पर कब्जे का अधिकार होता था और वह दूसरों की तुलना में कम दर पर राजस्व देता था। गैर–बापीः गैर बापी जमीन राजा की इच्छानुसार दी जाती थी। इसको जोतने वाले को पैतृक अधिकार प्राप्त नहीं होते थे। ऐसे काश्तकार गैर बापीदार कहलाते थे। ऐसी जमीनें राज्य को निश्चित भू राजस्व देकर साल दर साल खेती के लिए ली जा सकती थी। भूमि कर भी उन्हें बापीदारों की अपेक्षा 20/25 प्रतिशत अधिक देना पड़ता था। माफीः वह भूमि जो रानियों और शासक के निकट सम्बन्धियों को उनके जीवन–निर्वाह के लिए प्रदान की जाती थी और ब्राह्मणों, चारणों, भाटों, संन्यासियों या धार्मिक संस्थाओं को दान में दी जाती थी, माफी कहलाती थी। माफीदारों की भूमि पूर्णतया भूमिकर से मुक्त होती थी। गाँव की पड़त भूमि पर भी राजा का ही अधिकार होता था। उसका उपयोग करने पर राजा को निर्धारित कर चुकाना पड़ता था। राज्य व चौधरी को स्वीकृति के पश्चात् ही पड़त भूमि का उपयोग किया जा सकता था। ऐसी भूमि पर गाँव का चौधरी राजा के हितों की देखभाल करता था।[2]

जागीर भूमिः जो भूमि किसी जागीरदार या ठाकुर के अधीन होती थी, उसे 'जागीर' या 'ठिकाना' कहते थे। जागीरदार उस भूमि को न तो बेच सकता था और न किसी अन्य के नाम हस्तान्तरित कर सकता था। लेकिन कुछ हिस्सा शासक की अनुमति से गिरवी रख सकता था। बड़े जागीरदार 'ठाकुर' कहलाते थे। जागीरदार को अपने जागीर के आन्तरिक मामलों में सर्वेसर्वा होने के कारण एकछत्र कार्यकारी, प्रशासनिक और न्यायिक अधिकार प्राप्त होते थे। जागीर क्षेत्र का सम्पूर्ण कर वे अपने खजाने में जमा करते थे। ठाकुर अपनी जागीर पर वंशानुगत अधिकारों का प्रयोग करता था तथा उसे वह अपनी निजी सम्पत्ति मानता था। स्वयं को राज्य का बराबर भागीदार मानता था तथा अपने क्षेत्र में वस्तुतः शासक का प्रतिरूप होता था। उसे अपने क्षेत्र में भू–राजस्व वसूल करने तथा उसकी दर निर्धारण की पूरी स्वतंत्रता होती थी। अपने द्वारा किए गए अपराध के लिए भी वह किसी भी अदालत में उपस्थित नहीं होता था। अपराधों के लिए उन्हें सामान्यतः शासक की ओर से दण्ड न मिलकर सिर्फ चेतावनी मिलती थी।

जागीर में प्रशासन को चलाने के लिए अनेक कर्मचारियों की नियुक्ति होती थी। 'कामदार' उस ठिकाने के राजस्व और सामान्य प्रशासन को देखता था। वह विभिन्न प्रकार के शुल्क एवं भू–राजस्व वसूल करता और जमा खर्च का हिसाब रखता। वह ठिकाने के छोटे नौकरों पर निगरानी रखता था तथा रेख, तलवार–बंधाई, न्यौता, नजराना आदि की अदायगी में रियासत के हुक्मरानों से सम्पर्क रखता था। 'पोतेदार' खजाने की देखभाल करता था। 'कोठारी' भंडार का इंचार्ज होता था। तफेदार बटाई के समय उपज में जागीरदार के हिस्से का हिसाब रखता था और तोलावटी उपज का माप तौल करता था।हर बड़े ठिकाने में ठाकुर की ओर से राज्य की राजधानी में एक 'वकील' होता था जो राज्य और ठिकाने के बीच सम्बन्ध बनाये रखता था। ठिकाने में 'फौजदार' सैनिक और पुलिस अफसर होता था । उसका मुख्य कार्य ठिकाने की सुरक्षा व शान्ति बनाये रखना होता था।[3]

गाँव जागीर के प्रशासन की सबसे छोटी इकाई होती थी गाँव में मुख्या चौधरी कहलाता था। चौधरी को सुविधाएँ और छूट मिलती थी, जिनमें बिना लगान भूमि, लगान वसूली में पचोतरा (5 प्रतिशत) व मलबा नाम का कर वसूल करने का अधिकार थे। बदले में चौधरी पटवारी के लगान वसूली के कार्य में मदद करता। कणवारिया या सहणा का कार्य लटाई या बटाई के पहले खड़ी फसल की चौकसी करना था ताकि किसान लटाई से पहले अनाज अपने घर न ले जा सके। गाँव – भांभी जागीरदार के हरकारे का काम करता था मीणे, भावरी और भील गाँव के चौकीदार की तरह काम करते थे। इन सेवाओं के बदले में कणवारिया, गाँव–भांभी, मीणा, भावरी और भीलों को अनाज लटाई के समय उपज में से कुछ हिस्सा दिया जाता था।[4]

लगान (भू–राजस्व)ः मारवाड़ में भूमि बंदोबस्त से पहले लगान अधिकांशतः उपज (अनाज) के रूप में वसूल किया जाता था और उपज में शासक या जागीरदार के हिस्से को वसूल करने के कई तरीके थे। भू–राजस्व निर्धारण के प्रमुख प्रकार– लाटा या बंटाई, कूंता, कांकड़ कूंता, मुकाता, डोरी, गूगरी या बीज–गूगरी, इजारा, बिगोड़ी आदि।

लाटा या बंटाई प्रणाली : लाटा या बंटाई पद्धति सबसे अधिक प्रचलित और काश्तकारों में सबसे अधिक लोकप्रिय प्रणाली थी। इसके अन्तर्गत सारे काश्तकारों की उपज को गाँव के पास इकट्ठा कर लिया जाता था। अनाज को भूसे से अलग करने के बाद उसे तोला अथवा मापा जाता था और किसान और दूसरी राज्य के अधिकारियों या जागीरदार के बीच बाँट दिया जाता था जो सामान्यत : उपज का आधा – आधा भाग होता था। इस व्यवस्था में पैदावार के हिसाब से लगान देना पड़ता था।

कूंता प्रणाली : इस प्रणाली में कुल पैदावार का स्थूल अनुमान लगाकर भूमिकर वसूल कर लिया जाता था। लगान वसूल करने का यह सबसे अलोकप्रिय तरीका था, जिसके खिलाफ प्रायः किसानों की शिकायत बनी रहती थी।

कांकड़–कूंता प्रणाली : इस प्रणाली में पैदावार खलिहान में आने से पहले ही खेत में खड़ी फसल का स्थूल अनुमान लगा लिया जाता था और उसी अनुमान के आधार पर भूमि कर वसूला जाता था। इस तरीके के खिलाफ भी किसानों में बहुत रोष बना रहता था।

डोरी : इसमें डोरी से नापे हुए प्रति बीघा पर एक निश्चित दर से नकद या जिन्स के रूप में लगान देना पड़ता था।

गूगरी : प्रति कुओं या प्रति खेत एक निश्चित मात्रा वसूल किया जाना गूगरी लगान कहलाता था। यदि जितना बीज किसान ने खेत में बोया, उतना ही जागीरदार द्वारा राजस्व वसूल करने पर वह बीज–गूगरी

कहलाता था।

मुकाता : किसान से एक निश्चित दर से प्रति खेत लगान नकद वसूल किया जाता था। इसमें अलग–अलग फसल पर लगाान की अलग–अलग दर होती थी। कभी–कभी पूरी पैदावार भी एक निश्चित रकम पर मुकातेदार को दे दी जाती थी।

इजारा : एक निश्चित अवधि के लिए एक निश्चित रकम के बदले में पूरे गाँव के लगान की वसूली किसी को प्रदान करने की प्रथा को इजारेदारी या ठेकेदारी प्रणाली कहा जाता था। सामान्यतया इजारा उस व्यक्ति को दिया जाता था जो अधिक से अधिक रुपयों की बोली बोलता था। इस व्यवस्था में कुछ निर्धारित रकम अग्रिम जमा करानी होती थी और बाकी वर्ष के अन्त में पूरा हिसाब चुकाना पड़ता था। कहीं – कहीं पर इस व्यवस्था में प्रति बीघा एक निश्चित रकम भी किसानों से वसूल की जाती थी।[5]

बिगोड़ी : मारवाड़ में भूमि–बंदोबस्त लागू हो जाने के बाद खालसा क्षेत्रों में बिगोड़ी व्यवस्था लागू कर दी गई थी जिसके अन्तर्गत नाप कर प्रति बीघा भू–राजस्व नकद में तय कर दिया गया था। चूँकि जागीरों में कोई लेण्ड सेटलमेंट नहीं किया गया था, इसलिए प्रत्येक राज्य के जागीरी क्षेत्रों में कोई एक जैसी प्रणाली प्रचलित नहीं थी। जागीरों में लगान निश्चित नहीं था। अत : जागीरदार अपनी मर्जी से लगान वसूल करते थे। मोटे तौर पर उपज का 1/3 से 2/3 तक अनाज लगान के रूप में अलग–अलग जागीरों में वसूल किया जाता था जो लगभग पूरी तरह जिन्स के रूप में ही वसूल किया जाता था। इस प्रकार किसान के पास बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर ही बचता था।[6]

आय के स्रोतः खालसा और जागीरी क्षेत्रों में लगान (भूराजस्व) ही आय का मुख्य स्रोत था। यह दो मदों के अन्तर्गत आता था । जैसे हासल (लगान), प्राकृतिक उपज जैसे पाला, लूंग, पूण्णी पर लगाया गया कर, जो जानवरों को खिलाने के काम आता था और शुल्क। बाद में शासकों ने जमीन को जो सबसे ऊँची बोली बोलते थे, उन्हें इजारे (ठेके) पर देना शुरू कर दिया। कुछ राज्य और बड़े ठिकाने 'घासमारी' शुल्क वसूल करते थे जो मवेशियों की चराई का शुल्क होता था। जमीन से प्राप्त आय के अलावा शासक और जागीरदार अन्य स्रोतों जैसे जंगलों, जुर्मानों, नजराना या भेंट, उत्पाद शुल्क और राहदारी जैसे शुल्कों से भी अच्छी आय प्राप्त कर लेते थे।[7] खालसा और जागीरी क्षेत्रों में उपरोक्त कर और शुल्क अधिकांशतः समान होते थे, परन्तु कुछ कर लाग–बाग और बेगार के रूप में जबरन वसूल किए जाते थे। जिसका वर्णन इस प्रकार हैः–

लाग–बागः राजा और जागीरदार दोनों ही अपनी आय को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के अन्य अनेक कर लाग–बाग और बेगार के रूप में वसूल करते थे। नाई, भांभी, धोबी और कुम्हार समेत अन्य निम्न वर्ग की जातियों पर बेगार (बिना कीमत दिए जबरन मजदूरी कराना) का भारी बोझ था। जागीरदार वर्ग का प्रत्येक कार्य बेगार में किया जाता था। इसी प्रकार शासक या जागीरदार के परिवार में खुशी के मौकों जैसे शादी या फिर गमी (मृत्यु) की रस्म के वक्त, उत्तराधिकारी की नियुक्ति पर या स्वयं किसान के परिवार में शादी के अवसर पर विभिन्न प्रकार के कर लाग के रूप में लगाये जाते थे। लाग–बाग मुख्यतः दो श्रेणियों में विभक्त थी – एक मुस्तकिल लागें : इनकी रकम निश्चित होती थी। दूसरी गैर मुस्तकिल लागेंः इनकी रकम निश्चित नहीं होती थी।[8]

मारवाड़ राज्य या जागीर में इन लागों के लगाने के बारे में कोई निश्चित नियम नहीं थे। सभी गाँवों में ये लागें एक समान नहीं थी। जैसे मारवाड़ रियासत के जालौर परगने में 222 प्रकार की विविध लागें प्रचलित थी, तो मेड़ता परगने में 81 प्रकार की और पाली परगने में 93 प्रकार की लागें प्रचलित थी । जागीरदार के जब मन में आता था , तभी वह नई लाग लगा देता था क्योंकि इनके लगाने की कोई सीमा नहीं थी।[9] ये लागें कुछ नकद में तो कुछ जिन्स में वसूल की जाती थी। खालसा भूमि में भूमि बंदोबस्त के बाद अधिकाँश लाग–बागों को समाप्त कर उन्हें बढ़े हुए भूमि–कर में मिला दिया गया, जबकि जागीरी क्षेत्र में लाग–बागों का लिया जाना यथावत् रूप से बना रहा और धीरे–धीरे ये लागें किसानों के शोषण का आधार बन गई और यह सामान्य विचार बन गया कि ये लागें अन्याय तथा शोषण की द्योतक थी।

1936ई. में मारवाड़ सरकार ने खालसा और जागीरी इलाकों में 119 लागे समाप्त कर दी थी किन्तु जब 1941 ई. में मारवाड़ की सरकार ने मारवाड़ के जागीरी क्षेत्रों में गैर–कानूनी लाग–बागों का पता लगाने के लिए एक जाँच कमेटी का गठन किया तो मारवाड़ किसान सभा ने जोधपुर के मुख्यमंत्री को 136 गैर–कानूनी लाग–बागों की सूची पेश की थी जिससे ज्ञात होता है कि किसान की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं थी जिस पर लाग (कर) लागू नहीं थी। 1948 ई.

में जब जोधपुर सरकार ने बिलाड़ा परगने में लगान निर्धारित किया तो 52 लागें लगान में शामिल की गई। 81 लागें बिल्कुल माफ कर दी गई और 9 लागें मलबा (गांवाई फण्ड) में शामिल की गई। जो यह दर्शाता है कि 1948 ई. में बिलाड़ा परगने में विभिन्न प्रकार की 142 लागें किसानों से वसूल की जाती थी।[10]

इन लागों को देखने से पता चलता है कि किसान की प्रत्येक चीज पर लाग थी। जैसे किसान द्वारा अपनी बच्ची की शादी करने पर 'चंवरी' लाग, मृत्यु-भोज करने पर 'कांसा' लाग, घर से अलग होकर नया घर बसाने पर 'धुआं' लाग, लड़का बड़ा होने पर 'आंगा' लाग, बैलों की जोड़ी पर 'हल' लाग, भैंस पर 'पांकड़ा' लाग, बकरी व भेड़ पर 'पान चराई' लाग, जानवर बाँधने पर 'खूटा' लाग, औरत के मरने पर दूसरी औरत लाने पर 'नाता' लाग, मवेशियों के चराने पर 'घासमारी' लाग आदि आदि। यानी किसान के परिवार के सदस्य, पशु व उसको कोई भी वस्तु लाग से मुक्त नहीं थी ये लागें भी ठिकानेदार वैसी ही निर्दयता और पाबंदी से वसूल करते थे जैसे कि लगान। ज्यों-ज्यों ठिकाने छोटे होते गये और उधर जागीरदारों में विलासिता और वैभव तथा प्रदर्शन की भावना व ठाठ-बाट से रहने की प्रवृत्ति बढ़ती गई, वैसे -वैसे लागों की संख्या भी बढ़ती गई और दिन-प्रतिदिन नई-नई लागें किसानों पर लगाई जाती रही।[11]

भेंट और नजरानाः लागों के अलावा भेंट और थी जो दशहरा, होली आदि अवसरों पर लोगों से वसूल की जाती थी। इसके अन्तर्गत जब भी किसी कारणवश किसान ठाकुर के पास जाता था या ठाकुर किसी गाँव में जाता तो किसानों को उसे 'भेंट' देनी पड़ती थी। ठिकानेदार जब जोतने के लिए जमीन देते तो किसान से 'नजराना' लेते थे। इसी प्रकार किसान को ठिकानेदार के जन्म से मरने तक प्रत्येक कृत्य पर कर देना पड़ता था और अपने यहाँ प्रत्येक शुभ अवसर पर ठिकानेदार को भेंट देनी होती थी।[12]

बेगारः बेगार प्रथा मारवाड़ में भी प्रचलित थी। श्रमिकों, कारीगरों, दस्तकारों एवं किसानों को राजाओं, अधिकारियों और जागीरदारों के लिए, किसी भी समय बेगार करने के लिए बाध्य किया जा सकता था। यहाँ तक कि युवा और वृद्ध औरतें, विवाहित अथवा विधवाओं को भी इससे छूट नहीं थी। यदि कोई आदमी बेकार करने से असमर्थता प्रकट करता तो उसे सरेआम बेइज्जत करना, जूते से पिटवाकर बन्द कर देना , मुर्गा बनाकर धूप में खड़ा करना, हाथ-पैर बाँधकर पटक देना आदि सजाएँ देना मामूली बात थी। केवल राजपूतों और ब्राह्मणों को बेगार से छूट थी।[13]

शासकों, जागीरदारों और अधिकारियों को मिट्टी के बर्तन मुफ्त में देना और मुफ्त ही पानी भरना कुम्हारों का कार्य था। इसी तरह से नाई और धोबी भी अपनी सेवाएँ मुफ्त में देते थे। उनकी स्त्रियों को रनिवासों में मुफ्त में सेवाएँ देनी पड़ती थी। माली सभी प्रकार की सब्जियाँ और फल-फूल मुफ्त में पहुँचाते थे। दर्जी शासकों और ठाकुरों के मर्दाने और जनाने कपड़े मुफ्त में सी कर देते थे। सरगरे और भांबी खेतों से घोड़ों और दूसरे मवेशियों के लिए मुफ्त में घास और जंगल से ईंधन की लकड़ी जागीरदारों के लिए लाते थे। भील लोग ठिकानेदारों और दूसरे अधिकारियों का भारी सामान एक जगह से दूसरी जगह मुफ्त में ले जाते थे। लेकिन बेगार का सबसे ज्यादा बोझ किसानों पर पड़ता था। उन्हें राज्य और ठिकाने के घोड़ों के लिए हरी घास और जौ मुफ्त में देने पड़ते थे। शाही परिवार में शादी या गमी के अवसर पर दूध-दही और घी मुफ्त में पहुंचाना पड़ता था। शासक या जागीरदार द्वारा यात्रा करने पर किसानों को मुफ्त में बैलगाड़ी या ऊँट उपलब्ध कराना पड़ता था। इन्हें ठाकुर की फसल भी बिना किसी मजदूरी के बोनी और काटनी पड़ती थी। जब राज्य या ठिकाने के अधिकारी लाटा लाटने गाँवों में जाते थे तो उनके ठहरने और खाने-पीने का प्रबन्ध भी किसानों को मुफ्त में करना पड़ता था। यहाँ तक कि किसानों की महिलाओं को भी गढ़ को लीपने, पोतने, जागीरदार के घर के लिए आटा पीसने व गमी के समय गढ़ में रोने के लिए जाना पड़ता था। वायसराय या बड़ा अंग्रेज अधिकारी आने पर बड़ी संख्या में श्रमिकों को बेगार में पकड़ लिया जाता था। वास्तव में, सभी ग्रामीणों को मालूम था कि उन्हें बिना किसी मजदूरी या इनाम के काम करना है। सरकार व ठिकानों का प्रत्येक कार्य बेगार में होता था और जिसका कोई मूल्य नहीं दिया जाता था। इसमें सबसे ज्यादा बेगार में किसान वर्ग को पिसना पड़ता था।[14]

लाग-बाग तथा बेगार से इंकार करना बहुत बड़ा अपराध था और लगान देने में असमर्थता प्रकट करना अक्षम्य अपराध माना जाता था। कोर्ट मार्शल की तरह इन अपराधों की सजा आनन-फानन में दे दी जाती थी उनके बारे में कोई सुनवाई न होती थी और उनके विरुद्ध दलील-वकील व अपील का कोई काम न था इन सजाओं की भी कोई सीमा नहीं थी, कोई कानून न

था, कोई व्यवस्था न थी और कोई विधान न था। किसान को बुलाकर पिटवाना, सिर पर भारी पत्थर रखकर धूप में खड़ा करना, कोटड़ियों में बन्द कर भूखे–प्यासे रखना, नंगा करके पीटना, खड़ी खेती कटवा लेना, बंधे हुए पशु खुलवा कर नीलाम कर देना, घर गृहस्थी के बर्तन व अन्य सामान हड़प लेना और किसान की मुश्के कसवा देना आदि दण्ड सामान्य थे। किसान की ढाणी उजाड़ देना और उसे पीटकर भूमि से बेदखल कर देना भी कोई बड़ी बात नहीं थी।[15]

मारवाड़ के जागीरदारों द्वारा किसानों का शोषणः राजपूत शासक अपनी जाति के प्रमुख की हैसियत से बहुत से रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों को सामंत बनाकर जागीर प्रदान करता था। इस प्रकार मारवाड़ की आधी से ज्यादा जमीनें जागीरदारों के कब्जे में चली गई थी। ये जागीरदार न्यायालय में उपस्थित होने से मुक्त थे और शासकों से अनुमति लिए बिना उनके खिलाफ मुकदमा दर्ज नहीं कराया जा सकता था। राज्य, वास्तव में शासक का नहीं था अपितु उसके पूरे वंश या समुदाय का होता था। यद्यपि ये सामंत अपने स्वामी को सम्मान और स्वीकृति देने को बाध्य थे तथापि वे स्वयं को उन सब चीजों विशेषकर जागीर का सच्चा उत्तराधिकारी मानते थे जो उनके अधिकार में थी।[16]

शासक सैनिक तथा दूसरी सेवाओं के बदले में सामंतों को जागीर देता था। यद्यपि ये जागीरदार अपनी जागीर के अन्दर पूरे अधिकारों का प्रयोग करते थे तथापि अंग्रेज शासनकाल में परिवर्तित राजनैतिक वातावरण के कारण शासकों के प्रति उनकी कुछ जिम्मेदारियाँ और कर्तव्य भी बढ़ गए थे। जब मारवाड़ के शासकों को पहले मुगलों से और बाद में अंग्रेज शासकों से सुरक्षा मिली तो उन्होंने रेख, हुक्मनामा, नजराना आदि कर जागीरदारों पर लगा दिये। अपनी जागीर की सालाना आमदानी पर 8 फीसदी की दर से जागीरदार को 'रेख' नामक कर अपने शासक को देना पड़ता था और 'चाकरी' (सेवा) के रूप में घुड़सवार, ऊँट सवार और पैदल सिपाही देने होते थे। 1818 ई. में मारवाड़ के भाासक ने ब्रिटिश अधीनता स्वीकार कर अपनी सुरक्षा को अंग्रेजों के हाथों में सौंप दी। इसके कारण जागीरदारों द्वारा राजाओं को सैनिक व्यवस्था देने सम्बन्धित परम्परागत अधिकार छीन गए।[17]

मारवाड़ में जब ठाकुर मर जाता था तो उसके उत्तराधिकारी को 'हुक्मनामा' नामक कर शासक को देना होता था। यह कर उसकी जागीर की सालाना आमदानी का 3/4 भाग के बराबर होता था। यह कर या तो नकद में दिया जा सकता था या फिर वह उत्तराधिकारी एक साल के लिए अपनी जागीर खालसा में हुक्मनामा फीस वसूल करने के लिए दे देता था। परम्परा के अनुसार जागीरदार की मृत्यु होने पर उसकी जागीर जब्त कर ली जाती थी और वहाँ शासक एक दल गठित करता था एवं यह दल तब तक कार्य करता जब तक जागीरदार का उत्तराधिकार हुक्मनामा की अदायगी करके शासक से उस जागीर का नया पट्टा अपने नाम नहीं करा लेता था।[18]

अंग्रेजों के समय सामंत लोग अपनी जागीरों में निरंकुश शासक बने हुए थे। उनकी जागीरों को राज्य के अन्दर राज्य कहा जा सकता है। जागीरी क्षेत्रों में न कोई कानून था, न शासन तंत्र था और न कोई व्यवस्था थी। जागीरदार की मनमर्जी से और जूते के जोर से यहाँ का शासन चलता था। ब्रिटिश सत्ता का भी उन पर कोई सीधा नियन्त्रण नहीं है। अपने अधिकार क्षेत्र में जागीरदार अपनी प्रजा पर जैसे अधिकार जताते है उनमें हस्तक्षेप करने की हिम्मत उनके शासको में भी नहीं है। परिणामस्वरूप इन जागीरदारों के अधीन रहने वाली प्रजा को सबसे अधिक कष्ट उठाने पड़ते थे। किसी भी कानून के अभाव में जागीरदारों द्वारा अपने किसानों पर किए गए बर्बर कार्य और उन्हें दिए गए राक्षसी दण्ड फाँसी के फंदे के कष्ट से भी अधिक भयंकर थे। प्रजा से लगान, लाग–बाग और बेगार वसूल करने तक ही उनकी प्रजा वात्सल्यता सीमित थी।[19] किसान के लिए नीचे धरती और ऊपर आसमान के सिवाय राजा, मालिक आदि सब कुछ ये जागीरदार ही थे।

लोगों को निर्ममता–पूर्वक पीटना जागीरों में रोजमर्रा की बात थी। बड़े जागीरदारों को दीवानी व फौजदारी अधिकार प्राप्त थे। वे खुलकर उनका दुरुपयोग करते थे। यहाँ तक कि किसानों की स्त्रियों को भी पीटा और घसीटा जाता था। जागीरदार लोग प्रजा की भलाई के लिए कोई कार्य करना तो दूर बल्कि इसके विपरीत अपने निजी ऐशो आराम के लिए जनता से और खासकर किसानों से ज्यादा से ज्यादा धन चूसते थे। जागीरदार के घर का कोई भी छोटे से छोटा कार्य ऐसा नहीं था, जिसके नाम पर उसने किसानों पर कर (लाग) न लगा रखा हो। यहाँ तक कि राजा द्वारा जागीरदारों से लिए जाने वाली रेख, हुक्मनामा, नजराना आदि की राशि का वजन भी जागीरदार अपनी प्रजा पर डाल देते थे। ये प्रजा से अपनी जरूरत की

सारी आवश्यकताएं पूरी करते थे और उसकी उन्हें कीमत भी चुकाना नहीं चाहते थे। जब जागीरदार के आदमी लाटा लाटने जाते थे तो उन्हें आटा, दाल, घी, दूध, शकर और उनके घोड़ों के लिए घास किसानों की ओर से मुफ्त में देना पड़ता था।[20]

किसान जिस जमीन को पीढ़ियों से जोतता आया था, उस पर उसका कोई अधिकार नहीं था यह मात्र काश्तकार था। किसान को इस बात का भी अधिकार नहीं था कि वह अपने खेत में खड़े पेड़ से खेतों के लिए औजार बनाने हेतु लकड़ी काट सके और न यह अपनी खड़ी फसल में से खाने के लिए कच्चा अनाज तोड़ सकता था। अगर किसान ने खड़ी फसल से सीटियाँ (बालियाँ) तोड़ ली और कणवारिया ने देख लिया तो ये छीन ली जाती थी और किसान से जुर्माना वसूल किया जाता था। ठिकाने के आदमी फसल पकने के दिनों में किसानों के घरों की तलाशी लेते थे और नया अनाज मिलने पर उन पर भारी जुर्माना करते थे। जागीरों में किसान को उसकी जमीन से बेदखल करना आम बात थी। चूंकि जागीरों में लगान निश्चित नहीं था। अत : जागीरदार अपनी मर्जी से लगान वसूल करते थे। उपज के 1/3 से लेकर 2/3 तक तो जमीन के लगान के रूप में ले लिया जाता था और बाकी लागबागों के रूप में वसूल कर लेते थे और इस प्रकार किसान के पास बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर ही बचता था । इस सम्बन्ध में सत्यदेव विद्यालंकार ने भी लिखा है कि मारवाड़ के चण्डावल ठिकाने में एक किसान की मासिक आमदनी एक रुपया बारह आने थी।[21] मारवाड़ किसान सभा के बुलेटिनों को देखने से पता चलता है कि परगना डीडवाना के बांसा जागीरदार ने एक किसान की कुल वार्षिक पैदावार 229 रुपए, 15 आने 5 पाई में से 227 रुपए 10 आना 6 पाई वसूल किए थे। इसी तरह नागौर परगने के गाजू जागीरदार ने किसान की पैदावार में से लगान व लाग – बाग के रूप में 98.5 प्रतिशत वसूल किया था और किसान के लिए सिर्फ 1.5 फीसदी ही शेष छोड़ा था। मारवाड़ हितकारिणी सभा के प्रस्ताव से पता चलता है कि जागीरदार किसान की पैदावार का 87.5 प्रतिशत (14 आना) ले लेता था और किसान के पास 12.5 प्रतिशत (2 आना) ही बचता था। इन सबसे पता चलता है कि किसान की पैदावार का अधिकांश भाग जागीरदार और उनके कर्मचारियों के घरों में चला जाता था और किसान जी तोड़ मेहनत करने के बाद भी दरिद्र ही बना रहता था।[22] इस तरह ये जागीरदार किसानों का खून चूसने वाली 'जोंकें' थी।

मारवाड़ के जागीरदारों के अत्याचारों को पराकाश्टा तब हुई जब 1942, में उनके संगठन मारवाड़ राजपूत ऐसोशिएसन' ने एक प्रस्ताव पास करके जागीरदारों के पास भेजा था कि किसानों को एक जागीर से दूसरी जागीर में न बसने दिया जाय।उस समय ठिकाने के चौधरी भी किसानों के शोषण में ठिकानों का ही साथ देते थे। किसान की हालत यह थी कि यह मोटे कपड़े की धोती, घुटनों तक बांधता था और बाकी शरीर या तो नंगा रहता था या फटी–पुरानी अंगरखी को पहनकर काम चलाता था। अधिकतर किसानों के पास निवास के लिए कच्चे मकान या झोपड़ियाँ होती थी और इसी से वह अपना काम चलाता था।[23]

किसानों की माली हालत ही खराब नहीं थी बल्कि उनकी सामाजिक स्थिति भी बड़ी दयनीय थी। उन पर जागीरदारों की ओर से अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगे हुए थे। जैसे ठाकुर – ठकुराइन के मरने पर तमाम किसानों को दाढ़ी – मूंछ तथा सिर मुंडवाना पड़ता था तथा स्त्रियों को 12 दिन तक रोज रावले में छाती कूट – कूट कर रोने के लिए जाना पड़ता था। कुछ ऐसे उदाहरण भी है कि शादी होकर आने पर वधु को आते ही सबसे पहले जागीरदार के रावले (जनानाखाना) की हाजरी देनी पड़ती थी। किसान के लिए शादी, गमो के अवसर पर लड्डू बना सकना और घोड़े पर बैठकर तोरण मार लेना वर्जित था। रूई वाले गदे या रजाई नहीं बना सकता था। फटे पुराने कपड़ों से राली गूदड़ी बनाता था। निवार वाली खाट न बनाकर केवल मूंज की खाट ही बना सकता था। बारीक कपड़े नहीं पहन सकता था तथा थाली में कटोरी रखकर भोजन नहीं कर सकता था।[24]

लोग जागीरदार के गाँव में से छाता लगाये ऊँट या घोड़े पर चढ़कर राजपूत के मकानों के सामने से नहीं निकल सकते थे। ठाकुरों के गढ़ के आगे पैदल हो निकल सकते थे। स्त्रियाँ जूते पहनकर नहीं निकल सकती थी, उनें अपने जूते उतारकर हाथों में लेने पड़ते थे। ठाकुर के सामने एवं बराबर से कोई सवारी पर चढ़कर नहीं निकल सकता था। किसान घोड़े पर नहीं बैठ सकते थे। वे हथियार लेकर नहीं चल सकते थे। छोटे – बड़े हर राजपूत के नाम के साथ 'जी' लगाना पड़ता था तथा नाम के साथ 'सिंह' राजपूत ही लगा सकते थे। किसानों का स्वाभिमान खत्म करने और उन्हें हीन भावना में रखने के लिए उनके नामों के साथ 'इया', 'ड़ा', 'ला' आदि में से एक जोड़ देते थे जैसे

हनुमानिया, रामूड़ा, हेमला आदि ओछे नामों से संबोधित करते थे। किसान स्त्रियाँ सोने के तथा निम्न जातियों की स्त्रियाँ चाँदी के गहने तक नहीं पहन सकती थी। यद्यपि जागीरदार किसानों के घर जाकर खाना खाते थे, पानी पीते थे, परन्तु उन्हें नीचा समझते थे और उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करते थे।[25] इस प्रकार मारवाड़ के जागीरी किसानों की स्थिति बड़ी दयनीय थी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मारवाड़ के खालसा क्षेत्रों की तुलना में जागीरी क्षेत्रों में रहने वाले किसानों की हालत अत्यन्त ही दुःखद और दयनीय थी। इस सबके पीछे था जागीरदारों द्वारा लागू किया गया भारी लगान और साथ में गैरकानूनी लाग-बाग और बेगार और ऊपर से जुल्म, सितम और तानाशाही। अत : मारवाड़ में किसान आन्दोलन की शुरुआत सर्वप्रथम जागीर क्षेत्रों में हुई। मारवाड़ के साथ 1818 ई. में अंग्रेजों के द्वारा की गई सन्धि के कारण सामन्त प्रथा में व्यापक परिवर्तन आया। यह परिवर्तन राज्य को अपने पारस्परिक विवादों को अंग्रेजी निर्णय पर छोड़ने तथा एक-दूसरे पर आक्रमण न करने से उत्पन्न हुआ। राजा को वंशानुगत आश्वासन देकर अंग्रेजों को राज्य में मनमानी करने का अवसर मिल गया। अंग्रेजी प्रभाव के कारण मारवाड़ के सामन्तों तथा राजा में परस्पर सन्तुलन समाप्त हो गया। राजा को अब सामन्तों की आवश्यकता कम हो गयी। सामन्त 18वीं सदी से ही अनुत्तरदायित्व की ओर बढ़ रहे थे, यह अनुत्तरदायित्व पहले राजा के प्रति तथा बाद में जागीरी जनता के प्रति अपनाया। ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता के परिणामस्वरूप उत्तरदायित्व विहीन सामन्ती प्रणाली जीवित रही थी। जागीरदार अब परम्परागत कार्यों के स्थान पर केवल दरबारी शान-शौकत के समय उपस्थित रहने और अपनी प्रतिष्ठा के लिए परम्पराओं पर जोर देने तक ही सीमित रह गये। इससे राजपूताना की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस सामन्ती प्रणाली में विसंगतियों के कारण 20वीं सदी के प्रारम्भ में मारवाड़ की अनेक जागीरों में किसान एवं जन-आन्दोलन हुए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *कोठारी, मनोहरः भारत के स्वातन्त्रय संग्राम में राजस्थान, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन समिति, जयपुर, पृ. 42*
2. *डॉ. पेमाराम : राजस्थान में किसान आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2013, पृ. 2-5 अर्सकिन : गजेटियर ऑफ राजपूताना, खंड तीन – ए, 1909 ई. पृ. 309, 362*
3. *वही, डॉ. आर.पी. व्यास : रोल ऑफ नोबिलिटी इन मारवाड़, पृ. 198-202*
4. *वही*
5. *एर्सकिन : राजपूताना गजेटियर्स, 1909 ई., पृ. 147-148 डॉ. पेमाराम : पूर्वोक्त, पृ.7-8*
6. *डॉ. आर.पी. व्यास : पूर्वोक्त, पृ. 205*
7. *जोधपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिकॉर्ड, फाइल नं. सी – 76, वॉल्यूम 6, ऑफ 1941, रा.रा.अ.बीकानेर*
8. *द जोधपुर गवर्नमेंट गजट, दिनांक 12 जून 1948*
9. *डॉ. कालूराम भार्मा, 19 वीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, जयपुर,1974,पृ. 162*
10. *द जोधपुर गवर्नमेंट गजट, दिनांक 12 जून 1948*
11. *डॉ. पेमाराम : पूर्वोक्त, पृ.9-10*
12. *रामनारायण चौधरी : आधुनिक राजस्थान का उत्थान, पृ. 58-59*
13. *जोधपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिकॉर्ड, फाइल नं. सी – 76, वॉल्यूम 7, ऑफ 1941, रा.रा.अ. बीकानेर*
14. *डॉ. पेमाराम : पूर्वोक्त, पृ.11-12*
15. *वही।*
16. *द बॉम्बे क्रॉनीकल, 12 मई, 1942, पृ. 4*
17. *वही।*
    डॉ. पेमाराम : पूर्वोक्त, पृ.12-13
18. *वही।*
19. *वही।*
20. *वही।*
21. *मारवाड़ किसान सभा, बुलेटिन नं. 3, 1941 ई. रा. रा.अ. बीकानेर*
22. *मारवाड़ किसान सभा बुलेटिन नं. 2, 1941 ई. रा. रा.अ. बीकानेर*
23. *मारवाड़ किसान सभा बुलेटिन नं. 10, 1941 ई. रा.रा.अ. बीकानेर*
24. *डॉ. पेमाराम : पूर्वोक्त, पृ.16*
25. *वही, पृ.17*

डीजिटल मीडिया– अवसर और चुनौतियां

डॉ. अनीता जनजानी
सह आचार्य, डीम्ड विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

संचार के सभी माध्यमों का पूरक है– डिजिटल मीडिया।

'डिजिटल मीडिया' डिजिटल सामग्री है, जिसे इंटरनेट या कम्प्यूटर नेटवर्क पर प्रसारित किया जा सकता है, इसमें टेक्स्ट, ऑडियो, वीडियो और ग्राफिक्स शामिल हो सकते हैं। टी.वी. – रेडियो नेटवर्क, समाचार पत्र– पत्रिका आदि से किसी वेबसाइट या ब्लॉग पर पोस्ट की जाने वाली सामग्री व सूचनाऐं इस श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। अधिकांश डिजिटल मीडिया एनालॉग डेटा को डिजिटल डेटा में अनुवाद करने पर आधारित है। सरकार का पक्ष है कि प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया पहले से ही विनियमित हैं, किंतु वर्तमान में डिजिटल मीडिया को विनियमित करने की नितांत आवश्यकता है, हाल ही में कुछ ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म्स (नेटफ्लिक्स और अमेज़न प्राइम आदि) द्वारा स्व–नियमन तंत्र को अपनाया गया है, किंतु डिजिटल मीडिया के विनियमन की चुनौतियाँ कुछ भिन्न हैं, मुख्य चुनौती है न्यायालय के समक्ष 'अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता' तथा 'सामुदायिक गरिमा और हेट स्पीच' के मध्य संतुलन स्थापित करना। अतः डिजिटल मीडिया को विनियमित करने हेतु अहम् सुझावों की अनुपालना आवश्यक है, यथा– डिजिटल मीडिया पर अनुचित सामग्री को हटाने सम्बंधी दिशा–निर्देशों का पालन नहीं करने पर सम्बंधित व्यक्ति, संस्था और प्लेटफॉर्म्स पर भारी जुर्माना तथा कठोर सज़ा का प्रावधान किया जाना चाहिये। सामाजिक और राजनैतिक रूप से संवेदनशील संदेशों की निगरानी हेतु साइबर विभाग को आधुनिक तकनीक और उपकरण प्रदान किये जाने चाहिए। फैक्ट चेक वेबसाइटों और यूनिटों की पहुँच के दायरे में भी विस्तार की आवश्यकता है, जिससे भ्रामक या गलत सूचना पर समय रहते लगाम लगाई जा सके। डिजिटल मीडिया में विदेशी फंडिंग भी एक प्रमुख चुनौती है, किंतु वर्तमान में इनके सम्बंध में पारदर्शिता का अभाव है। सारतः डिजिटल मीडिया का विनियमन अति आवश्यक है। यह माध्यम अभिव्यक्ति की स्वंत्रता और सूचना के अधिकार जैसे मौलिक अधिकारों का सम्मान करता है तथा उन्हें सुरक्षित भी करता है, लेकिन इस माध्यम द्वारा सार्वजनिक नैतिकता के उल्लंघन और घृणित तथा अपमानजनक सामग्री के प्रसार के सम्बंध में उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के साथ ही कड़ी कार्यवाही का प्रावधान किया जाना चाहिये, तदोपरातं इस क्षेत्र की असीम संभावनाओं व अवसरों से कदाचित इनकार नहीं किया जा सकता।

संकेताक्षर : *इलेक्ट्रानिक–मीडिया, डीजिटल, इन्फोर्मेशन–मीडिया, ब्राडकास्टिंग, प्रेस, रेडियो, टेलीविज़न, मीडिया, तकनीक, सोशल मीडिया, दूर–संचार।*

आज एक बार फिर हम उसी मोड़ पर खड़े हैं, कि आने वाले कुछ वर्षों में हम जो भी फ़ैसले लेंगे, उनकी दशकों बाद इतिहासकार निश्चित रूप से समीक्षा करेंगे। वो इस बात की पड़ताल करेंगे कि किस तरह डिजिटल तकनीक द्वारा व्यक्तियों, समुदायों, राष्ट्रों ने, उस विश्व को नए सिरे से परिभाषित किया, जो उन्हें विरासत में मिला था।

डिजिटल–मीडिया को समझने से पहले हमें मीडिया को समझना चाहिए।

मीडिया का अर्थ है– एक प्रकार का साधन या माध्यम। दूर–संचार के लिए जिन साधनों का या MEDIUM का इस्तेमाल किया जाता है, उसे संचार–मीडिया कहा जाता है, और यदि हम किसी जानकारी को डिजिटल या

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से प्राप्त करते या खोजते हैं, तब वह डिजिटल–मीडिया कहलाता है, जैसे– इन्टरनेट, रेडियो, टीवी आदि। डिजिटल–मीडिया द्वारा मार्केटिंग करने की प्रक्रिया डिजिटल–मार्केटिंग कहलाती है, वर्तमान में यह अतिप्रचलित है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि डिजिटल–मार्केटिंग लक्षित वर्ग तक पहुंचने के लिए ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों डिजिटल साधनों का उपयोग करती है, जबकि सोशल–मीडिया मार्केटिंग ऑनलाइन सीमाओं तक सीमित है।

जो प्रक्रियाएं व प्रतिक्रियाएं किसी दौर में राष्ट्रीयता के अधिकार क्षेत्र में आती थीं, वो बड़ी तेज़ी से अब अप्रत्याशित डिजिटल दुनिया का हिस्सा बनती जा रहीं हैं, फिर चाहे राजनीतिक संवाद हों, व्यापार एवं वाणिज्य हो या फिर राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मसले, इससे विश्व में एक ऐसी परिस्थिति विकसित हो रही है, जिसे विद्वानों ने **'प्लेटफॉर्म–प्लैनेट'** की संज्ञा दी है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कोरोना व अन्य वायरस प्रकोप के चलते यह प्रक्रिया और विकसित होगी, जिसके कारण संभव है कि हमारी तकनीकी व्यवस्था एवं सामाजिक व्यवस्था परस्पर मिल जाएं और इनके साथ ही हमारी सामाजिक असमानताएं और विभिन्न समुदायों के बीच की दरारें भी इस नई व्यवस्था का हिस्सा बन जाएंगीं, अतएव दुनिया में हो रहे इस अहम बदलाव से जुड़ा हुआ आज सबसे उचित प्रश्न, डीजिटल मीडिया–अवसर और चुनौतियों का है। ज़रा सोचिए कि सोशल डिस्टेंसिंग के इस दौर में तमाम सरकारों पर प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने और जनता को ज़रूरी सेवाएं देने का कितना अधिक दबाव होगा। उन अभिभावकों की आवाज़ें सुनिए, जो अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर न मिल पाने से फ़िक्रमंद हैं, या फिर ऐतिहासिक रूप से समाज के हाशिए पर पड़े तबक़े की मांग के बारे में सोचिए, जो बेरोजगार है या घर से बैठ कर काम नहीं कर सकते। तो अब परिस्थितिवश ज़िंदगी, सुरक्षा और रोज़ी रोटी जैसे सभी अहम सवालों के जवाब की गारंटी वर्चुअल माध्यमों से देनी होगी, ऐसे में दुनिया भर की सरकारें उचित अवसर व सुविधाओं को जुटाने के लिए किस स्तर पर संघर्षरत होंगीं।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए आज कई तकनीकी कंपनियां व्यवस्था परिवर्तन के सकारात्मक विकल्प देने में सक्षम हो रहीं हैं, क्योंकि ये कंपनियां अपने लिए नए क्षेत्र विकसित करने की जद्दोजहद में हैं, इसलिए वे करोड़ों सामाजिक और वाणिज्यिक संवादों में शामिल होने व मुक़ाबले के मैदान में उतरने के लिए उत्सुक हैं। इनके प्रयासों से संभव है कि भविष्य में अब कई विषय सदैव ही ऑनलाइन प्रतिपादित किए जाएंगें। जिस प्रकार महामारी के इस दौर में वीडियो कॉन्फ्रेंस की तकनीक बहुत बड़ी मददगार बन कर उभरी है, जो सरकारों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों को सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करते हुए अपना काम संपादित करने में अहम भूमिका निभा रही है, निश्चित तौर पर आगे चल कर तमाम देशों की सरकारें ऐसे डिजिटल औज़ारों, माध्यमों का उपयोग बढ़ाएंगीं, जिनकी मदद से वो स्वास्थ्य संबंधी निगरानी के साथ ही लोगों से क्वारंटीन में रहने की शर्त का पालन करा सकेंगीं। इस प्रबल संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आगामी वर्षों में तकनीकी रूपांतरण से जो सबसे बड़ा बदलाव आने जा रहा है, वो है– किसी समाज में होने वाला संरचनात्मक–परिवर्तन।

इन उभरती तकनीकों में वो शक्ति है कि ये लोगों को बहुत सी कुरीतियों और बुरे हालात से मुक्त होने में मदद कर सकें, इस धारणा के समर्थक मानते हैं कि भविष्य में लोग तकनीक के माध्यम से हो रहे परिवर्तन को सामाजिक रूप से स्वीकार करेंगे। किंतु इस विषय में दूसरा दृष्टिकोण जो इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में विकसित हुआ, वो पहली धारणा के ठीक विपरीत है। इस धारणा के प्रतिपादकों को उभरती–तकनीक से सामाजिक–परिवर्तन की अपेक्षाएं नहीं, बल्कि हानि का संदेह है। उन्हें लगता है कि नवीन तकनीकों को विकसित करने वाली बड़ी–बड़ी टेक्नोलॉजी कंपनियां

व्यक्ति विशेष की निजता का हनन कर रहीं हैं। अतः इन परिस्थितियों में तकनीक का इस्तेमाल करने वाले व्यक्ति विशेष की निजता, उसके अधिकारों और डेटा संरक्षण को लेकर होने वाली परिचर्चाएं और अवधारणाएं भी आने वाले वर्ष में काफ़ी हद तक बदल चुकीं होगीं। वहीं नए (कोरोना) वायरस का प्रकोप इन दोनों ही धारणाओं के समेकन की मांग कर रहा है। निसंदेह तकनीकी परिवर्तन को लेकर नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसे बहुत ही कम समय में विकसित करना होगा, क्योंकि आने वाले वर्ष में जो भी फ़ैसले लिए जाएंगे, वो या तो हमारी ज़िंदगी में स्थायी भाव ले आएंगें या फिर आने वाले दशक में हमें कुछ ख़ास पथों पर चलने की ओर अग्रसर करेंगें। जिन तकनीकों के बारें में पहले समाज ये सोचता था कि उन्हें जीवन में शामिल करने से पहले और अधिक समीक्षा की आवश्यकता है, ऐसी तकनीकें अब तेज़ी से हमारी ज़िंदगी का स्वतः ही हिस्सा बनने की ओर अग्रसर हो रहीं हैं, जैसे स्वास्थ्य के क्षेत्र में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (AI) का इस्तेमाल आदि। उम्मीद है कि इन तकनीकों को तेज़ी से विकसित करके सुरक्षित तरीके से हमारी ज़िंदगी का हिस्सा बनाया जाएगा तथा उपभोक्ता से जुड़ी तकनीकें जो बड़ी तेज़ी से प्रगति के नए कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं, जैसे कि वीडियो कांफ्रेंसिंग या वित्तीय तकनीक के मंच, उन्हें उपभोक्ताओं और सरकारों द्वारा और अधिक सूक्ष्म परीक्षण से गुज़रना होगा, ताकि उनका इस्तेमाल उपयोगिता के आधार पर निःसंकोच किया जा सके।

अब जबकि आने वाले समय में पक्ष–विपक्ष इन दोनों तकनीकी दृष्टिकोणों का संश्लेषण देखने को मिलेगा, तो अंतरराष्ट्रीय समुदाय के पास भी नए अवसर होंगे और नवीन चुनौतियां सामने आएंगीं, संभवतः **पहली और सबसे स्पष्ट चुनौती–** लगभग अप्रशासित डिजिटल क्षेत्र से निपटने की होगी। इस महामारी के साथ सूचना की महामारी अथवा इन्फोडेमिक भी आई है, जिसके चलते ग़लत और झूठी जानकारियों की तमाम सोशल मीडिया पर बाढ़ सी आ गई है। सोशल मीडिया के बारे में कहा जा रहा है कि यह व्यवहारिक रूप से मुख्य धारा के मीडिया की भूमि हड़प रहा है। आज सोशल मीडिया के मंच, जनता की राय गढ़ने वाली सही–गलत धारणाओं तथा परिचर्चाओं का प्रमुख मंच बन गए हैं। किंतु मात्र फेक् न्यूज़ (Fake News) इस जोख़िम का इकलौता आयाम नहीं है, इससे निपटने का जो तौर तरीक़ा अपनाया जा रहा है, उससे भी बराबर का ख़तरा बना हुआ है। ग़लत सूचनाओं का प्रसार रोकने के नाम पर सेंसरशिप की ताक़तवर व्यवस्था, इसी के समान चिंता का विषय है। तकनीकी कंपनियों के दखल देने की शक्ति और तकनीकी कंपनियों के बीच ख़तरनाक सहयोग या संघर्ष की भावना इसके मूल में है, मिसाल के तौर पर कुछ तकनीकी मंचों ने कुछ सत्ताधीन राजनितिया अथवा चुनिंदा जनसाधारण द्वारा अपलोड किए गए कंटेंट को बिना सूचना दिए अपने प्लेटफॉर्म से हटा दिया, क्योंकि उनके अनुसार पोस्ट किया गया कंटेंट ग़लत सूचनाएं प्रसारित करने वाला था, अब सवाल है कि क्या तकनीकी कंपनियों के पास यह शक्ति होनी चाहिए कि वो किसी राष्ट्राध्यक्ष अथवा व्यक्ति विशेष द्वारा पोस्ट की गई जानकारी को सेंसर कर सकें ? याकि तकनीकी कंपनियों को सरकार के साथ साझेदारी करके, नवीन उपायों के माध्यम से इस महामारी या किसी विकट परिस्थतियों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करने व सही– गलत नियमावली निर्धारित करने में सहयोग करना चाहिए, क्योंकि प्रतिबंध तो महामारी के बाद भी जारी रह सकते हैं।

इसी से संबंधित **दूसरा ख़तरा डेटा साझा करने के तौर तरीक़े हैं**। मसलन तकनीकी कंपनियां, स्वास्थ्य संगठन और सरकारें जिस तरह से कोविड–19 से जुड़े आंकड़े साझा कर रही हैं, उनकी बहुत कम निगरानी हो पा रही है व कोई जवाबदेही भी तय नहीं है।

तकनीकी क्रांति से हमारे भविष्य को जो **तीसरा ख़तरा** है, वो है साइबर दुनिया की अखंडता को चोट पहुंचाने का प्रयास। ज्यादातर देश आज साइबर अपराध से मूलभूत ढांचे को क्षति पहुंचने को लेकर आशंकित हैं, इनका लोगों के सामाजिक और वित्तीय जीवन पर भी गहरा दुष्प्रभाव पड़ सकता है। ये ऐसे ख़तरें हैं जिनसे किसी देश की संस्थागत राष्ट्रीय सुरक्षा को तो ख़तरा नहीं है, लेकिन साइबर– अपराध व्यक्तिगत डिजिटल स्वतंत्रता को प्रभावित करता है। कोविड–19 महामारी फैलने के बाद निजी जानकारियां निकालने के लिए फ़र्ज़ी ई–मेल भेजने और टेलीमेडिसिन से जुड़े घोटालों की बाढ़ सी आ गई है। ये सभी साइबर दुनिया के अपराधों में वृद्धि की ओर ही इशारा करते हैं। जिस वक्त भूमंडलीकरण अपना अस्तित्व बचाने के लिए डिजिटल अमृत के भरोसे है, उस समय ऐसे साइबर अपराधों से तकनीक पर लोगों के भरोसे को गहरी क्षति पहुंच सकती है।

डिजिटल दुनिया से **चौथा ख़तरा** है कि एक आम इंसान डिजिटलकीरण की इस तेज़ प्रक्रिया में बिल्कुल पीछे छूट जाएगा। हमारी पीढ़ी में सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाला राजनीतिक जुमला समाज में असमानता का रहा है, तकनीकी क्रांति ने इस सामाजिक असमानता को अक्सर बढ़ाने का ही काम किया है। जिन देशों में हर नागरिक को अच्छी इंटरनेट सेवा उपलब्ध नहीं है, वहां के लोग बहुआयामी सामाजिक आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, क्योंकि महामारी ने उनसे आवश्यक सार्वजनिक संसाधनों तक पहुंच को छीन लिया है।

यही नहीं, तकनीकी दुनिया की चुनौतियां इससे परे भी हैं। अब जबकि महामारी के दौर में लोग ये सीख रहे हैं कि हर काम करने के लिए दफ़्तर जाना आवश्यक नहीं है, तो तमाम उद्योग और वाणिज्यिक कंपनियों को भी इस बात का एहसास हो रहा है कि हर काम संपादित करने के लिए इंसानों की ज़रूरत नहीं पड़ती। आज इस महामारी के दौरान, जिस तेज़ी से आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (AI) और रोबोटिक तकनीकों का इस्तेमाल बढ़ रहा है, उससे एक ऐसी प्रक्रिया को बल मिलेगा, जिसे लेकर सरकारें और नीति निर्माता पिछले कई वर्षों से चिंतित हैं और तकनीक के कारण उत्पन्न होने वाली बेरोज़गारी की चुनौती और भी विकराल रुप ले सकती है।

बहररहाल तेज़ी से डिजिटल हो रहे वैश्विक समाज में तमाम देशों द्वारा चुनौतियों से निपटने के लिए जो तौर तरीक़े इस्तेमाल किए जाएंगे, उससे तकनीकी दुनिया का आख़िरी जोख़िम उत्पन्न होगा। कोई भी दो–समाज एक समान नहीं होते हैं, वो अलग–अलग राजनीतिक मूल्यों, सामाजिक परंपराओं और आर्थिक प्राथमिकताओं से परिभाषित होते हैं। अब जबकि कोविड–19 के कारण हमारे सामाजिक जीवन, कारोबार का संचालन और प्रशासनिक व्यवस्थाएं ऑनलाइन हो रही हैं, तो वैश्विक डिजिटल दुनिया में कुछ ख़ास मूल्य और तकनीकी पैमाने स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है, आगे चलकर ये प्रक्रिया और तेज़ होने की संभावना है, ऐसे में हो सकता है कि **डिजिटल 'कोडवार'** इस सदी का वैचारिक संघर्ष होगा, जो अंत में दुनिया का विभाजन कर सकता है। किंतु इन तमाम समस्याओं के प्रति जागरुक नीति–निर्माता कोविड–19 महामारी के संकट में अपने लिए एक अवसर भी देख सकते हैं, जिससे वें राजनीतिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं में सुधार ला सकें। वह सुधार जो विरासत में मिले संस्थानों के कारण वर्षों से अटके पड़े हैं, यह सुधार कई व्यापारिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करने का काम करेंगे। उदाहरणार्थ, भारत की डिजिटल पहचान व्यवस्था ने हमें महामारी के दौरान कई चुनौतियों से उबरने में मदद की है, डिजिटल आईडी की मदद से ग़रीब तबक़े को नक़द स्थानांतरण और कई ज़रूरी सामान ख़रीदने के लिए डिजिटल भुगतान किया जा सका है, ऐसी ही व्यवस्थाओं के निर्माण की मांग अब पूरी दुनिया में हो रही है। अनेक विदेशी कंपनियो ने इस वायरस का प्रकोप फैलने से पहले ही भारत सरकार के साथ इस क्षेत्र में सहयोग के सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए हैं, इसी तरह गूगल ने भारत के डिजिटल भुगतान के मूलभूत ढांचे की मिसाल देते हुए, अमेरिका के संघीय बैंक फेडरल रिज़र्व से अपील की है कि वो अमेरिका में भी ऐसे ही नई तकनीकी खोज को बढ़ावा दे। इस बार हम दुनिया भर में इन प्रक्रियाओं के और मज़बूत होने की संभावना देखते हैं।

तमाम सरकारों और नागरिकों के लिए महामारी का दौर वास्तविक वैश्विक डिजिटल दुनिया की संभावना को साकार करने का शायद सबसे अहम अवसर है। कोविड–19 महामारी से निपटने के दौरान सरकारें और समुदाय इस बात के लिए मजबूर हुए हैं कि वो छोटी छोटी जानकारियां आपस में साझा करें। कुछ अच्छी आदतें और महत्वपूर्ण तकनीकों को भी आपस में तेज़ी से साझा करें, मिसाल के तौर पर आज दुनिया में ऐसे उद्यमियों की संख्या बढ़ रही है, जो ओपन सोर्स और थ्री–डी प्रिंटिंग की मदद से बने वेंटिलेटर व चिकित्सकीय उपकरण के डिज़ाइन शेयर कर रहे हैं, नागरिक संगठन और नीति निर्माता कोविड–19 की महामारी से उत्पन्न अवसर का लाभ उठाकर ऐसे पथ का निर्माण कर सकते हैं, जिनके माध्यम से नई तकनीकों और नई खोजों को दूसरे समुदायों और देशों के साथ साझा किया जा सकता है, इस माध्यमों के ज़रिए वो बौद्धिक संपदा की सख्त व्यवस्थाओं के बारे में नए सिरे से नियम तय कर सकते हैं, जिन नियमों के चलते वे पहले यह तकनीकी जानकारी साझा नहीं कर पा रहे थे। आज से क़रीब एक सदी पहले जब कोविड–19 से कहीं ज्यादा घातक स्पेनिश फ्लू की महामारी फैली थी और लोग एक दूसरे से दूरी बना रहे थे, तब बहुत से लोगों (मूल रूप से अमेरिकियों) ने दोस्तों, परिजनों और सहकर्मियों से संपर्क में बने रहने के लिए टेलीफ़ोन का इस्तेमाल किया था, निश्चित रूप

से, उस समय ये एक नई तकनीक थी और तेज़ी से मांग बढ़ने के कारण अक्सर इसकी सेवाएं ठप हो जाती थीं, लेकिन इस परिस्थति ने नयी तकनीक और टेलीफोन के उद्योग को हमेशा के लिए ठप करने के बजाय, इस बात का ज़ोर देकर एहसास कराया कि उस समय के समाज के लिए ये तकनीक कितनी महत्वपूर्ण थी। आज एक सदी बाद ये बात बिल्कुल स्पष्ट है कि पूरी दुनिया को पास लाने और इसे एक वैश्विक गांव में बदलने में टेलीफ़ोन के बाद डिजिटल मीडिया ने भी वही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

निष्कर्षतः हम एक बार फिर उसी मोड़ पर खड़े हैं और आने वाले कुछ वर्षों में हम जो फ़ैसले लेंगे, उनकी दशकों बाद इतिहासकार निश्चित रूप से समीक्षा करेंगे। वो इस बात की पड़ताल करेंगे कि किस तरह डिजिटल तकनीक से व्यक्तियों, समुदायों, राष्ट्रों ने उस विश्व को नए सिरे से परिभाषित किया, जो उन्हें विरासत में मिला था। निसंदेह यह माध्यम अभिव्यक्ति की स्वंत्रता और सूचना के अधिकार जैसे मौलिक अधिकारों का सम्मान करता है तथा उन्हें सुरक्षित भी करता है, लेकिन इस माध्यम द्वारा सार्वजनिक नैतिकता के उल्लंघन और घृणित तथा अपमानजनक सामग्री के प्रसार के सम्बंध में उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के साथ ही कड़ी कार्यवाही का प्रावधान किया जाना चाहिये, तदोपरातं इस क्षेत्र की असीम संभावनाओं व अवसरों से कदाचित इनकार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Digital Media Wikipedia*
2. *Media and Society: Challenges and Opportunities Hardcover – by Bir Bala Agarwal (Author), Publication date 1 January 2002, Print length-168 pages, Language English, Publisher Concept Publishing Co.*
3. *Opportunities and Challenges of Digital Media: A Comprehensive Literature Review of Ghana., Article Published April 2020, Authors: John Demuyakor, Communication University of China.*
4. *New Media: An Introduction By Flew Terry Condition, Edition- Second Edition, ISBN 10; 0195550412, ISBN 13;9780195550412, Seller Marlowes Books, Publisher; Oxford University Press, Place of Publication; South Melbourne, Date Published 2005.*

आयुर्वेदावतरण एवं मारवाड़ के इतिहास में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के प्रचलन के प्रमाण

डॉ. सीमा मीणा
सहायक आचार्य (इतिहास), राजकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व ही रोगों का प्रशमन और स्वास्थ्य संरक्षण का मूलस्वरूप उपस्थित था। उत्पन्न होने वाले व्यक्ति को उसे खोजना पड़ा, अवबोध के माध्यम से ज्ञात ऋग्वेद के उपवेद के रूप में वर्णित आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में जड़ी–बुटियों के माध्यम से उपचार किया जाता था लेकिन अश्विनी कुमारों तथा काशी के विद्वान सुश्रुत (८०० ई.पू.) ने इस पद्धति में शल्य चिकित्सा को समाहित कर अद्‌भुत परिवर्तन को जन्म दिया जिसका वर्णन सुश्रुत संहिता में मिलता हैं। मारवाड़ रियासत भी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में रोगोपचार से लाभान्वित हुई रियासत कालीन ग्रंथों (जिनमें हकीकत बही, पट्टा बही खर्च खाता बही रोचनामचा बही तथा जनानी ढ्योढ़ी की बहियाँ आदि) में इस बात की जानकारी मिलती हैं कि महाराजा/रानियों, सैनिक आमजन आदि ने इस चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया।

संकेताक्षर : *आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति, बही, अवबोध जड़ी–बुटी भिषगाधिराज, मंत्र चिकित्सा, रस चिकित्सा, कासिद, नाजर।*

''नित्यं हिताहार विहार सेवी परोपकारी विषये स्वसक्तः।
दाता समः सत्य परः क्षमावान् आप्रोपसेवी च भवत्य रोगः।।''[1]

सृष्टि के आदिकाल से ही पुरूषार्थ चतुकष्टय को पाने हेतु मनुष्य प्रयत्न करता रहा है इस हेतु स्वस्थ रहना आवश्यक है परन्तु इसके बाधक के रूप में मानव के समक्ष रोग उत्पन्न हुए। इन विध्नों के निवारणार्थ मानव प्रयत्न करता रहा और इस प्रयत्न के क्रम में ही आयुर्वेद के अवबोध की प्राप्ति हुई।[2,3] आयुर्वेद का प्रयोजन स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा आतुर व्यक्ति के विकार का प्रशमन करना है। संसार के बदलते परिवेश में आधुनिक विज्ञान तथ अन्य विज्ञानों के अनेक परिवर्तन आए परन्तु आज भी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्त अकाट्य बने हुए हैं।

शाश्वत और अनादि आयुर्वेद अवबोध परम्परा के माध्यम से अग्रिम संतति के रूप में पुष्ट होता रहा हैं। सैद्धान्तिक रूप से नियत और सर्वकालिक होते हुए भी इसके व्यावहारिक स्वरूप में युगानरूप संदर्भ में परिवर्तन आवश्यक रूप से होता रहा हैं। समय–समय पर महर्षियों, ऋषियों व ऋषितुल्य विद्धानों और अनुसंधानकर्ताओं ने इसके प्रयोग में विविधता को अन्विष्ट किया हैं। इसके माध्यम से प्राप्त परिणामों को अपने–अपने ग्रंथों व्याख्याओं या टिप्पणियों में उल्लिखित कर दिया हैं।

महर्षियों या आचार्यों द्वारा समय–समय पर अवबोध से प्राप्त एवं ग्रंथों में उपदिष्ट यह ज्ञान विभिन्न कारणों से तिरोहित भी होता रहा हैं। ऐसा ज्ञान उपयोगी होने के कारण लुप्त होता हुआ भी तात्कालिक विशिष्ट ग्रन्थों, अन्य व्याख्याओं, पुरातत्व अवशेषों, स्मृति चिन्हों, ताम्रपत्रों, शासकीय विवरणों संस्मरणों, यात्रा वृतान्तों, विशिष्ट घटनाओं

एवं मुद्राओं आदि अंशों को किसी न किसी रूप में छोड़ देता हैं।[4] अतः इन सबसे प्राप्त छोटे-छोटे अंशों को कड़ियों के रूप में जोड़कर श्रृंखला बद्ध करने का कार्य इतिहास विशेषज्ञों ने किया।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्येत।।[5, 6]

जिस शास्त्र में हितायु, अहितायु, सुखायु और दुखायु के लिए हित (पथ्य) और अहित (अपथ्य) का आयु के प्रमाण-अप्रमाण तथा स्वरूप का उल्लेख मिलता हैं उसे आयुर्वेद कहते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व ही रोगों का प्रशमन और स्वास्थ्य संरक्षण का मूल स्वरूप उपस्थित था।[7] उत्पन्न होने वाले व्यक्ति को उन उपायों को खोजना पड़ा। उपायों के अन्वेषण से ही एतद्विषयक ज्ञान का भण्डार उनके सामने उपस्थित हुआ। यह कार्य सृष्टि के कर्ता ब्रह्मा ने किया।[8] इन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान स्मरण करके दक्ष प्रजापति को दिया।

आयुर्वेदावतरण की परम्परा को सारांश में निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता हैं-

(1) देवलोक में आयुर्वेद

(2) भूमिलोक में आयुर्वेद

(1) देवलोक में आयुर्वेद- ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान स्मरण करके दक्ष प्रजापति को दिया। दक्ष प्रजापति ने अश्विनी कुमारो को दिया, जिन्होंने सूत्र रूप में प्राप्त ज्ञान को परीक्षणों एवं अनुसंधानों द्वारा समृद्ध किया। अश्विनी कुमारों ने इस ज्ञान को प्रायोगिक रूप से और अधिक समृद्ध किया।[9]

(2) भूमिलोक में आयुर्वेद- इंद्र के पश्चात् यह ज्ञान भूमिलोक पर आया। इस संदर्भ में दो परम्पराएँ मुख्य हैं जो इस प्रकार है-

(1) आत्रेय सम्प्रदाय

(2) धान्वन्तर सम्प्रदाय

1. आत्रेय सम्प्रदाय- सर्वप्रथम ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण कर प्रजापति को दिया, प्रजापति ने इस ज्ञान को अवकिल रूप से अश्विनी कुमारों को दिया, अश्विनी कुमारों ने इन्द्र को और इन्द्र ने भरद्वाज को आयुर्वेद शास्त्र का सम्पूर्ण रूप से उपदेश दिया।

2. भारद्वाज ने आयुर्वेद का यह सम्पूर्ण ज्ञान ऋषियों को दिया जिसमें पुनर्वसु आत्रेय भी थे।[10] आत्रेय ने अग्निवेश आदि यह प्रमुख शिष्यों को आयुर्वेद पढ़ाया।

(ii) उन सभी ने अपने-अपने नाम से इस ज्ञान के आधार पर संहिताओं की रचना की। यह ज्ञान इनके शिष्य-प्रशिष्य आगे बढ़ाते रहे। आत्रेय के उपदेश का परिपालन आगे से आगे परम्परा के रूप में होता रहा, जो व्यवहार में आत्रेय-परम्परा या आत्रेय-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गई। इस परम्परा की विशेषता यह रही कि इसमें शल्य-शास्त्र संबंधी कर्मो का सामान्य उपदेश तो दिया जाता रहा, लेकिन उनका व्यावहारिक प्रयोग सामान्यतया नहीं करने की परम्परा रही।[10] शल्य शास्त्र संबंधी विशिष्ट-कर्मो के लिए तो स्पष्टतः निषेध करते हुए कहा गया कि ऐसे कर्म धन्वन्तरि सम्प्रदाय के निष्णात एवं दक्ष चिकित्सकों से ही करवाए जाने चाहिए, यथा-

तत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ।
वैद्यानां कृतयोग्यानां मथशोथनरोपणे।।[11]

(च.चि. 5/44)

जो कम महत्व के शल्य स्वरूपक कर्म थे (यथा-क्षारकर्म और अग्निकर्म) उनके लिए भी यही निर्देश था कि दाह-कर्म भी दाह कर्मविशेषज्ञ और क्षार प्रयोग क्षारकर्म विशेषज्ञों से करवाया जाना चाहिए। इस प्रकार के चिकित्सकों को भी धन्वन्तरि-सम्प्रदाय में ही परिगणित किया गया है, यथा-

दाहे धान्वन्तरीयाणामत्राणि भिषज्ञां बलम्।
क्षार प्रयोगे भिषज्ञां क्षारतंत्रविदां बलम्।।[12]

(च.चि. 5/44)

अतः केवल औषध प्रयोग या पञ्चकर्म–प्रयोग तक ही आत्रेय–सम्प्रदाय के चिकित्सक सीमित रहे और तो और श्रृंगार जलौका और अलाब जैसे रक्त मोक्षणपरक सामान्य प्रयोग भी आपात्कालिक स्थिति में ही दक्ष आत्रेय–सम्प्रदाय के चिकित्सक प्रायः करते थे अन्यथा उनमें भी धनवन्तर–सम्प्रदाय का ही अधिकार माना जाता रहा हैं। सिरामोक्षण (सिरावेछ) तो सर्वधा धन्वन्तरी–सम्प्रदाय के चिकित्सक ही करते आए हैं। आवश्यकता पड़ने पर आत्पयिक स्थिति में सामान्य स्वरूप के उपशस्त्रकर्म का ज्ञान और व्यावहारिक प्रयोग भी आत्रेय–सम्प्रदाय के चिकित्सक तब भी करते थे और आज भी करते हैं।

इसे आत्रेय–सम्प्रदाय कहे जाने का प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि ब्रह्म से लेकर इन्द्र तक के आयुर्वेदज्ञ उपदेष्टा थे, जिन्होंने मूलभूत सिद्धान्तों के साथ–साथ अपने द्वारा किए गए प्रायोगिक ज्ञान और तन्मूलक आविष्कारों की परम्परा को भी आगे संचारित किया, इनका स्वरूप एक जैसा ही रहा, जिसमें सभी बाहों अड्गें का एक समान सन्निवेश था। लेकिन इन्द्र ने जो उपदशे दिया तो उसमें आगे दो प्रकार की परम्परायें विकसित हो गईं।

2. धान्वन्तर–सम्प्रदाय–सुश्रुत संहिता में आयुर्वेदावतरण का जो क्रम दिया हैं वह इन्द्र तक वही क्रम हैं जो आत्रेय सम्प्रदाय में निर्दिष्ट हैं। इन्द्र से धन्वन्तरि ने इसे ग्रहण किया और इसे प्रायोगिक संदर्भ सहित आगे बढ़ाया। इसमें विवेचन की प्रमुखता यह है कि इसमें आयुवेंदावतरण का क्रम वही लेते हुए भी प्रमुख ग्रंथ विषय शल्य चिकित्सा को बता दिया; यथा–

एतद्धयड्ंग प्रथमं, प्रागभिघात व्रण
संरोहाद्यज्ञशिरः संछानाच्च।[13]

(सु.सू. 1/17)

इस प्रसंग में संकेत दिया है कि यज्ञ का शिर छिन्न कर दिया गया था जिसका देवताओं के आग्रह पर अश्विनी कुमारों ने संधान किया और इस कारण देवताओं ने अश्विनी कुमारों को यज्ञ भाग देना प्रारम्भ करवाया। इसी आधार पर धन्वन्तरि ने शल्य–शास्त्र को आठ अंगों में प्रमुख माना। उनका कहना था कि आशु (शीघ्र) क्रिया करने के कारण तथा यंत्र, शास्त्र, क्षार और अग्नि का विशेष रूप से प्रयोग करने के कारण तथा अन्य क्रियाऐं सर्वतंत्र सामान्य (अन्य शास्त्रों के समान) होने से शल्यतंत्र को अन्य तंत्रों से अधिक माना गया हैं। यथा–

अष्टास्वपि आयुर्वेद तंत्रेष्वेतदेवाधिकमभिमतम्,
आशुक्रिया करणाद्यन्त्र शस्त्रक्षारग्नि प्रविधानात्
सर्वतंत्र साभान्याच्च।[14]

(सु.सू. 1/18)

भगवान् धन्वन्तरि ने आठों अंगों की ही शिक्षा इंद्र से ग्रहण की थी, अतः वे आठों अड्गें के ही विशेषज्ञ थे। उनकी शल्यतंत्र में विशेष अभिरूचि और दक्षता थी, लेकिन शल्यतंत्र का प्रारम्भिक उपदेश उन्होंने इसलिए नहीं किया था, अपितु इसलिए किया था किस सुश्रुतादि शिष्यों ने उन्हें आग्रह किया था कि हमें आयुर्वेद का सम्पूर्ण ज्ञान दे, लेकिन तब से पहले शल्य संबंधी ज्ञान दें। यथा–

त ऊचः– अस्माकं सर्वेषामेव शल्यज्ञांन मूलं
कृत्वोपदिशतु भगवानिति[15]

(सु.सू. 1/10)

इस तरह के शल्य ज्ञान को प्रारम्भिक रूप से ग्रहण करते हुए आयुर्वेद के आठों अड्गे का ज्ञान लेने वाले प्रारम्भिक एवं प्रमुख शिष्य थे; यथा–औपधेनव, वैतरण, औरभ्र पौष्कलावत, पुरवीर्य, गोपुररक्षित एवं सुश्रुत। इन सभी ने तंत्र, शस्त्र, क्षार और अग्निकर्म के साथ–साथ कार्य चिकित्सा एवं अन्य अंगों से संबंधित उपक्रमों, औषधि के प्रयोगों और पंचकर्मादि के साथ स्वास्थ्यरक्षण संबंधी सभी उपायों का विधिवत् उपदेश ग्रहण किया।[16] इन्होंने अपने–अपने नाम से संहिताएँ भी लिखीं।[17/18] इन्हीं के साथ धान्वन्तर–तालिका प्रस्तुत की जा रही हैं–

आयुर्वेदावतरण (आयुर्वेद–परम्परा)

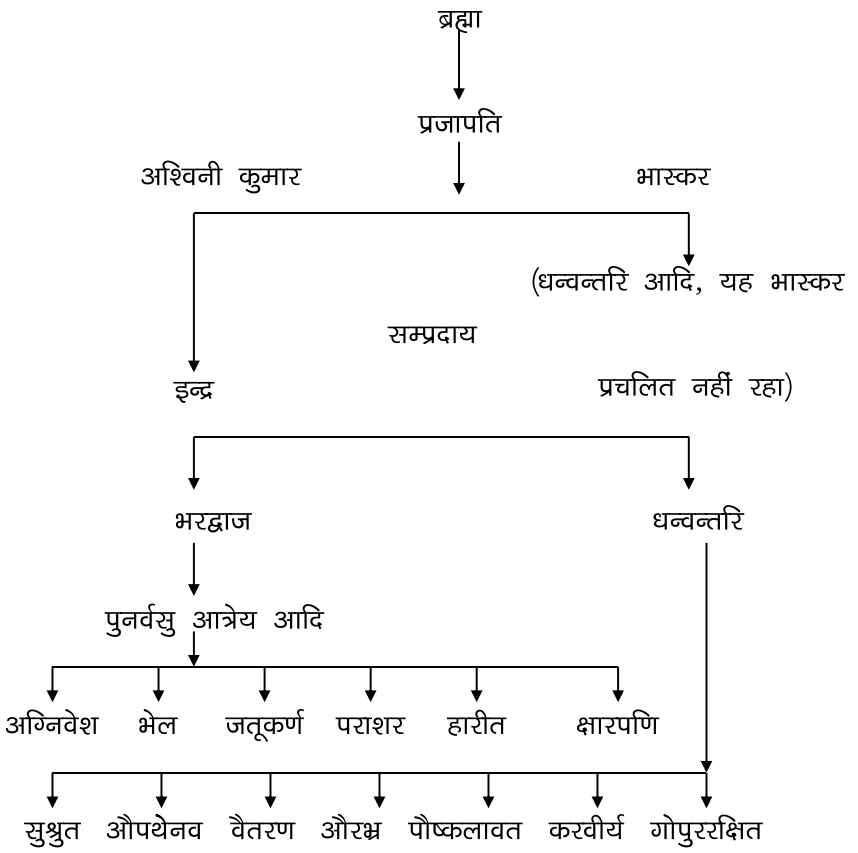

भारतीय चतुर्दश विद्याओं में महत्वपूर्ण आयुर्वेद की आठ शाखाएँ हैं–[19,20,21]

(1) कार्य चिकित्सा (MEDICINE) – अन्दरूनी उपचार

(2) शल्य चिकित्सा (SURGERY) – सर्जरी

(3) उर्ध्वांग/शालाक्य चिकित्सा (E.N.T) – आँख, नाक, कान व मुख से जुड़ी चिकित्सा

(4) भूत विद्या (PSYCHOLOGY) – उपरी हवाओं का उपचार

(5) दंष्ट्रा/अगद विद्या (TOXICOLOGY) – विष विद्या

(6) रसायन/जरा (REJUVENATION) – पुनर्योवन प्राप्त करने का विज्ञान

(7) वाजीकरण/वृष (APHRODISIAC) – पुरूषों की कामेच्छा को बढ़ाना

(8) कौमार–भृत्य (PAEDIATRICS) – बाल चिकित्सा

यदि मारवाड़ के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो यहाँ आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के प्रचलन के प्रमाण प्राप्त होते हैं।[22] यथा–महारानियों को होने वाले उदर विकार, ग्रंथि रोग, मुंह से खून आना, खून की उल्टी होना, दांत दर्द[23] महाराजाओं को होने वाला क्षय रोग, अल्सर, कर्क रोग, बुखार, त्वचा रोग मस्तिष्क विकार आदि के उपचार हेतु पाली, ब्यावर व मंदसौर से 'कासिद' नामक व्यक्ति द्वारा वैध बुलाए जाते थे, जो जड़ी बूटियों के माध्यम से इलाज करते थे,[24] युद्ध भूमि में घायल सैनिकों के ईलाज के लिए मुख्य वैध को ले जाना व राज–परिवार के खान पान के विषय में भिषक् द्वारा दिये जाने वाले निर्देशों का उल्लेख, मंत्र शक्ति से मन के दुर्विचारों को बाहर निकालना[25] ऋग्वेद में दिए गए निर्देशानुसार औषधियों के माध्यम से शरीर के रोगों को बाहर निकालते थे राजपरिवार के पुरूष व्यक्ति को बीमारी होने पर उपचार हेतु सीधे वैद्य या राजज्योतिष से सम्पर्क किया जाता था तथा किसी महिला (रानी, महारानी, पड़दायत आदि) के बीमार

होने की स्थिति में सर्वप्रथम 'नाजर' को सूचित किया जाता था जो महाराजा तक समाचार पहुँचाता था[26] फिर वैद्य अथवा ज्योतिष को बुलाया जाता था ऐसी दशा में कई बार बीमारी बहुत बढ़ जाती थी, मृत्यु तक हो जाती थी। बब्बर खाना व पंडत खाना चिकित्सा से संबंधित दो विभाग[27] थे तथा प्रशासन में भिषकों व भिषगाधिराज की भूमिका का विस्तृत विवरण प्राप्त होता हैं जोकि वैद्यविषारद की उपाधि प्राप्त अधिकारी होते थे ये आयुर्वेद की आठ शाखाओं का प्रयोग करते हुए जड़ जंगम सभी को अमृत बनाने का प्रयास करते थे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से भली प्रकार से अनुमान लगाया जा सकता हैं कि काल के विराट उदर में समायी हुई आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति चिरन्तकाल से ही अपनी संजीवनी शक्ति के कारण जीवित हैं समय का प्रवाह इसे बहा न सका। युग–युगान्तर की क्रांतियाँ इसे निर्मूल न कर सकी।

संदर्भ गंथ सूची

1. *वा.स. 4/36*
2. *पूविंया, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, औषद द्रव्य परिचय, पृष्ठ संख्या I*
3. *गौड़, प्रो. बनवारी लाल, आयुर्वेद का प्रारम्भिक इतिहार, पृष्ठ संख्या I*
4. *च.सू. 1/41*
5. *अत्रिदेव विधालंकार – आयुर्वेद का इतिहास, हिन्दी समिति, बनारस 1960 ई.*
6. *गौड़ बनवारीलाल–आयुर्वेद का इतिहास*
7. *चरक – चरक संहिता, विद्यासागर, कलकत्ता 1896 ई.*
8. *शर्मा, आचार्य प्रियव्रत – आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, वाराणसी 1975 ई.*
9. *सुश्रुत संहिता – 1. सुश्रुत कृत विद्यासागर, कलकत्ता 1989 ई.*

   2. सुश्रुत कृत अम्बिका दत्त शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1972
10. *भाटी देवीसिंह – आयुर्वेद चिकित्सा, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर 2011 ई.*
11. *आयुर्वेद शास्त्र – सम्पादक हुकुमसिंह भाटी, जोधपुर महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश*
12. *मिश्र, जयशंकर – ग्याहवीं सदी का भारत, वाराणसी*
13. *मिश्र, जयशंकर – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, हिन्दी माध्य कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन द्वारा प्रकाशित, 1992 ई.*
14. *अष्टांग संग्रह – वाग्भट्ट कृत प्रथम भाग निर्णय सागर, बम्बई 1957 ई.*
15. *कुमार, अश्विनी – अश्विनी संहिता 1839 ई. (इनकी एक प्रति मद्रास विश्वविद्यालय में सुरक्षित है।)*
16. *विद्यालकार अत्रिदेव – आयुर्वेद का वृहत् इतिहास, लखनऊ 1976 ई.*
17. *बाशम, ए.एल. – दि प्रक्टिस ऑफ मेडिसिन इन एन्सिएन्ट एण्ड मीडिवल इंडिया, न्यूयार्क 1971 ई.*
18. *मुखोपाध्याय, जी.एन. – हिस्ट्री ऑफ इंडियन मेडिसिन 3 भाग, कलकत्ता 1923 ई.*
19. *शर्मा, पी.वी. – इंडियन मेडिसिन इन क्लासिकल एज. चौखम्बा, वाराणसी 1972 ई.*
20. *धुर्ये, जी.एस. – वैदिक इंडिया, बोम्बे 1979 ई.*
21. *कविराज, एस. सी. – आयुर्वेद का इतिहास*
22. *रोजनामचारी बही*
23. *जनानी ड्योढ़ी तालके की बही*
24. *खर्च खाता री बही*
25. *ज्योतिष स्फुट 18वीं सदी*
26. *जोधपुर राज्य की दस्तूर बही*
27. *राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी जोधपुर से प्राप्त ग्रंथांक–2792*

सहायक पत्रिका

- *प्रोसिडिंग ऑफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस*
- *प्रोसिडिंग ऑफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस*
- *परम्परा – राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर*
- *मज्झमिका – प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर*
- *वैचारिकी – भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर*
- *जनरल ऑफ दी रॉयल सोसायटी ऑफ बंगाल*
- *आकाशवाणी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय*

प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं शैक्षिक प्रकल्प

पवन कुमार
शोधार्थी शिक्षाशास्त्र विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन भारतीय समाज में मनुष्य के जीवन में शिक्षा का स्थान सर्वोपरि था। उपनिषदों में शिक्षा का चरम उद्देश्य 'विमुक्ति' को बताया गया है– 'सा विद्या या विमुक्तये'। इस काल में प्रचलित शिक्षा के दो पक्ष थें– परा और अपरा। सांसारिक कार्य व्यवहार को ज्ञान अपरा विद्या एवं आध्यात्मिक ज्ञान को परा विद्या की श्रेणी में रखा जाता था। इन दोनों पक्षों को परस्पर पुरक माना जाता था। इसके अन्तर्गत वेदचतुष्टय, इतिहास पुराण, व्याकरण, पित्रय, राशि, निधि, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्म विद्या, भूत विज्ञान क्षत्रविद्या, नक्षत्र विद्या, देवजन विद्या, यज्ञ शास्त्र एवं विविध शास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। इस काल में सुव्यवस्थित शैक्षणिक पद्धतियां प्रचलित थी जिसके अन्तर्गत रटने की विधि प्रयोगात्मक पद्धति, सूत्र पद्धति, व्युत्पति प्रणामी कथा प्रणाली, अनुरूपता प्रणाली आदि अनेक पद्धतियां शामिल थी। इस काल में प्रचलित शिक्षा के उद्देश्यों में शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का विकास, उत्तम आचरण, शारीरिक एवं मानसिक सम्पुष्टता, धार्मिक विकास एवं ज्ञान का संरक्षण एवं विकास का उद्देश्य निहित होता था। इस प्रकार, यह शिक्षा मनुष्य के लौकिक व पारलौकिक कल्याण का साधन माना जाता था। शिक्षण प्रक्रिया के तीन महत्वपूर्ण चरों में प्रथम गुरू द्वितीय शिष्य एवं तृतीय स्थान पाठ्यक्रम का था। इस काल में गुरू के प्रति ईश्वर के समान पूज्य भाव था एवं शिक्षक–शिक्षार्थी का सम्बंध परस्पर सहृदयतापूर्ण थें। शिक्षा का केन्द्र गुरूकुल होता था जहां छात्रों की शिक्षा का आरंभ सामान्यतः बारह वर्ष की अवस्था में होता था एवं सामान्यतः यह चौबीस वर्ष की अवस्था तक चलता था। इस दौरान शिक्षार्थियों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होता था। प्रत्येक शिक्षार्थी को उसमें ज्ञान के स्तर के अनुरूप उसकी प्राप्ति के लिए स्वयं की पात्रता सिद्ध करनी होती थी। गुरूकुल की शिक्षा समाप्ति के उपरांत प्रत्येक छात्र को उसकी पात्रता के अनुसार गुरू के द्वारा दीक्षा दिया जाता था। इस दौरान सम्पन्न संस्कार समावर्तन कहलाता था।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय समाज में जिस औपनिषद्कि शिक्षा का प्रचलन था, वह अपने समय की एक श्रेष्ठ व वैज्ञानिक शिक्षा व्यवस्था थी, जिसने समाज के आध्यात्मिक व भौतिक समृद्धि को संतुलित बनाए रखा। वर्तमान शैक्षिक चुनौतियों के परिमार्जन के सन्दर्भ में उपरोक्त प्रारूप साकारात्मक रूप से फलदायी साबित हो सकता है। प्रस्तुत शोध आलेख में सूत्र कालीन भारतीय समाज में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न उपागमों एवं शैक्षिक प्रकल्पों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर : *विमुक्ति, वेदचतुष्ट्य, वाकोवाक्य, मानसिक सम्पुष्टता, औपनिषद्कि, ब्रह्मचर्य।*

उपनिषदों में विद्या का चरम उद्देश्य विमुक्ति है (सा विद्या या विमुक्तये)। इस कारण इसके दो पक्ष है– परा और अपरा। सांसारिक कार्य, व्यवहार का ज्ञान अपरा विद्या से है, जबकि परा विद्या परमात्मा से संबंधित है मुण्डक उपनिषद् में लिखा है– ''द्वे विद्ये विद वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पों व्याकरण निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यथा तदक्षरमधिगम्यते।''

इन दोनों विद्याओं में परस्पर कोई विरोध नहीं है। सांसारिक जीवन में वेद तथा वेदांगों की अत्यधिक आवश्यकता है। उपनिषद् कालीन ऐहिक ज्ञान ब्रह्म या आत्मज्ञान में बाधक नहीं है वरन् आत्मज्ञान के लिए आधार प्रदान करने वाला

है। इस दृष्टि से अपरा विद्या व्यक्ति को आत्म ज्ञान के योग्य बनाती है। नारद और सनतकुमार की कथा जिसमें नारद मंत्रविद् (सभी विषयों के जानकार) होने के बाद भी आत्मविद् न होने के कारण सनतकुमार के पास आत्म–साक्षात्कार के लिये गये, इसी तथ्य को रेखांकित करती है। इसी आत्मविद्या को उपनिषदों में उत्कृष्टतर माना गया है। मुण्डक उपनिषद में आत्मज्ञान को पूर्ण ज्ञान माना गया है। परा विद्या के रूप में मान्य इस ज्ञान का अधिकारी क्रियावान, क्षत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, श्रद्धालु तथा व्रतानुष्ठाता ही हो सकता है। यह ज्ञान भूयसी प्रतिष्ठा प्राप्त करे और इसे सार्वजनिक महत्व मिले इसी लिए इसका सम्बंध विशुद्धतः देवों से किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में इस बात की चर्चा आती है कि ब्रह्म ने यह ज्ञान प्रजापति को, प्रजापति ने मनु को और मनु ने प्रजावर्ग को दिया।

वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है– शिक्षेद्दमं दानं दयामिति और तैतेरीय उपनिषद् के अनुसार शिक्षां व्याख्यास्यामं

स्पष्टतया उपनिषदों में शिक्षा का प्रयोग मिलता है। शिक्षा शब्द के 'शिक्ष' धातु से निष्पति के आधार पर इसका प्रयोग विद्या (सीखने) के संदर्भ में हुआ है। उपनिषदों में शिक्षा शब्द संकुचित एवं वृहत दोनों ही अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। तैतेरीय उपनिषद् के भाष्य में शंकराचार्य ने लिखा है– जिसके द्वारा वर्णादि का उच्चारण सीखा जाये, वह शिक्षा है। इस विवेचन के मूल में संकुचित दृष्टि का निर्वाह हुआ है। वृहदारयण्क उपनिषद् के अनुसार, शिक्षा में दम, दान तथा दया सादृश्य आत्मिक गुणों के विकास का प्रावधान भी सम्मिलित था। उपनिषद काल में शिक्षा साभिप्राय थी। स्वध्याय तथा प्रवचन से प्रमाद (उपेक्षा) न करने का विधान व्यक्ति को उच्छृंखल नहीं होने देता था। इस अर्थ में तत्कालीन शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया थी जो जीवनपर्यन्त चलती रहती थी। इसकी पूर्णता तब होती थी जब व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार कर लेता था।

सूत्रकालीन शिक्षा

शिष्य के व्यक्तित्व का विकास– उपनिषद् काल में आचार्यो द्वारा शिष्य के मांगलिक जीवन की कामना के साथ–साथ उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए प्रयास किया जाता था इसके लिए दो तत्वों–उत्तम आचरण व शारीरिक एवं मानसिक सम्पुष्टता पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

उत्तम आचरण– शिक्षा प्रक्रिया के प्रारंभ से ही शिष्य को ब्रह्मचर्य पालन द्वारा आंतरिक शुद्धि का अभ्यास कराया जाता है। सत्य बोलने का उपदेश दिया जाता था। अपने गुरूजनों का सम्मान करने और दुविधापूर्ण या अनिर्णय की स्थिति में उनके बताये मार्ग पर चलने का आदेश दिया जाता था।

शारीरिक एवं मानसिक सम्पुष्टता– उपनिषद्ों का मानना है कि आत्महित भी जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है। स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति का अन्तस ही विद्या प्राप्ति के लिये प्रयासरत हो सकता है। अतः यह मान लेना कि प्राचीनकाल में शिक्षार्थियों को केवल ज्ञान की दृष्टि से ही सम्पन्न किया जाता था उचित नहीं होगा। अंगो की पुष्टता के साथ ही वाक् (वाणी), प्राण, चक्षु, श्रोत(कान) बल तथा सभी इंद्रिय समुदाय की पुष्टि हेतु भी प्रार्थना की जाती थी जिससे सिद्ध होता है कि शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहने हेतु आचार्य तथा शिष्य सचेष्ट रहते थे।

धार्मिक विकास– उपनिषद् काल के गुरूकुलों में निरंतर होने वाले धार्मिक अनुष्ठान यज्ञिक परम्परा आदि से शिष्यों को अवगत कराते थे। तैतेरीय उपनिषद् में देवकार्य तथा पितृकार्य से अप्रमाद का उपदेश भी इस बात का द्योतक है कि जीवन में जिन देवतत्वों से प्रकाश तथा ज्ञान प्राप्त होता उनको विस्मृत न किया जावे। तैतेरीय उपनिषद् के अनुसार विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे धर्म से प्रमाद न करें

ज्ञान की संरक्षा एवं विकास–तैतेरीय उपनिषद् के अनुसार शिष्यों को स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद नहीं करना चाहिए। उपनिषदों का मानना थाि क स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान की सुरक्षा होती थी। वह वास्तविक ज्ञान जो जीव जगत के ज्ञान से सम्बंधित होता था उसे अपरा विद्या के रूप में स्वीकृती दी गई थी। इसकी प्राप्ति हेतु भी शिष्य को सचेष्टब प्रयास करना आवश्यक था। इस प्रकार उपनिषदों की शिक्षा ब्रह्मचर्य तक ही सीमित नहीं थी वरन आत्मज्ञान होने तक उसके लिए निरंतर सचेष्ट प्रयास करने पर बल दिया जाता था।

उपनिषद् दर्शन और पाठ्यक्रम

उपनिषदों का चिन्तन विषय केवल आत्मा था, ऐसा मानना उचित नहीं है। उपनिषदों में वर्णित अनेक विषय इस तथ्य की पुष्टि करते है। वस्तुतः उपनिषदों में ज्ञान के दो रूपों की चर्चा है– एक अपरा विद्या और दूसरा

परा विद्या। यद्यपि आत्मसाक्षात्कार से सम्बंधित होने और ज्ञान के सर्वोच्च लक्ष्य से सम्बंधित होने के कारण परा विद्या को उपनिषदों में महत्व दिया गया है तथापि व्यक्तिगत हित या सांसारिक सुखों की प्राप्ति से सम्बधित अपरा ज्ञान की भी उपेक्षा नहीं की गई है। तैतेरीयोपनिषद् का कथन– भूत्यै न प्रमदितव्यम् कुशलान्न प्रमदितत्यम् (व्यक्तिगत हित व समृद्धि की उपेक्षा मत करना) इस तथ्य को सिद्ध करता है। उपनिषदों का स्पष्ट मत है कि साधन को साधन माना जाए उसे साध्य न बना लिया जाये। कहीं ऐसा न हो कि सांसारिक सुखों की प्राप्ति के फेर में जीवन का चरम लक्ष्य आत्मानुभूति विस्मृत हो जाये। इस दृष्टि से अपरा विद्या मुक्ति की ओर बढ़ने का साधन है स्वयं साध्य नहीं क्योंकि बिना सांसारिक सुखभोग और उससे प्राप्त संतुष्टि के वैराग्य या आत्मकेन्द्रित होने में मन के भटकाव की आशंका बनी रहती है। उपनिषदों के अनुसार पाठ्यक्रम में अपरा और परा दोनों विद्याओं को उचित स्थान मिलना चाहिए। पंचकोषों(अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय) चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) तथा चारों पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) से युक्त पाठ्यक्रम को इसमें संजोया गया है।

शिक्षा का प्रारंभ शारीरिक संपुष्टता तथा दृश्य जगत के साथ व्यक्ति के सामंजस्य से होता था। वस्तुतः यह विषय अपरा विद्या के विषय है। इसके पश्चात् शिष्य को जीव और जड़ जगत के ज्ञान की प्राप्ति की आरे अग्रसर किया जाता था, यह विषय अपरा विद्याा के क्षेत्र से परा विद्या के क्षेत्र की ओर शिष्य को प्रवृत्त करते थे और अन्त में आत्मसाक्षात्कार के लिए गहन चिंतन विषयों जो कि पूर्णतः परा विद्या के विषय थे की ओर स्वध्यायी को प्रेरित किया जाता था। यह आत्मविद्या ही शिक्षा की अंतिम सीढ़ी थी।

उपनिषदों के प्रत्येक वर्ण्य विषय की यह विशेषता है कि वह व्यक्ति को आत्मोन्नति के चरम लक्ष्य की ओर ले जाता है। उपनिषदीय दर्शन का स्पष्ट मत है कि चाहे ज्ञान भौतिक विषयों का प्राप्त किया जाए चाहे कलाओं में पारंपरागत आत्मानुभूति का लक्ष्य सदैव दृष्टि में रहना चाहिए, क्योंकि लक्ष्य की स्पष्टता से भटकाव की सम्भावना नहीं रहती।

उपनिषद् कालीन पाठ्य विषय अधोलिखित थे–

1. **वेद चतुष्ट्य–**इसमें ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का अध्ययन होता था।
2. **इतिहास पुराण–** इन दोनों को उपनिषद्काल में वेदों के सदृश्य मान्यता मिल चुकी थी। छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार इसे पंचम वेद माना जाता था
3. **व्याकरण–**शंकराचार्य के अनुसार भारतपंचमानां वे व्याकरण मित्यर्थः। व्याकरणेन हि पदानि विश्रामशः ऋग्वेदादयो ज्ञायन्ते। अर्थात् वेद तथा महाभारत को मिलाकर पांचों वेदों का ज्ञान व्याकरण द्वारा ही होता था। अतः वेदो को समझने हेतु व्याकरण पढ़ाया जाता था।
4. **पित्रय–**इसका अध्ययन पितृ कार्यो से परिचित होने के लिए किया जाता था। इसे श्राद्धकल्प भी कहते थे।
5. **राशि–**इसका अर्थ गणित था। अंको का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण अंक विद्या अर्थात् अंक गणित का अध्ययन कराया जाता था।
6. **निधि–** इस पाठ्यक्रम में गुप्त रूप से स्थित धातुओं को खोजने का ज्ञान दिया था।
7. **वाकोवाक्य–** ब्रह्म विषयक वाद विवादों में दक्षता प्राप्त करने के लिये तर्क शास्त्र का अध्ययन किया जाता था। छान्दोग्य उपनिषद् में वकोवाक्यम् तर्कशास्त्रम् कहकर इसे तर्कशास्त्र के रूप में मान्यता दी गई है।
8. **एकायन–** छान्दोग्य उपनिषद में एकायनम् नीतिशास्त्रम् कहकर इसे नीतिशास्त्र के रूप में स्थापित किया गया है।
9. **देव विद्या–** इसके अंतर्गत देवताओं की पूजा का विधान आता था।
10. **ब्रह्मविद्या–**इसका सम्बंध दर्शन से था जिसमें जीवन और जगत के प्रश्नों का समाधान खोजने का प्रयास किया जाता था।
11. **भूत विज्ञान–**इसका अर्थ जीवन का विज्ञान था।
12. **क्षत्रविद्या–**शंकराचार्य के मत में धनुर्वेद ही क्षत्रविद्या है।
13. **नक्षत्र विद्या–**यह ज्योतिष से सम्बंधित थी।
14. **देवजनविद्या–**इसका अथ शंकराचार्य ने

छान्दोग्य उपनिषद में किया है देवजनविद्याम् गंधयुक्तिन्नृत्यगीतवाद्यशिल्पादि विज्ञानानि अर्थात् इसे गंधयुक्त, नृत्य, गीत वाद्य और शिल्प आदि से सम्बंधित माना है।

15. **यज्ञशास्त्र–**इसके अंतर्गत यज्ञ सम्पन्न करने की विधियों का अध्ययन होता था।

अतः यह अनुमान गलत नहीं होगा कि उपनिषद् काल में भौतिकशास्त्र, आयुर्विज्ञान, जीवनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, वाक्विज्ञान तथा मनोविज्ञान पर पर्याप्त चिंतन होता था।

उपनिषद् दर्शन और शिक्षण विधियां

उपनिषदीय साहित्य में हमें विभिन्न शिक्षण विधियों की चर्चा मिलती है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण विधि स्व–अन्वेषण की है। उपनिष्द्कारों की दृढ़ धारणा है कि व्यक्ति ज्ञान मात्र स्वयं के सचेष्ट प्रयास से प्राप्त कर सकता है। दुसरों द्वारा प्रदत्त ज्ञान का आत्मसातीकरण नहीं किया जा सकता मात्र उसे शाब्दिक रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। ज्ञान के आत्म दृढ़ीकरण के लिए आवश्यक है कि ज्ञान को छात्र अपने स्वयं के स्वानुभव द्वारा प्राप्त करे जाने–समझे। स्व–अन्वेशन विधि में अध्यापन विधियां समाहित रहती है। जैसे––

1. कंठस्थ करने की विधि– इस पद्धति में ज्ञान कंठस्थ होता है। लिपि का ज्ञान न होते हुए भी वैदिक ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रहा उसका श्रेय इसी विधि को है।
2. प्रवचन– गंभीर ज्ञान को इस काल में प्रवचन के माध्यम से दिया जाता था इस विधि का प्रयोग व्यक्तिगत शिक्षण के लिए होता था। आचार्य प्रवचन देता था और शिष्य एकाग्र होकर उसे सुनते थे।
3. व्याख्यान– इस विधि में विस्तार के साथ आचार्य अर्थ स्पष्ट करते थे। दिये गये उपदेश पर चिन्तन किया जाता था। व्याख्यानों की रोचकता के लिए उदाहरणों का सहारा लिया जाता था। ऐसे अनेक उदाहरण उपनिषदों में विखरे पड़े है।
4. प्रश्नानुप्रश्न विधि– उपनिषद काल में आज की भांति अध्यापक शिष्य से प्रश्न नहीं पूछता था वरन् शिष्य स्वयं उनके पास अपना प्रश्न लेकर जाता था। आचार्य प्रश्नों का विस्तार से उत्तर देता था।
5. प्रयोगात्मक पद्धति– शिक्षार्थी को विषय समझाने के लिए प्रत्यक्षीकरण विधि का सहारा लिया जाता था। आत्म अत्यंत सूक्ष्म है इसे समझाने के लिए छंदोग्य उपनिषद में आचार्य आरुणि ने शिष्य श्वेतकेतु से बड़ का फल लाकर फोड़ने को कहा। फोड़ने पर आचार्य ने पूछा, इसमें क्या दिखता है। शिष्य ने कहा अणु सदृश दाने। आचार्य ने उन्हें भी फोड़ने को कहा, शिष्य ने वैसा हि किया। आचार्य ने पूछा इसमें क्या दिखता है। कुछ भी नहीं–श्वेतकेतु ने उत्तर दिया। आचार्य ने स्पष्ट किया जैसे इस बीज में वृक्ष के जन्म का तत्व विद्यमान है और व दिखाई नहीं देता ठीक इसी प्रकार आत्मा की भी स्थिति है। इस प्रकार प्रत्यक्षानुभव से प्राप्त ज्ञान अत्यधिक प्रमाणिक होता है।
6. सूत्र प्रणाली– ज्ञान के अत्यधिक बढ़ जाने से इसे याद रखना कठिन होता है, अतः इसे सूक्ष्म सूत्रों के द्वारा स्मृति में बनाये रखने के लिए सूत्र भाषा का प्रयोग किया जाता था। श्वेताश्वतर उपनिषद का तत्वमसि इसी प्रकार की सूत्र प्रणाली है।
7. व्युत्पत्ति प्रणाली– शब्दों का मूल उद्गम उसमें भावों को अभिव्यक्त करता है। किसी गूढ़ विचार की व्याख्या उसके लिए प्रयुक्त शब्द की व्युत्पति द्वारा की जा सकती है।
8. कथा प्रणाली– नैतिकता की शिक्षा देने के लिए कथाओं का प्रयोग होता था। उपदेश में कथाओं का प्रयोग होता था। उपदेश को कथाओं के माध्यम से रूचिकर बनाया जाता था।
9. अनुरूपता प्रणाली– उपनिषदों में सादृश प्रतीकों जैसे ढोल, शंख, नदी, समुंद्र के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के बीच के अंतर को स्पष्ट किया गया।
10. पहेली विधि– उपनिषदों में इस विधि का प्रयोग भी मिलता है। जैसे– श्वेताश्वतर उपनिषद में 'सत्ता' को एक महान चक्र के समान बताया गया है, जिसके पहिये तीन गणों के बने है, सिरे सोलह कलाये है, जिनके आरे पचास भाव है, जिनके प्रति आरे

दस इन्द्रियां तथा उनके दस विषय है। इस विधि से छात्रों में चिंतन का भी विकास होता है।

शिक्षक का स्थान

उपनिषद् काल में गुरू के प्रति ईश्वर के समान पूज्य भाव था। तैतरीय उपनिषद में 'आचार्य देवो भव' तथा श्वेताश्वर उपनिषद में 'यस्य देशे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरो।' कह कर आचार्य को अद्वितीय प्रतिष्ठा व सम्मान दिया गया है। उस काल में शिक्षक शिक्षार्थी सम्बंध परस्पर सहृदयता पूर्ण थे।

शिष्य

इस काल में सामान्य शिक्षा का आरंभ बारह वर्ष की अवस्था में होता था। सामान्यतया चौबीस वर्ष की अवस्था तक शिक्षार्थी गुरूकुल में रहता था। कुछ शिष्य अपना सारा जीवन गुरूकुल में ही व्यतीत करते थे। ऐसे शिष्यों को नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा जाता था। कुछ शिष्य अंतेवासी कहलाते थे जो गोपनीय विषयों का भी ज्ञान करने के अधिकारी होने थे। कुल मिलाकर शिष्य को ज्ञान के स्तर के अनुरूप उसकी प्राप्ति के लिये स्वयं की पात्रता सिद्ध करनी होती थी। आचार्य जब तक शिष्य को श्रद्धा युक्त नहीं पा लेते थे तब तक उपदेश नहीं देते थे। शिष्य से सत्य, धर्म, स्वाध्याय, पितृपरितोष, अनिन्द्य आचरण, शुभ की प्राप्ति तथा मित्रतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की जाती थी। उस काल में शिक्षा समाप्ति पर समावर्तन संस्कार सम्पन्न कराया जाता था जो आज के दीक्षान्त भाषण के अनुरूप ही उपदेशात्मक होता था।

अनुशासन

उपनिषद्कारों की दृष्टि में अध्ययन काल में अनुशासन से भटकाव अध्ययन में रूचि के अभाव से उत्पन्न होती है। रूचि के लिए वे आत्मप्रेरणा को महत्वपूर्ण मानते थे। यह आत्मप्रेरणा शिक्षा प्राप्ति के लिये अदम्य लालसा से ही उत्पन्न होती है। दूसरी महत्वपूर्ण बात छात्र के मन में इस बात की स्पष्टता है कि वह क्या बनना चाहता है ताकि वह अपनी अभिरूचि के अनुरूप शिक्षा प्राप्त कर सके । ऐसा होने पर अनुशासन की समस्या का समाधान स्वतः ही काफी हद तक हो जाता है। इस प्रकार आत्मसंयम और आत्मज्ञान विद्यार्थी में उस आत्मबल को उत्पन्न करते है जो उसे समाज व धर्म द्वारा मान्य नैतिक सिद्धांतो को पालन के योग्य बनाता है।

परंतु कभी-कभी इन्द्रिय या विषय वासनाओं के प्रभाववश छात्र द्वारा अनुशासन भंग हो सकता है। ऐसे में शिक्षक से उपनिषदीय दर्शन अपेक्षा करता है कि वह छात्र को कुमार्ग से बचाये, उसके आचरण पर दृष्टि रखे। अनुशासन भंग की स्थिति में शिक्षक द्वारा कभी-कभी भर्त्सना, अप्रसन्नता, अस्वीकृति, आदेश आदि का प्रयोग किया जाता था। आपत्ति काल या गंभीर अनुशासन हीनता की स्थिति में अध्ययन काल में वृद्धि, निष्कासन या छड़ी द्वारा पीटने प्रयोग दंड के रूप में हो सकता था।

निष्कर्ष

पूर्वकाल में, यदि कोई व्यक्ति कलाकार होता था तो यह राजा का कर्तव्य था कि उसकी कलाभिवृद्धि के लिए आवश्यक सभी प्रबंध करा दे। अभिरूचि सम्पन्न और कल्पक कलाकारों को आवास और भोजन की सुविधा देकर अपने आश्रम में रखने के लिए बड़े-बड़े घरानों में होड़ लगती थी। ऐसा कलाकार कोई भी अभिजात कलाकृति निर्माण नहीं कर सकता जिसको कल के भोजन की चिन्ता बनी रहे अथवा जिसे साधारण जनों की रूचि को देखते हुए निम्नस्तर की बाजारू कलाकृति बनानी पड़े। जनता की रूचि को सुधारने का काम कलाकार को करना चाहिए। जनता की हीन रूचि कलाकार को पंगु और अवनत बना देती है। अतः जीविका के लिए होने वाली स्पर्धा कला का विनाश करती है क्योंकि कलाकार जनता के अज्ञान एवं होन रूचि का दास बन जाता है। प्रतिभा अनिरूद्ध और मुक्त होनी चाहिए और उसी अवस्था में उसे कला को जन्म देना चाहिए, अन्यथा चिन्ता की बंदीशाला में बन्द प्रतिभा विद्रूप राक्षसी कलावस्तुओं को निर्माण करेगी। औरों से अच्छा अनने की कामना तो कलाकार के लिए प्रेरणा का काम कर सकती है, किन्तु प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा ऊँचा मूल्य प्राप्त करने की इच्छा यह काम नहीं कर सकती।

अधिक सुन्दर कलाकृति निर्माण करने की इच्छा परिष्कार और शोधन करते हुए कला का विकास करेगी; किन्तु बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त करने के विचार से कलाकृति को बनाना कला की आत्मा का हनन करेगी क्योंकि वह असभ्य, अशिष्ट एवं अवनत कला का निर्माण करेगी। अपरंच, कलाकार को पर्याप्त अवकाश मिलना चाहिए जिससे वह स्वप्निल गुंजन हो सके जो कला की विकासभूमि होता है और वह वातावरण निर्माण हो सके जिसमें सृजनकारी अभिरूचि

उर्वरा बनेगी। कोई श्रेष्ठ कलाकृति शीघ्रता में निर्माण नहीं होती; किसी अभिजात कला वस्तु को अंतिम रूप देने के लिए जो हलके हाथों से संवारना पड़ता है। उसके लिए कल्पकता को पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

पूर्वकालीन संगठित राज्य में समाज का सुव्यवस्थित क्रमभाजन कर कार्य का सुचारू सम्पादन और जीविका की स्पर्धा से बचाव कर लिया जाता था। बालकों का पालन–पोषण करते हुए उन्हें जीवन के कर्तव्यों को प्रशिक्षण इस प्रकार दिया जाता था कि युवावस्था में उचित कार्य करने के लिए उनकी अभिवृति योग्य बनती थी। बाल्यकाल से ही राजपुत्र को जनसेवा और जन कर्तव्यों का प्रशिक्षण दिया जाता था; उसे सिखाया जाता था कि उसका जीवन प्रजा के लिए , प्रजा का है और प्रजा पोषित है। बाल्यकाल से ही उसे सिखाया जाता था कि राजपद समस्त अधिकार पदो में गुरूत्म और कठोर है, राजमुकुट सुख–सुविधा की समाप्ति है, राजदण्ड सबसे पहले उसके अपने दुराचार को दण्डित करेगा। शासन लोगों की रक्षा के लिए था, न कि शासन के उपभोग के लिए; यह था प्राचीन भारत का आदर्श। प्रजा के लिए राजा होता था, न कि राजा के लिए प्रजा। राजशक्ति का एकमात्र औचित्य था–प्रजा का कल्याण।

यही बात प्रत्येक वर्ण के विषय में थी। ब्राह्मण बालक को सिखया जाता था कि उसकी वृद्धि ही उसकी सम्पदा है और विद्या और पवित्रय ही उसका अधिकार। उसकी जीवन–सरिता को संयम का जो बांध लगा हुआ है वह वृथाभिमान और विशेषाधिकारों के लिए नहीं, प्रत्युत इसलिए है कि अनेक नहरों से वह संसार को सहायता और आशीर्वाद का परिपोषण दे सके। उसे शिक्षा देनी है, अतः उसे विद्वान होना चाहिए; पुरोहित, धर्मगुरु बनना है इसलिए पवित्र होना चाहिए। राजा और प्रजा का परामर्शदाता और मार्गदर्शक होना है। इसलिए उसे प्रज्ञाचक्षु, दयाशील, व्यक्तिगत आकांक्षा से दूर, एषणाओं से मुक्त, निःस्पृह रहना चाहिए।

क्षत्रिय–पुत्र को सिखाया जाता था कि उसका कर्तव्य है समाज की रक्षा करना, समाज में सुरक्षा एवं व्यवस्था बनाये रखना और समस्त सुख, सुविधा, सामर्थ्य एवं प्राणों की भी बाजी लगाकर अपने देश की रक्षा करना। वह जन्मजात सैनिक होता था, उसकी परंपरा गौरवशाली और वीर पुरुषों की होती थी; ऐसे शूर पुरूषों की जिन्होंने दुर्बलों की रक्षा, देश का सम्मान और स्त्रियों की सुरक्षा के लिए जीवन समर्पित किये होते थे। आजकल की अनिवार्य अथवा स्वैच्छिक सैन्य भरती की अपेक्षा यह पूर्वकालीन प्रथा कितनी अच्छी थी! यह अनिवार्य भरती किया गया सैनिक, जिसे अपने प्रियजनों से बलपूर्वक अलग किया जाता है, बलात् लादे गये कार्य से जी चुराता है और समस्त रोता हुआ गांव इन अनिच्छुक युवकों को प्रयाण करते हुए विदा करने के लिए गांव की सीमा तक जाता है। स्वैच्छिक सैन्य भरती में प्रायः निम्न श्रेणी का श्रमिक वर्ग, नगर–जीवन में असफल लोग और ग्रामों के निकम्मे लोग आते है। परंतु जो क्षत्रिय बालक बचपन से ही अपने जीवन को जनता की धरोहर समझ शस्त्राचार को जीवनचर्या के रूप में लेता है वह बड़ा होकर वीर, रणकुशल, स्वाभिमानी और उदार बनकर आमरणान्त सैनिक जीवन व्यतीत करता है।

यही बात व्यापारी और वाणिज्यिक वर्ग की थी। सभी प्रकार के न्याय और मान्य उद्योगों के द्वारा सम्पति का संग्रह करना और सभी उपयुक्त और पूर्त कार्यो के लिए उचित एवं उदारतापूर्वक उसका विनियोग करना, यही पाठ वैश्य बालक को प्रारंभ से ही मिलता था 'शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त विकिर' सौ हाथों से इकट्ठा कर हजारों हाथों से बांटें– यह आदेश था। वह निर्धनों को कोष था, राष्ट्र–परिवार का प्रबंधक था। उसके उद्योग और सत्यसंधता की प्रबल शिला पर राष्ट्रीय समृद्धि का विशाल भवन सुरक्षित खड़ा होता था।

इसी प्रकार शूद्र को भी सामान्य सेवा का कार्य सिखाया जाता था। सभी की सहायता के लिए अथक श्रम करना उसका कर्तव्य था। वह तो राष्ट्र भवन की नींव, राष्ट्रीय स्तूप का विशाल आधार माना जाता था।

आचार्यकुल में नियमित अध्ययन की अवधि व्यक्ति के पच्चीस वर्ष के उग्र के आसपास तक होती थी। इसके उपरांत वे गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते थे, जहां वे स्वाध्याय के प्रति भी सचेष्ट रहते थे। श्वेतकेतु ने 24 वर्ष की उम्र तक नियमित ब्रह्मचर्यवास किया था, लेकिन पिता के नजर में तब भी वह सुयोग्य पात्र नहीं था, जिस कारण उसकी शिक्षा बाद तक चलती रही। इस समय 12 वर्ष के अंतराल तक नियमित अध्ययनोपरांत 'समावर्तन' होता था, लेकिन किसी ने किसी को इससे अधिक काल तक भी अध्ययन करना पड़ता था, ताकि उन्हें स्तरीय ज्ञान की प्राप्ति हो, जैसा

कि उपकोसल कामलायन के प्रसंग में सूचना मिलती है। वास्तविक ज्ञान अर्थात् पूर्णज्ञानप्राप्ति हेतु कालावधि की कोई सीमा नहीं थी। भारद्वाज ने चार आयु तक अर्थात् संभवतः 48 वर्ष की आयु तक अध्ययन किया था। इन अलग-अलग सत्रों में 101 वर्ष तक ब्रह्मचर्यवास किया था। वास्तव में अध्ययनकाल की अवधि छात्रों के विभिन्न विषयों के अध्ययन के प्रति अभिरूचि एवं तदनुरूप आचार्यो की समावर्तन सम्पुष्टि दोनों ही पर अवलम्बित थी। संभवतः उसी मान्यता के संदर्भ में 'मनु' निर्देश देते हुए कहते है कि 'आचार्य के आश्रम में ब्रह्मचर्य पूर्वक 39 वर्षपर्यंत वेदों का अध्ययन करना चाहिए। यदि इतने समय तक संभव न हो तो 18 वर्ष अथवा 9 वर्ष अथवा जितने समय तक संभव हो उतने ही समय तक अध्ययन करें। अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए क्रम से तीनों जो दो या एक ही वेद का अध्ययन कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो जाए। आपस्तंव ने 12 वर्ष से लेकर 18 वर्ष तक आचार्यकुल में अध्ययन का विधान किया है। केवल विद्या अर्थात् ज्ञान में रत रहने वाले अध्येताओं को यजुर्वेद में कड़े शब्दों में निन्दा की गई है, जो कि अध्ययन के समुचित उद्देश्यों को याद दिलाता है। केवल ब्रह्मविद्या अथवा वैश्वानरविद्या के अध्ययन हेतु आचार्य आश्रम में जाने के उल्लेख से भी ज्ञात होता है कि विभिन्न उद्देश्य से विभिन्न छात्रों की अध्ययनवधि अलग-अलग होती होगी। बाद में साहित्यिक स्रोतों में भी अल्पकाल के लिए आचार्यकुल में प्रविष्ट होकर किसी ग्रंथविशेष या विशेष विषय का अध्ययन करने की प्रथा थी। पाणिनी ने इस संदर्भ में सूत्र भी प्रतिपादित किए है। जो विद्यार्थी जितने समय के लिए गुरूकुल में प्रविष्ट हो अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत का नियम ले, उससे संबंधित उसका नाम भी पड़ जाता था। अथवा जिस विषय या ग्रंथ के पढ़ने के लिए वे उपस्थित होते, उससे भी उसका नाम रखा जाता था। उदाहरण के लिए 'सांवत्सरिक' ब्रह्मचारी, वह छात्र जो एक वर्ष के लिए ब्रह्मचारी बना है, 'मासिक', वह छत्रा जो एक मास के लिए ब्रह्मचारी बना है; 'अर्धमासिक', वह छात्र जो केवल 15 दिन के लिए ब्रह्मचारी बना है।

कुछ विषयों का अध्ययन-अध्यापन किसी खास ऋतु में ही होता था, जिसके संदर्भ में भी पाणिनी ने सूत्र प्रतिपादित किए है। जो ग्रंथ जिस ऋतु में पढ़ा-पढ़ाया जाता था, उसका भी वही नाम पड़ जाता था। जैसे- वसन्त ऋतु में जिस ग्रंथ का पाठ हो, उसका भी नाम 'वसन्स' पड़ जाता था।

स्मृतियों से ज्ञात होता है कि माघशुक्ल में वसंतपंचमी के दिन प्राचीन विद्यालयों का 'वसंत-सत्र' आरंभ होता था और उस समय वेदांगों का विशेषतः अध्ययन किया जाता था। इससे पूर्व श्रावणीपूर्णिमा से पौष-अमावस्या तक या भाद्रपूर्णिमा से माघ की अमावस्या तक साढ़े चार महिने का 'सत्र' विशेषतः छन्दों के अध्ययन या वैदिक परायण के लिए होता था। वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर आदि ऋतुओं में भी छात्र अल्पकालिक अध्ययन के लिए विषय चुन लेते थे। अध्ययन-अध्यापन की कालावधि पन्द्रह दिन, एक माह, एक ऋतु, एक वर्ष, 5 वर्ष, 9 वर्ष, 32 वर्ष, 36 वर्ष एवं इससे भी अधिक के सत्रों में संपादित होती थी।

परीक्षविधि के संदर्भ में हमें जो जानकारी मिलती है, उससे नियमित परीक्षा प्रणाली का अभाव इस काल में दिखता है। शिष्यों के ज्ञानार्जन के संदर्भ में आचार्य विभिन्न शिष्यों के अध्यापन अवधि में आवश्यकतानुसार बढ़ोतरी कर देते थे। जैसा कि हम उपकोराल कामलायन एवं इन्द्र के संदर्भ में पाते है। गुरू से अध्ययन करने के उपरांत श्वेतकेतु को पिता के प्रश्नों का सामना करना पड़ा था। पिता से प्राप्त ज्ञान के संदर्भ प्रवाहण जैवलि भी अपने पांचाल-परिषद् में श्वेतकेतु से प्रश्न किया था। याज्ञवल्क्य को भी जनक के विद्वत परिषद् में अनेक विद्वानों के प्रश्नों से दो चार होना पड़ा था। योग्यता का मूल्यांकन उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान से ही होता था एवं तदनुरूप आचार्य उनमें से प्रत्येक का समावर्तल अलग-अलग समय पर संपादित करते थे। सम्पूर्ण पाठ्य-तकनीक का निर्धारण मनोविज्ञान एवं शारीरिक विज्ञान की पृष्ठभूमि में की जाती थी जिससे कि शिष्य मानवता के सदगुणों से ओतप्रोत हो सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/11*
   वेदमनूच्याचार्योऽवसिनमनुशास्ति।.....
   स्वाध्यायान्माप्रमद।
2. *छांदोग्योपनिषद्, 6/1/2*
3. *छांदोग्योपनिषद् 4/10, उपकोसलोह कामलायन : सत्यकामेजाबाले ब्रह्मचर्यभुवास तस्य है*

द्वादशवर्षाण्यग्नीपरिचचार सह स्मान्यानन्तेवासिन : सामार्वतयं स्हं ह स्मैव न समावर्तयति।

4. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/10/11/3, भारद्वाजो ह त्रिभिर आयुर्भिः ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णि स्थविरं शयानम् इन्द्रः उपब्रज्य उवाच– 'भारद्वाज' यत् ते चतुर्थ आयुर दधाम किम् एतेन कुर्याः इति। ब्रह्मचर्य एवं एनेन चरेयम्।

5. छांदोग्योपरिषद्, 8/11/3 तान्येकशतं सम्पेदरेत्त द्यदाहुरेकशतं ह वै वर्षाणि मध्णवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच।

6. मनुस्मृति, 3/12, षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्य गुरौ त्रैसेदिकं व्रतम् अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।

7. आपस्तंबधर्मसूत्र, 1/2/2/12–16

8. यजुर्वेद, 40/12, अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायांरताः।

9. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/1

10. छांदोग्योपनिषद्, 5/11/2

11. अष्टाध्ययीसूत्रपाठ, 5/1/94, तस्य ब्रह्मचर्यम्।

12. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष

13. मनुस्मृति, 4/98

14. वही, 4/95

15. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष

16. छांदोग्योपनिषद्, 4/10/1

17. वही, 8/11/3

18. छांदोग्योपनिषद्, 6/1/3

19. वही, 5/3/1

20. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/1–8

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बीकानेर के प्रमुख पुष्करणा ब्राह्मणों का योगदान

डॉ. मुकेश हर्ष
व्याख्याता, (गेस्ट फेकल्टी), महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बीकानेर रियासत में हुए जन आन्दोलन, स्वतंत्रता आन्दोलन में सभी वर्गों के साथ पुष्करणा ब्राह्मण वर्ग के लोगों का स्वातंत्र्य संग्राम में अविस्मरणीय योगदान रहा। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जिन व्यक्तियों ने खादी का रुमाल भी हाथ में लेकर स्वतंत्रता की अलख जगाई वो सभी स्वतंत्रता सेनानी है। ब्राह्मण व पुष्करणा ब्राह्मण वर्ग का व्यक्ति जिन्होंने पौरोहित्य व पठन–पाठन के कार्य के साथ स्वतंत्रता ओन्दोलन में महती भूमिका निभाई। बीकानेर स्वतंत्रता संग्राम में रघुवर दयाल गोयल, पं. मघाराम वैद्य, सत्यनारायण पारीक, मूलचन्द पारीक, रामनारायण शर्मा, दाऊदयाल आचार्य, वैद्य गंगादत्त रंगा, लक्ष्मीनारायण हर्ष, सत्यनारायण हर्ष व प्रजामण्डल की अध्यक्षा लक्ष्मीदेवी आचार्य आदि का अविस्मरणीय योगदान रहा। इसी क्रम में प्रकाशित व अप्रकाशित स्वतंत्रता सेनानियों को परिचय प्रकाश में लाना आवश्यक है क्योंकि इनके प्रयासों से ही आज हम खुली सांस ले पा रहे है। आर.एस.ए. बीकानेर व अन्य साधनों व तथ्यों के द्वारा इनको प्रकाश में लाया गया है।

संकेताक्षर : *स्वतंत्रता संग्राम, बीकानेर रियासत, ब्राह्मण व पुष्करणा ब्राह्मण, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।*

बीकानेर राज्य में सन् 1900–49 तक जितने भी आंदोलन एवं जन जाग्रति फैलाने के प्रयास हुए, उसमे अनगिनत लोगों ने अपना प्रत्यक्ष–परोक्ष योगदान दिया। जिसमें ''पुष्करणा ब्राह्मण'' वर्ग के लोगों ने भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन आन्दोलनकारियों में से कई ऐसे व्यक्ति भी थे, जिन्होनें स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया और जेलों में दिल को दहला देने वाली, कुपित कर देने वाली कठोर यातनाएँ भुगतने के साथ राज्य से निर्वासित होकर एकांकी जीवन व्यतीत किया व अपार कष्ट झेले। ये ऐसे व्यक्ति थे जिनकी बात में बल था तथा जिनके एक ही इशारे पर जनता बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने को तैयार हो जाती थी। ऐसे व्यक्तियों को अगर लोक नेताओं की श्रेणी मे रखा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। महान पुष्करणा नेताओं ने तत्कालीन दिग्गज नेताओं के साथ मिल–जुलकर कार्य किया। जिनमें रघुवर दयाल गोयल, पं. मघाराज वैद्य, सत्यनारायण व स्व. मूलचंद पारीक, रामनारायण शर्मा (जीवित) आदि प्रमुख थे, जिनके जीवंत विचारों से यह विषय और प्रकाशित व सत्यता के साथ उद्घोषित हुआ।

यद्यपि सरकार ने केवल जेल यात्रा करने वाले व मार खाने वालों को ही पूर्ण स्वतंत्रता सेनानी माना है। इसके अतिरिक्त कई नेताओं से अधमरी हालत में हस्ताक्षर करवाकर कमजोर भी साबित करवाने का प्रयास किया। परन्तु वे सभी व्यक्ति इस महान स्वतंत्रता आंदोलन रूपी यज्ञ में भस्मसात् होने वाली विभूतियाँ व निधि है। इसके अतिरिक्त वे व्यक्ति भी स्वतंत्रता सेनानी कहलाने के योग्य है जिन्होनें किसी भी उपाय से चाहे खादी पहनकर, देश भक्ति के गीत गाकर या स्वतंत्रता सेनानियों को किसी भी प्रकार का सहयोग देकर इस आंदोलन को मजबूत बनाया हो चाहे वे जेल न गये हो वे सभी स्वतंत्रता सेनानी की श्रेणी मे आते हैं। ऐसे कुछ एक स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान को व्यक्त करने का एक छोटा सा प्रयास किया है। जिसके लिए मुझे स्वतंत्रता सेनानी सत्यनारायण पारीक व मूलचंद पारीक ने भी योगदान दिया है। इस प्रकार के स्वतंत्रता सेनानियों के निर्धारण में यद्यपि सभी को स्थान दे पाना संभव नहीं परन्तु इनमें से कुछ एक के वर्णन उल्लेखनीय है। घर की चारदीवारी को त्यागकर आई महिलाओं

 ISSN 2277-5587

का योगदान भी अनुपम है। इसके अतिरिक्त भी कई सेनानियों का वर्णन यहाँ पर नहीं किया जा सका है पर इसका मतलब यह नहीं लिया जा सकता कि वे अध्याय में स्थान पाने के योग्य नहीं वरन् वे भी अन्य सेनानियों के समान किसी भी प्रकार योग्यता में कम नहीं है। प्रमुख सेनानियों का वर्णन अग्रांकित है –

1 दाऊदयाल आचार्य

जन्म – 1919

मृत्यु – 1999

बीकानेर के प्रजा परिषद युग में दाऊदयाल आचार्य का भी एक विशिष्ट स्थान रहा है। संस्थाओं के निर्माण और नागरिक जीवन के सामान्य अधिकारों के लिए बिना आंदोलन चलाए भी, जो दमन का निरंतर शिकार होते रहे उनमें सर्व श्री रघुवर दयाल गोयल और गंगादास कौशिक के साथ दाऊदयाल आचार्य तीसरे व्यक्ति है।[1] श्री दाऊदयाल आचार्य का जन्म 25 नवम्बर, 1919 को बीकानेर के मध्य वित्तीय पुष्करणा ब्राह्मण परिवार में हुआ था। श्री आचार्य के पिता सिंकदराबाद में कार्य करते थे। अतः आपका बचपन सिंकदराबाद, हैदराबाद (दक्षिण) में ही बीता । परन्तु एल.एल.बी. की शिक्षा दाऊदयाल आचार्य ने बीकानेर में ही प्राप्त की।[2]

श्री दाऊदयाल आचार्य सन् 1935 में हैदराबाद से बीकानेर आये लॉ की डिग्री लेने से पहले वे बीकानेर के रघुवर दयाल गोयल वकील के मुंशी के रूप में वर्षो तक काम करते रहे। गोयल के निकट संपर्क से ही आपमें राष्ट्रीय भावनाएँ विकसित होने लगी और आचार्य में देश – सेवा के संस्कार सक्रिय होते गये। गोयल ने सन् 1942 में दाऊदयाल आचार्य और गंगादास सेवक को वनस्थली विद्यापीठ में पं. हीरालाल शास्त्री द्वारा आयोजित राजनैतिक कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण शिविर में भाग लेने के लिए भेजा।[3]

उनके वनस्थली से प्रशिक्षण प्राप्त कर वापिस बीकानेर लौटने पर ही 22 जुलाई, 1942 को गोयल की अध्यक्षता में बीकानेर राज्य प्रजा परिषद् की स्थापना हुई।[4] इसमें आचार्य ने एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में भाग लिया। जब 29 जुलाई, 1942 को बीकानेर सरकार ने रघुवर दयाल गोयल को बीकानेर से निर्वासित कर दिया तब वे जयपुर में जाकर रहने लगे। इस बीच दाऊदयाल आचार्य आवश्यक सलाह लेने अंग्रेजी अखबारों में प्रचारार्थ सूचना भेजने हेतु रघुवरदयाल गोयल से मिलने जयपुर गये किन्तु जब वे एक माह बाद वापिस बीकानेर लौट रहे थे तब रास्ते में ही पुलिस ने 29 सितम्बर को गिरफ्तार करके अनिश्चित काल के लिए उन्हें ''बीकानेर सेफ्टी एक्ट'' के अंतर्गत नजरबंद करके जेल भेज दिया।[5] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गोयल के निर्वासन् के आदेश जारी करने के दो दिन बाद ही दाऊदयाल आचार्य की पिटीशन राइटर की सनद को सरकार ने जब्त कर लिया था।[6] बीकानेर जेल में उन्हें उनके अन्य साथियों के साथ काफी शारीरिक कष्ट दिया गया। 2 फरवरी, 1943 को जब शासक गंगासिंह का देहांत हो गया और उनके उत्तराधिकारी के रूप में शार्दुलसिंहजी गद्दी पर बैठे तब उन्होनें राजबंदियों के प्रति सद्भावना दिखलाते हुए 16 फरवरी, 1943 को उन्हें अन्य बंदियों के साथ रिहा कर दिया गया।[7]

जेल से रिहा होने के पश्चात् वे गोयल के साथ रचनात्मक कार्यो में संलग्न हो गये और इसी क्रम में 25 मई, 1943 को उन्होनें गोयल के साथ मिलकर खजांची बिल्डिंग में एक खादी मंदिर की स्थापना की।[8] इसी के साथ 7 अक्टूबर, 1943 को उन्होनें अपने अन्य साथियों के साथ खादी मंदिर में गाँधी जंयती मनाई। जब 21 व 22 नंवबर, 1943 को लक्ष्मणगढ़ में सीकर राजनैतिक सम्मेलन हुआ, उसमें भी दाऊदयाल आचार्य ने भाग लिया।[9] जब 26 जनवरी का दिन आया तब आचार्य ने भी अपने अन्य साथियों सहित 26 जनवरी, 1944 को तिरंगा झण्डा फहराकर स्वतंत्रता दिवस मनाया। 25 मई, 1944 को जब बीकानेर नगर में ''कस्तूरबा मेमोरियल फण्ड'' एकत्र करने के लिए जो सभा की गई, उसमें भी आचार्य का सभा के संयोजक के रूप में सक्रिय योग रहा।[10] 26 अगस्त, 1944 को लालगढ़ महल में जब बीकानेर प्रजा परिषद् के अध्यक्ष रघुवरदयाल और शार्दुलसिंह के बीच चलने वाली वार्ता असफल हो गई तब उसी दिन रघुवरदयाल गोयल व गंगादास सेवक के साथ दाऊदयाल आचार्य को भी गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें अनूपगढ़ के किलें मे अनिश्चितकाल के लिए बंद कर दिया गया।[11] नजरबंदी के दौरान आचार्य का स्वास्थ्य काफी गिरने लगा किन्तु डॉ. व उच्चाधिकारियों के डर से उन्हें औषधि देने को तैयार नहीं थे। इससे उनकी हालत और खराब हो गई। इससे अधिकारी घबरा गये और उन्हें बीकानेर हॉस्पीटल में भर्ती करा दिया जहाँ बेहोशी की हालत में पुलिस ने एक कागज

पर हस्ताक्षर करवा लिये। इसके बाद पुलिस ने उन्हें लगभग छः माह तक नजरबंदी में रहने के पश्चात् रिहा कर दिया। इस तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होनें माफीनामें पर हस्ताक्षर स्वतः नहीं किये।[12]

आचार्य इसके पश्चात् कुछ समय तो राजनीति से दूर रहे किन्तु 25 दिसम्बर, 1945 को जयनारायण व्यास ने एक तार भेजकर शीघ्र पहुँचने का आदेश दिया। 31 दिसम्बर, 1945 को उदयपुर में जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में ''अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद्'' का अधिवेशन होने जा रहा था, अतः कार्यालय व्यवस्था हेतु व्यास ने आचार्य को उदयपुर बुलाया था। अधिवेशन की समाप्ति पर व्यासजी, आचार्य को अपने साथ दिल्ली ले गये और पं. जवाहर लाल नेहरू से उनकी मुलाकात करवायी।[13] इसके पश्चात् रघुवरदयाल गोयल ने 1946 में जब दुबारा निर्वासन् आज्ञा तोडकर बीकानेर राज्य में प्रवेश करने का निश्चय किया तो उन्होंने जयनारायण व्यास को पत्र लिखा कि आचार्य की अब बीकानेर में आवश्यकता है, अतः उन्हें शीघ्र बीकानेर भेज दिया जायें। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बीकानेर वापिस आने पर आचार्य ने देश के अनेक अंग्रेजी अखबारों में संवाददाता के रूप में कार्य किया व अपनी आजीविका कमाना शुरू कर दिया। गोयल ने बीकानेर व जयपुर से निर्वासित होकर अलवर में रह कर बीकानेर प्रजा परिषद् का कार्य प्रारंभ कर दिया था। आचार्य भी अलवर में रहकर प्रजा परिषद् के कार्य संचालन में सहयोग देने लगे।[14]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दूधवाखारा किसान आंदोलन के परिणामस्वरूप राजगढ़ क्षेत्र में ग्रामों में किसानों में जो जाग्रति आई थी, उसमें जाट नेताओं के साथ दाऊदयाल आचार्य का भी महत्वपूर्ण योग था। उन्होनें किसानों पर होने वाले जुल्मों को अंग्रेजी अखबारों में भेजकर देश के नेताओं का ध्यान राजगढ़ के किसानों की तरफ आकर्षित करवाया। 22 जुलाई, 1946 को ''बीकानेर राज्य प्रजा परिषद्'' की चौथी वर्षगांठ मनाने के उद्देश्य से राजगढ़ के किसान बडे उतावले हो रहे थे। सरकार ने वहाँपहले से ही धारा-144 लगा दी थी। अतः वहाँ की स्थिति बडी गंभीर हो गई थी। इस बात को ध्यान में रखकर प्रजा परिषद् की ओर से दाऊदयाल आचार्य को स्थिति नियंत्रण में रखने हेतु राजगढ़ भेजा। आचार्य ने वहाँ जाकर स्वामी कर्मानंद और स्थापना दिवस तिरंगे झण्डे के साथ आयोजित कराने में सफलता प्राप्त की। इससे सरकार और किसानों के टकराव का संकट टल गया।[15]

1947 के नवम्बर माह में आपने बीकानेर और भागलपुर रियासतों के संबंध में ''गुप्त व्यापार समझौते'' की सूचना ''हिन्दुस्तान टाइम्स'' नई दिल्ली में प्रकाशित करवाकर राज्य के लोगों एवं उससे बाहर राष्ट्रीय नेताओं को आश्चर्य चकित कर दिया। इस सूचना का बाद में बीकानेर राज्य के राजस्थान में विलीनीकरण होने पर व्यापक प्रभाव पडा।[16] सन् 1947 में बीकानेर राज्य प्रजा परिषद् की व्यापक उथल - पुथल में रघुवर दयाल गोयल कनिष्ठ सहायक आचार्य भी अपने नेता की भांति राज्य की राजनीति से अलग अलग पड गये। परिणामस्वरूप उन्होनें वकालत के पेशे को सक्रिय रूप से अपना लिया। बाद में वे कांग्रेस की सक्रिय सदस्यता से भी अलग हो गए क्योंकि उसमें भी अवसरवादिता बढने लगी।

दाऊदयाल आचार्य के समर्पणत्व को देखकर वयोवृद्ध सेनानी सत्यनारायणजी पारीक कहते है कि वे वास्तव में ''धुन के धनी'' है।[17] दाऊजी एक मित-भाषी, गंभीर और आदर्शवादी विचारों वाले व्यक्ति थे। वे सदा अखबारी प्रचार से दूर रहना चाहते थे। अपना कर्त्तव्य समझ कर देश के लिए उन्होनें जो कुछ किया, उसे न तो जुबान पर लाना चाहते थे न उसके किसी तरह के प्रतिदान की आशा करते थे। परन्तु वर्तमान राजनीतिक सिद्धान्तों से मेल नहीं रख पाने के कारण अब उन्होनें राजनीति से विराम ले लिया था।[18]

इस महान व्यक्ति का देहावसन् 3 अगस्त, 1999 को हुआ था । ऐसा व्यक्तित्व दुबारा इस धरती पर अवतरित नहीं होगा ।

2 वैद्य गंगादत्त रंगा

जन्म - 1919

मृत्यु - 1996

वैद्यराज श्री गंगादत्त रंगा का जन्म बीकानेर के पुष्करणा ब्राह्मण परिवार में श्री रूपचंद जी के यहाँ संवत् 1976 सन् 1919 में हुआ। 1931 में श्री रंगाजी अपने मामा के साथ कोलकाता चले गये। वहीं उनकी शिक्षा हुई। वहीं उन्होनें कलकते में चल रहे सत्याग्रह व राष्ट्रीय आंदोलन तथा अंग्रेजी सरकार की दमनात्मक नीति ने इन्हें राष्ट्रीयता की भावना से आलोड़ित कर दिया।

1937 में कलकत्ते में जब लक्ष्मी देवी आचार्य की अध्यक्षता में ''बीकानेर प्रजामण्डल'' का गठन हुआ।[19] तब रंगाजी ने प्रजामण्डल की प्रवृत्तियों में भाग लेना शुरू किया व 1938 में रंगाजी बीकानेर आये।[20] बीकानेर आगमन के पश्चात उन्होनें 1942 में राजकीय सेवा स्वीकार कर ली।[21] राजकीय सेवा में रहते हुए भी राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत होने के कारण वे प्रजा परिषद की प्रवृतियों में अत्यधिक रूचि लेते रहे।[22] सरकार ने उन पर दबाव डाला और उन्हे वेतन पदोन्नत्ति के कई प्रलोभन दिए कि किसी तरह वह रघुवर दयाल गोयल से अपना संबंध विच्छेद कर लें। परन्तु रंगाजी माने नहीं और उन्हें फंसाने के लिए जाल बिछाए जाने लगे। अंत में परेशान होकर उन्होनें 1946 में राजकीय सेवा से त्याग पत्र दे दिया। राजकीय सेवा से मुक्त होकर श्री रंगा पूरी शक्ति के साथ प्रजापरिषद के कार्य में लग गए और बीकानेर के जागीरी क्षेत्रों में जागीरदारों के अत्याचारों से प्रताडित किसानों में चेतना का संदेश फैलाने लगे।

कांगड काण्ड और रंगाजी

इन्हीं दिनों (1946) रतनगढ़ तहसील के 'कानगढ़' ग्राम में जागीरदार ने गाँव के किसानों से ली जाने वाली लाग-बाग को व उस समय बरती जाने वाली कठोरता को बढाने के आदेश दिये। इससे वहाँ की जनता त्रस्त हो गयी।[23] इस कारण गाँव के 35 व्यक्ति जो विभिन्न वर्गो से संबंधित थे महाराजा से शिकायत करने के लिए पहुँच गये जिससे ठाकुर साहब भी क्रुद्ध हो गये और उन्होनें उन्हें लाठियों से पिटवाया व मजबूरन गालियाँ व मार सही। औरतों की भी बेइज्जती की गयी व उनसे भी जुर्माना वसूल किया गया।[24]

इस दर्दनाक और दुर्भाग्यपूर्ण दास्तां को लेकर 'कांगड' के कुछ किसान बीकानेर ''राज्य प्रजा परिषद्'' में पहुँच गये और प्रजा परिषद् के स्वामी श्री सच्चिदानंद के नेतृत्व में सात कार्यकर्ताओं का एक दल इस मामले की जाँच करने के लिए कांगड गाँव भेजा गया। जिसमें वैद्य गंगादत जी रंगा थे।[25] रंगाजी सात सदस्यी दल में थे। वे उस समय प्रजा परिषद् में प्रधानमंत्री थे।[26]

एक नवम्बर को यह सब व्यक्ति कांगड ग्राम की सीमा पर जा पहुँचे, वहाँ लोगों से उन्होनें कथा सुनी। गाँव में अधिक दूर न जाकर वहाँ से लौट गए क्योंकि ठाकुर साहब के आदमी खड़े थे। फिर भी चार मील लगे होगें कि ठाकुर साहब के आदमियों ने इन सात कार्यकर्ताओं को घेर लिया व इन सबकी पिटाई की।[27] इन सब को दो दिन तक मारा व गाँव से निकाल दिया। सभी के, जिनमें रंगा जी भी शामिल थे, के कपडे उतार दिये, उन्हें खूब पीटा, उनके मलद्वार में पिसी हुई मिर्चो से भरे डंडे घुसेड़ दिये। श्री रंगाजी की शिखा उखाड़ दी तथा उनके घुटनों पर लकडियों की इतनी चोटें पड़ी थी कि कई वर्षो तक उनका घुटना ठीक से काम नहीं करता था। लगभग मृत्युपर्यन्त वे ठीक से चल भी नहीं सकें।[28] वास्तव में कांगड ग्राम की घटना व रंगाजी के साथ हुए अत्याचार को भूला नहीं जा सकता।

श्री गंगादत्त रंगा ने बाद में गाँधी जयंती के अवसर पर हरिजन सेवा का कार्य किया और हरिजन मौहल्लों की सफाई की जिसके परिणामस्वरूप उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया गया था । यहाँ तक स्थिति हो गई कि रंगाजी को सार्वजनिक नलों पर पानी भरना कठिन हो गया।[29] 1946 में प्रजा परिषद् ने बीकानेर के सूरतगढ, चुरू, गोगामेड़ी, राजगढ़, श्रीगंगानगर आदि में राजनैतिक सम्मेलनों का तांता लगा दिया था। श्री रंगा जी ने इन सम्मेलनों को सफल बनाने में अथक परिश्रम किया। बीकानेर में जब अंतरिम मंत्रिमण्डल की स्थिति आई तो प्रजा परिषद् के कुछ सदस्यों ने प्रजा परिषद् की अनुमति के बिना महाराजा से गुप्त समझौता करके मंत्रिमण्डल का गठन कर लिया था। प्रजा परिषद् ने इस मंत्रिमण्डल का विरोध किया ओर इस विरोध करने वालों में श्रीरंगा प्रमुख व्यक्ति थे।[30]

1947 की अगस्त की मध्य रात्रि को श्री गंगादत्त रंगा ने पुष्करणा चौक (वर्तमान नाम साले की होली) में गोकुल भाई भट्ट के हाथों में तिरंगा झण्डा फहराया।[31]

श्री रंगाजी ने राजकीय सेवा की, व्यापार किया व चिकित्सा का कार्य भी किया। 1944 से 1951 तक राजनीति में सक्रिय रहकर श्री रंगाजी ने प्रथम महानिर्वाचन के अवसर पर काँग्रेस से त्यागपत्र दे दिया था। वे बीकानेर नगर परिषद् और बीकानेर नगर काँग्रेस मंत्री रहे थे।[32] इस महान सेनानी ने आंदोलन में अभूतपूर्व योगदान दिया। इनकी मृत्यु 25 जनवरी, 1996 को हुई ।

3 श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष

जन्म - 1908

मृत्यु - 1957

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन में लक्ष्मीनारायण हर्ष का भी अद्वितीय योगदान रहा है। उनके साथ उनके भाई सत्यनारायण जी हर्ष भी इस

आंदोलन में कूद चुके थे। श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष का जन्म बीकानेर के एक संभ्रांत पुष्करणा ब्राह्मण परिवार में 10 अप्रेल, 1908 को हुआ था।

उन्होनें प्रारंभिक समय अपनी शैक्षणिक गतिविधियों में लगन व निष्ठा के साथ दिया। उन्होनें आयुर्वेद शास्त्र की उच्चतम शिक्षा प्राप्त की थी। वे बीकानेर के प्रतिष्ठित वैद्य थे।[33] इस क्षेत्र में उन्होनें काफी नाम कमाया था। बाद में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उनके हृदय में भी राष्ट्रीयता की भावनाओं का प्रसार किया। 1943 के प्रारम्भ में ही श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष बीकानेर राज्य प्रजा परिषद् में शामिल हुए। उन्होनें परिषद् के कार्यो में सक्रिय योगदान दिया। इसी कारण राज्य सरकार की श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष पर क्रूर दृष्टि रहने लगी। जिसका प्रभाव उनकी आजीविका और व्यवसाय पर भी एकदम विपरीत एवं बहुत बुरा पडा। परन्तु श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष के कदम सार्वजनिक एवं स्वातंत्रय क्षेत्र में निरंतर आगे ही बढते रहे।[34] प्रजा परिषद् में वे सक्रिय सदस्य की तरह कार्य करते रहे। श्री हर्ष 1946 तक प्रजा परिषद में उपाध्यक्ष भी रहे।[35]

सत्यनारायण हर्ष के बड़े भाई श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष प्रजा परिषद् से जुड़कर हरिजन आंदोलन में भाग लिया व राजकीय गुन्डों की मार के शिकार हुए।[36] इसके अलावा 2 अक्टूबर, 1946 को संगरिया में गाँधी जंयती पर जुलूसों पर रोक लगा दी गई व कई नेताओं को इस दौरान गिरफ्तार कर लिया गया। 29 अक्टूबर, 1946 को प्रजा परिषद् कार्यालय में इस संदर्भ में बैठक हुई थी, जिसमें श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष भी उपस्थित थे।[37] सन् 1947 में प्रजा परिषद् ने अस्पृश्यता निवारण आंदोलन शुरू किया इसमें श्री हर्ष ने भी बड़े उत्साह के साथ भाग लिया परिणामस्वरूप वे अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिए गये।[38] उनसे रोटी–बेटी का संबंध भी विच्छेद कर लिया गया था। फिर भी अपने पथ पर डटे रहे। उसके अलावा ''हरिजन दिवस'' व उनके मुहल्ले में किए गए सफाई कार्यक्रम व आंदोलन में भी श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष, छोटूलाल जी व्यास, किराडू जी, गंगादत्त जी रंगा आदि 18 सदस्यों के साथ सम्मिलित थे।[39] श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष बीकानेर नगर कांग्रेस के उपाध्यक्ष रहे तब लक्ष्मीनारायण हर्ष के घर गुण्डों का एक हुजूम गालियाँ देते हुए पहुँचा। उनकी पत्नी ने घर के किवाड़ बंद कर लिये तो हाथ में खुला छूरा लिए हुए एक गुण्डे ने उन्हें मारने की धमकी दी। पुलिस ने इस बारे में रिपोर्ट नहीं लिखी तो हर्षजी ने कांग्रेस कार्यालय में अपने बयान दर्ज करवाये व आक्रोश व्यक्त किया।[40]

श्री लक्ष्मीनारायण हर्ष ने प्रजा परिषद् के नेतृत्व में ''जागीरदारी प्रथा'' के विरोध में लोकमत बनाने का कार्य भी अत्यंत साहस के साथ किया व अपने राष्ट्र प्रेम का उदाहरण दिया।[41] वास्तव में इस पाराशर गोत्रीय पुष्करणा ब्राह्मण ने कई बाधाओं को झेलते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान दिया। जिसे किसी भी प्रकार से भुलाया नहीं जा सकता। इस महान स्वतंत्रता सेनानी का देहावसन् 1 मई, 1957 को हो गया।[42] भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् उसका सुख स्वयं ज्यादा समय तक नहीं भोगा बल्कि धरा के लिए यह धरोहर छोड़ दी।

4 श्री सत्यनारायण हर्ष

जन्म – 1919

मृत्यु – 1989

स्वतंत्रता सेनानी स्व. श्री सत्यनारायण हर्ष का जन्म अपने समय के जाने माने राजवैद्य श्री गोपालजी हर्ष के घर एक सभ्रांत परिवार में हुआ था। इनका जन्म 1 नवम्बर, 1919 को हुआ था। घर में पिता एवं उनके ज्येष्ठ भ्राता वैद्य श्री जीवणरामजी हर्ष के राजनीतिक व सामाजिक क्रियाकलापों का असर उन पर बाल्यकाल से रहा। विद्यार्थी जीवन में भी यह प्रभाव बना रहा। श्री हर्षजी ने ब्यावर में कान्फ्रेंस मे भाग लिया। जिसमें कॉमरेड एम. एन. राय और बम्बई के छात्र नेता के. एफ. नरीमन भी सम्मिलित हुए। स्वामी कुमारानंद इसके स्वागताध्यक्ष थे। इन्होनें छात्रों के सम्मुख स्त्री समस्या, छात्र और राजनीति व अन्य सामाजिक समस्याओं की विस्तार से चर्चा की।[43]

बीकानेर में तत्काल तो छात्रों की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई किन्तु 1941 में इस दिशा में कुछ गतिविधियाँ प्रारम्भ हो गई।[44] सन् 1941 के जून माह में श्री सत्यनारायण हर्ष ने कन्हैयालाल गोस्वामी, छोटूलाल व्यास आदि के साथ मिलकर ''छात्र साहित्य मण्डल'' नाम की एक संस्था स्थापित की। जिसका न कोई अध्यक्ष, न कोई मंत्री था। 18 जून, 1941 को इस संस्था ने बीकानेर शहर में एक सभा का आयोजन किया।[45] इस सभा में श्री सत्यनारायण हर्ष ने अपने भाषणों में सरकारी नीतियों की जमकर आलोचना की। सरकार की ओर से संगठन का उददे्श्य पूछने पर श्री सत्यनारायण हर्ष व गोस्वामी जी ने उतर दिया,

''समाज में जिन युवकों को खाने को अन्न और पहनने को कपडा नहीं मिलता हो तो उनको अपना संगठन बनाने की आवश्यकता नहीं होगी तो किसको आवश्यकता होगी।'' इन आरोपों से सरकार के कान खड़े होने स्वाभाविक थे। सरकार कुछ कार्यवाही करते उससे पहले ही वे दोनों 22 जून, 1941 को वापस बनारस चले गये।[46]

8 जून 1942, को जब महात्मा गाँधी द्वारा भारत छोडो आंदोलन शुरू किया गया। इसी समय श्री हर्ष ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध कार्यवाही करने में जुट गये। बनारस के अन्य छात्रों के साथ मिलकर वे बिजली की लाइनें रात को उड़ा देते। रात रात भर गंदे नालों में छिपकर आगे बढते। आस-पास के गाँवों में जाकर ग्रामीणों को इक्ट्ठा करते। इस कारण पं. मदन मोहन मालवीय डॉ. एस. राधाकृष्णन ने श्री सत्यनारायण हर्ष की शिकायत बीकानेर महाराज श्री गंगासिंह जी को की जो कि विश्वविद्यालय के चाँसलर थे और हर्ष जी को राज्य की ओर से छात्रवृति भी मिलती थी।[47] इन सबका परिणाम यह हुआ कि उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया व उन्हें एम.ए. की परीक्षा में बैठने नहीं दिया गया और उनके अध्ययन में भारी व्यवधान पडा, फिर भी ये सरकार विरोधी गतिविधियों में लिप्त रहे ।

इनके पिता श्री गोपालजी हर्ष एवं बड़े भाई श्री लक्ष्मीनारायण जी ने हरिजन मौहल्लों में जाकर उनके घर बैठकर घड़ों से पानी पिया और सडकों पर झाडू निकालें।[48] इसके फलस्वरूप इनके परिवार को प्रोत्साहित किया गया और न्यात्त बाहर करके हर्ष जी व उनके सभी बच्चों तक का पूर्ण सामाजिक बहिष्कार किया गया।[49]

ऐसी विषम परिस्थितियों मे भी श्री हर्ष जी ने हार नहीं मानी और अपने सिद्धान्तों पर अड़िग रहते हुए स्वतंत्रता प्राप्त करने के अधिकारों का समर्थन करते रहे। भारत माता की स्वतंत्रता के लिए आजन्म प्रयत्नरत रहकर हर्ष जी ने अपना अनूठा योगदान दिया। इन्हें शत् - शत् नमन। इस महान सेनानी का देहावसन् 1989 को हो गया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, सुमनेश जोशी 771, जयपुर पृ. 1973*
2. *वही, बीकानेर में एल.एल.बी. खुलने के बाद लॉ का अध्ययन किया ।*
3. *होम डिपार्टमेण्ट, बीकानेर (गोपनीय) 1945 नं. 101, हिस्ट्री भीट ऑफ, गंगादास सेवक पृ. 1-3 (रा.रा.अ.बी)*
4. *होम डिपार्टमेण्ट, बीकानेर (गोपनीय) 1945 नं. 101, हिस्ट्री भीट ऑफ, रघुवरदयाल गोयल, 1-4 (रा.रा.अ.बी)*
5. *दाऊदयाल आचार्य के राजनैतिक संस्मरण (टेप नं. 1-3) (रा.रा.अ.बी)*
6. *वीर अर्जुन 7 अगस्त, 1942 (रा.रा.अ.बी)*
7. *होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर (गोपनीय) 1945 नं. 101 हिस्ट्री भीट ऑफ रघुवर दयाल गोयल पृ. 1-7*
8. *होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर (गोपनीय) 1943 नं. प्ट पृ. 1-8 (रा.रा.अ.बी)*
9. *होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर (गोपनीय) 1943 नं. XCVIII पृ. 1-5 (रा.रा.अ.बी)*
10. *आज का बीकानेर, जनवरी 1945, राजपूताना रियासती कार्यकर्ता द्वारा प्रकाशित ।*
11. *वही हिस्ट्री भीट ऑफ रघुवरदयाल गोयल पृ. 1-7*
12. *दाऊदयाल आचार्य के राजनैतिक संस्मरण - टेप नं. 13 (रा.रा.अ.बी)*
13. *दाऊदयाल आचार्य के राजनैतिक संस्मरण (टेप नं. 13) (रा.रा.अ.बी)*
14. *बीकानेर राज्य में जिस किसी पर कोई जुल्म होता था तो वह व्यक्ति अलवर जाकर प्रजा परिशद कार्यालय में अपना दुःख दर्द दाऊदयाल आचार्य व गंगादास को सुनाया करते थे। वे वही से हिन्दी अग्रेजी समाचार पत्रों में उन मामलों को उठाने हेतु प्रकाशनार्थ भेजा करते थे।*
15. *दाऊदयाल आचार्य के राजनैतिक संस्मरण (टेप नं. 13) (रा.रा.अ.बी)*
16. *दाऊदयाल आचार्य के राजनैतिक संस्मरण (टेप नं. 13) (रा.रा.अ.बी)*
17. *सत्यनारायण पारीक जो उन्हें बडा भाई मानते थे कि उनके प्रति विचार है ।*
18. *राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, सुमनेश जोशी पृ. 772, जयपुर 1973*
19. *होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर (गोपनीय) 1937 ग्ग्टप पृ. 1-40 (रा.रा.अ.बी)*
20. *राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी सुमनेश जोशी पृ. 762, जयपुर 1973*
21. *वही, पृ. 762*

22. देखे बीकानेर प्रजा परिशद पेपर्स (रा.रा.अ.बी)
23. राज. में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, सुमनेश जोशी पृ. 762 जयपुर 1973
24. बीकानेर का राजनीतिक विकास और पं. मघाराम, सत्यदेव विद्यालंकार, पृ. 18–21
25. बीकानेर राज्य के राज. आंदोलन का इतिहास जीवनलाल डागा पेज 31, बीकानेर
26. बीकानेर का राजनीतिक विकास और पं. मघाराम, विद्यालंकार पृ. 193
27. बीकानेर राज्य के राज. आंदोलन का इतिहास 1942–49, जीवनलाल डागा पेज ए–31
28. राज. में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, सुमनेश जोशी पृ. 762 जयपुर 1973
29. वही पृ. 762
30. वही पृ. 762
31. वही पृ. 763
32. वही पृ. 763
33. राज. में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, सुमनेश जोशी पृ. 788 जयपुर 1973
34. वही पृ. 788
35. गंगादास कौशिक पेपर्स 1942–50 (रा.रा.अ.बी)
36. भारत के स्वतत्रंता आंदोलन में बीकानेर का योगदान, दाऊदयाल आचार्य पृ. 87, चेतना प्रकाशन बीकानेर 1997
37. वही पृ. 356
38. राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी – सुमनेश जोशी पृ. 788 जयपुर 1973
39. भारत के स्वतत्रंता आंदोलन में बीकानेर का योगदान दाऊदयाल आचार्य पृ. 424, चेतना प्रकाशन बीकानेर 1997
40. दाऊदयाल आचार्य के सं. टेप नं. 13 वां भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बीकानेर का योगदान पृ. 400–428
41. राज. में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी – सुमनेश जोशी पृ. 788 जयपुर 1973
42. वही पृ. 788
43. होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर (गोपनीय) 1910 ग्प्ट पृ. 1–5 (रा.रा.अ.बी)
44. वही पृ. 1–5
45. होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर (गोपनीय) 1941 प्प पृ. 53 (रा.रा.अ.बी)
46. होम डिपार्टमेण्ट बीकानेर (गोपनीय) 1941 प्प पृ. 53 (रा.रा.अ.बी)
47. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान दाऊदयालजी आचार्य पृ. 87 व दाऊजी के राजनैतिक संस्मरण (टेप) टेप नं. 13 (रा.रा. अ.बी)
48. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान, दाऊदयालजी आचार्य पृ. 419 चेतना प्रकाशन, बीकानेर 1997
49. वही पृ. 424

सांचौर का वीरवर शासक राव बलभद्र चौहान (बल्लू चौहान)

इन्दु
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सांचौर अपनी प्राचीन धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गतिविधियों के कारण प्रसिद्ध रहा है। इस नगर का प्राचीन नाम सत्यपुर था। सांचौर पर प्रतिहार, परमार, सोलंकी, दहिया, चौहान, खिलजी, पठान, मुगल एवं राठौड़ों का अलग- अलग समय पर आधिपत्य रहा था। मारवाड़ की पावन मरूधरा वीरवर योद्धाओं की जन्मस्थली रही है। इस पावन भूमि पर अनेक शूरवीर हुए है, इनमें से एक राव बलभद्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन अनवरत युद्धों में झोंक दिया, वह मुगल सम्राट शाहजहां का प्रमुख मनसबदार था। महाबत खां की 26 अक्टूबर 1634 (वि.सं. 1691) को मृत्यु हो जाने पर बल्लू चौहान और महेशदास राठौड़ बुरहानपुर से शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने शाही सेवा के अधीन रहकर पूर्ण निष्ठा और स्वामीभक्ति का परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर मुगल बादशाह शाहजहां ने वि.सं. 1699 (1642 ई.) को महेशदास व बल्लू चौहान को क्रमशः जालोर तथा सांचौर का परगना दिया और बल्लू चौहान को 700 जात एवं 400 सवार का मनसब देकर सम्मानित भी किया।" विगत के अनुसार राव बल्लू को सांचौर का पट्टा 2480000 दाम का मिला था। यह बल्लू की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। फलतः उसे सांचौर की गद्दी पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। राव बलभद्र ने जहां मुगल साम्राज्य के अधीन रहकर सेवा चाकरी की वहीं दूसरी और सांचौर में जनकल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वित करने के साथ ही ब्राह्मणों व चारणों को अनेक गांव सांसण व डोली के रूप में प्रदान किए। स्वनाम धन्य राव बल्लू चौहान प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे।

संकेताक्षर : *सांचौर, सत्यपुर, सोनगरा चौहान, सांचौरा चौहान, मुगल, राव बलभद्र (बल्लू चौहान), बल्लूओत चौहान।*

सांचौर राजस्थान के दक्षिण-पश्चिम में लूनी नदी के तट पर जालोर जिले में स्थित है। इस नगर का प्राचीन नाम 'सत्यपुर' था। सांचौर अपनी प्राचीन धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गतिविधियों के कारण प्रसिद्ध रहा है। राजा भोज के दरबारी प्रसिद्ध जैनकवि धनपाल ने सांचौर में सच्चउरिय महावीर उत्साह ग्रन्थ की रचना की। वि.सं. 1081 के इस प्रसिद्ध ग्रन्थ 'महावीरोत्साह' में इस नगर को 'सच्चूरि' कहा है। जैन कवि प्रभसूरी ने वि.सं. 1370 में अपनी कृति 'सत्यपुर काल' में इस नगर का नाम 'सच्चुर' बतलाया है।[1]

सांचौर पर प्रतिहार, परमार, सोलंकी, दहिया, चौहान, खिलजी, पठान, मुगल एवं राठौड़ों का अलग- अलग समय पर आधिपत्य रहा था। सांचौर नगर पहले आबू के परमारों के अधीन था, जो गुजरात के सोलंकियों के सामन्त थे। गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज प्रथम का वि.सं. 1051 (995 ई.) का दान पत्र तथा भीमदेव द्वितीय के वि.सं. 1242 (1185 ई.) के अभिलेख से ज्ञात होता है कि यहां सोलंकियों का शासन था। नैणसी की ख्यात के अनुसार सोलंकियों के बाद यहां विजयराज दहिया का शासन था। जालोर के ही सोनगरा चौहान जब सांचौर में रहने लगे तब सांचौरा चौहान कहलाए। जालोर का शासक सोनगरा चौहान कान्हड़देव का समकालीन साल्हा चौहान था। आल्हण चौहान (नाडोल) के पुत्र विजैसी ने विजयराज दहिया को मारकर सांचौर पर अपना अधिकार का लिया।[2] वि.सं. 1478 (1421 ई.) में मीर मलिक ने सांचौर पर आक्रमण किया और वरजांग युद्ध में मारा गया। मीर मलिक ने

सांचौर पर अधिकार कर लिया। जैसिघदे वरजांग का बड़ा पुत्र था पिता कि मौत कि बाद वि.सं. 1478 (1421 ई.) में उतराधिकारी बना। नैणसी के अनुसार यहां सांचौर का स्वामी रहा ओर सांचौर को मुसलमानों से पुनः प्राप्त किया। वरजांग के पुत्र जैसिंघदे तक सांचौर पर चौहानों का शासन रहा। इसके बाद सांचौर गुजरात के मुस्लिम शासकों के अधीन हो गया और प्रेम मुगल यहां का प्रशासक नियुक्त हुआ।[3] सांचौर परगना दिल्ली व गुजरात के मार्ग में स्थित होने के कारण कई मुस्लिम आक्रमणों का शिकार हुआ।

नैणसी के ख्यात से ज्ञात होता है कि तेजसी के समय सांचौर के मुसलमानों का अधिकार हो गया हैं। किन्तु तेजसी के भतीजे सोभा ने मुसलमानों से मेलमिलाप कर आधा सांचौर प्राप्त कर लिया था लेकिन गृह कलह में तेजसी के ज्येष्ठ पुत्र पीथमराव ने सांचौर की गद्दी प्राप्त की। उसने अपनी पुत्री का विवाह जोधपुर के राव सुजा (वि.सं. 1549–1572) से किया। तेजसी के पुत्र पीथमराव की मृत्यु पर उसका पुत्र बाधा सांचौर का स्वामी बना किन्तु जैसिंघदे के पौत्र एवं निम्बा के पुत्र राणा को यह अप्रिय लगा क्योंकि ज्येष्ठ होने के कारण वह अपने को गद्दी का हकदार समझता था इसलिए वह जोधपुर के राव मालदेव की सेवा में चला गया। राव मालदेव ने वि.सं. 1595 (1538 ई.) में जालोर, सिवाना और सांचौर पर अधिकार के लिए सेना भेजी उस समय राणा चौहान भी साथ में था । राव मालदेव की सेना का सांचौर स्वामी बाधा मुकाबला करने के बजाए सांचौर छोड़कर भाग गया और उस पर राव मालदेव का अधिकार हो गया इस प्रकार वाह्य शक्तियों के आक्रमण और पारस्परिक गृह कलह के कारण सांचौरा चौहान निर्बल हो गए और सांचौर की गद्दी से हाथ धो बैठे, उस पर जोधपुर का अधिकार हो गया।[4]

राव बलभद्र (बल्लू चौहान)

मारवाड़ की पावन मरूधरा वीरवर योद्धाओं की जन्मस्थली रही है। इस पावन भूमि पर अनेक शूरवीर हुए है, इनमें से एक राव बलभद्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन अनवरत युद्धों में झोंक दिया, वह मुगल सम्राट शाहजहां का प्रमुख मनसबदार था। फलतः उसे सांचौर की गद्दी पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। राव बलभद्र ने जहां मुगल साम्राज्य के अधीन रहकर सेवा चाकरी की वहीं दूसरी और सांचौर में जनकल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वित करने के साथ ही ब्राह्मणों व चारणों को अनेक गांव सांसण व डोली के रूप में प्रदान किए। स्वनाम धन्य राव बल्लू चौहान प्रभावशाली व्यक्तित्व का धनी था।

बादशाह शाहजहां की ओर से बल्लू चौहान को सांचौर का परगना व मनसब देकर सम्मानित करना किया था। महाबत खां की 26 अक्टूबर 1634 (वि.सं. 1691) को मृत्यु हो जाने पर बल्लू चौहान और महेशदास राठौड़ बुरहानपुर से शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने शाही सेवा के अधीन रहकर पूर्ण निष्ठा और स्वामीभक्ति का परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर मुगल बादशाह शाहजहां ने वि.सं. 1699 (1642 ई.) को महेशदास व बल्लू चौहान को क्रमशः जालोर तथा सांचौर का परगना दिया और बल्लू चौहान को 700 जात एवं 400 सवार का मनसब देकर सम्मानित भी किया।[5] विगत के अनुसार राव बल्लू को सांचौर का पट्टा 2480000 दाम का मिला था।[6] यह बल्लू की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। साथ ही बल्लू चौहान वीर पुरुष था। साथ ही बल्लू चौहान ने मुगल बादशाह शाहजहां की सेवा में रहकर विभिन्न अभियानों में भाग लिया तथा बल्ख व बदख्शां के अभियान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार जान पड़ता है कि मुगल बादशाह शाहजहां के मनसबदारों में बल्लू चौहान को भी विशेष स्थान प्राप्त था।

बल्लू चौहान ने धरमत के युद्ध में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वि. सं. 1714 में दिल्ली तख्त को लेकर दाराशिकोह के नेतृत्व वाली शाही सेना व औरंगजेब की सेना में उत्तराधिकार संघर्ष उज्जैन में धरमत ग्राम के समीप हुआ जो कि इतिहास में धरमत के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में दाराशिकोह के पक्षधरों के अलावा बल्लू चौहानों ने भी शाही सेवा में रहकर अपनी वीरता का परिचय दिया। इस अभियान में बल्लू चौहान भी शाही सेना की ओर से अपने 99 अश्वारोहियों सहित सम्मिलित हुआ था। उस समय उसका मनसब 700 जाल व 300 सवार का था। धरमत के युद्ध में दाराशिकोह के नेतृत्व वाली शाही सेना की पराजय के पश्चात औरंगजेब के बादशाह बनने पर बल्लू चौहान के परिस्थितियों को भांपते हुए औरंगजेब की सेवा में आ गया था।[7]

राव बल्लू चौहान का एक अभिलेख सांचौर नगर से प्राप्त हुआ है जिसमें माघ सुदि 5 वि. सं. 1710 का अभिलेख प्रकाश में आया है। इससे पता चलता है कि बल्लू ने अपनी मां सन्तोखदे राठौड़ जो अपने पति के पीछे सती हुई थी, की याद में यह स्मारक बनाया था। इस अभिलेख में बल्लू चौहान का नाम 'राव

शिरोमणिराज श्री बलिभद्र' के रूप में उत्कीर्ण है तथा इसके तीन पुत्रों वेणीदास, नरहरदास और सूरजमल के नाम भी अंकित हैं। उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में यह अभिलेख सांचौर नगर के बाहर एक जलाशय के तट पर बनी छतरी में लगा हुआ था। छतरी ध्वस्त होने पर चौहानों ने सांचौर नगर के पास एक जलाशय के तट पर नवनिर्मित शिव मन्दिर के पिछवाड़े यह अभिलेख लगा दिया है। इतिहास की रिक्त कड़ियों को जोड़ने में यह अभिलेख महत्वपूर्ण है। सांचौरा चौहानों के राजघरानों से वैवाहिक संबंध रहे हैं, जो कि उनके यश, कीर्ति तथा ऐतिहासिक सामाजिक महत्व के द्योतक हैं। राव बल्लू का नाम सांचौर के स्वामी के रूप में इस अभिलेख में आया है। अभिलेख 23 पंक्तियों में लिपिबद्ध है। संगमरमर के पत्थर पर उत्कीर्ण यह शिलालेख सांचौर के चौहान शासक राव बल्लू पर प्रकाश डालने वाला एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। इसी शिलालेख के माध्यम से उसकी माता, पिता और पुत्रों के बारे में प्रामाणिक जानकारी मिलती हैं।[8]

राव बल्लू चौहान का सांचौर में मृत्यु स्मारक लेख मिला है जिसमें उसकी मृत्यु वि. सं. 1717 माह वदि 11 को होना अंकित है। इस खण्डित प्रतिमा में राव बल्लू को अश्वारूढ और हाथ में तलवार लिए बतलाया गया है तथा इसके पास ही एक स्त्री को हाथ जोड़े खड़ी दर्शाया है। इस शिलालेख में राव बल्लू के पिता सामन्तसी का भी नामोल्लेख हुआ है। शिलालेख इस प्रकार है।"संमत १७१७ माह वदि ११..... सामत सत..... बलभ (द्र)....."।[9]

राव बल्लू चौहान बहुमुखी प्रतिभा का धनी था, जो एक कुशल एवं न्यायप्रिक शासक की विशेषता है। उसने शाही सेवा में रहते हुए बुरहानपुर की लड़ाई, दौलतखाना की चढ़ाई, बल्ख बदख्शां का अभियान, उजबकों पर सैन्य कार्यवाही, धरमत का युद्ध और खजुआ के युद्ध में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन अभियानों में इसके सभी भाई काम आए, लेकिन बल्लू चौहान अपने जीवन को अक्षुण्ण बनाकर एक के बाद एक हुए सैनिक अभियानों में जूझता रहा और वतन के प्रति उसने अपना मोह बनाए रखा। उसकी चारित्रिक विशेषताएं इतनी प्रभावी थीं कि स्वयं बादशाह ने उसे घोड़ा और सांचौर का पट्टा प्रदान किया, वहीं कवियों ने उस पर कई गीतों की रचना कर उसे अजर-अमर कर दिया। राव बल्लू चौहान दानप्रिय शासक था। उसने सांसण व डोली के रूप में अनेक गांव चारणों व ब्राह्मणों को प्रदान कर दानशीलता का परिचय दिया था।

नैणसी द्वारा लिखित मारवाड़ रा परगना की विगत द्वितीय भाग हैं जिसमें परिशिष्ट 1 (क) बात परगने सांचौर री के अनुसार तैजसी चौहान तथा राव बल्लू के द्वारा सांचौर नगर में कुएं खुदवाये गये । यहां की पैदावार बरसात पर निर्भर थी। बल्लू चौहान के समय फसल की पैदावार अच्छी होती थी। सांचौर के 28 गांव नदी के किनारे बसे होने के कारण नदी में पानी की आवक होने पर यहां गेंहूँ, चने की फसल होती थी। उस समय सांचौर में ओसवाल महाजन, श्रीमाली ब्राह्मण, राजपूत, सकना (तुर्क मुसलमान) एवं किसान कौमें निवास करतीं थीं।

मुगल बादशाह शाहजहां एवं औरंगजेब के समय अनेक युद्ध अभियानों में बल्लू ने पूर्ण निष्ठा एवं स्वामीभक्ति से सेवा की तथा वि.सं. 1717 में उसका निधन हुआ। इस प्रकार राव बल्लू प्रारम्भ से ही युद्ध अभियानों में व्यस्त रहा और फिर सांचौर मिल जाने के बाद भी सांचौर में कम ही रहा तथा शाही अभियानों में भाग लेता रहा अंत में उसकी नियुक्ति पूरब में हुई और वहीं उसे रहना पड़ा फिर भी उसने सांचौर में एक कुंआँ खुदवाया और नगर की शोभा बढ़ाने के लिए एक उद्यान लगवाया। उजड़े गांवों जोरादर, मण्डाली को बसाया। राजस्व व्यवस्था के लिए कानूनगों की नियुक्ति की। राव बल्लू का ज्येष्ठ पुत्र वेणीदास बल्लू की मृत्यु के बाद सांचौर का शासक बना। उसका मनसब 400 जात, 100 असवारों कर रखा। राव बल्लू से उसका मनसब कम कर दिया था इसलिए सांचौर के साढ़े तीन हिस्से फतह खां जालौरी को प्रदान कर दिये गये मारवाड़ रा परगना री विगत भाग 1 के अनुसार सांचौर परगना वि.सं. 1721 में खरीफ की फसल से बाद शाह के ही अधिकार में रहा। इसी वर्ष रबी की फसल के समय 24,80000 दान में महाराजा जसवंतसिंह को दे दिया गया जो उनकी मृत्यु तक अर्थात् वि.सं. 1735 तक सांचौर जोधपुर राज्य के अधिकार में ही रहा।[10]

महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने अजीतसिंह को जसवंतसिंह का उत्तराधिकारी नहीं माना और मारवाड़ राज्य इन्दरसिंह को दे दिया। औरंगजेब के समय 1679 ई. में जालोर, भीनमाल और सांचौर परगने पालनपुर के दीवान फतह खां को लौटा दिये गये। फतह खां जालोरी पठानों का उत्तराधिकारी था। वि.सं. 1740 से 1755 तक सांचौर परगना दाम के आधार पर अलग-अलग हिस्से में कासम गुजराती फतह खां राव बल्लू के वंशजों सैसमल, सुरजमल, सावलदास चौहान, कमालखां आदि को मिलता रहा।

इसका कोई स्थायी एवं सम्पूर्ण स्वामी नहीं रहा। 1680 में दुर्गादास और सोनंग ने जालोर के फतेह खां पर हमला किया। राठौड़ों की लूटपाट से तंग आकर 1698 ईस्वी में औरंगजेब ने दुर्गादास से संधि कर ली। औरंगजेब ने अजीतसिंह को मुगल मनसबदार बना दिया तथा सिवाना, जालोर तथा सांचौर के परगने दिये। इस प्रकार सांचौर जोधपुर राज्य के अधिकार में आ गया।[11] वि.सं. 1755 (1698 ई.) के बाद सांचौर के चौहान जागीरदार जोधपुर राज्य की सेवा में रहने लगे इस प्रकार सांचौरा चौहानों का अधिकार सांचौर पर सदा के लिए समाप्त हो गया। फिर भी सांचौर के गांव चौहान जागीरदारों के पट्टे में ही रहे क्योंकि वे उनकी वतन जागीरें थी। सांचौर में सोनगरा चौहानों की सभी वतन जागीरें राव बल्लू के वंशजों की होने से यह बल्लूओत चौहान कहलाये। यह वतन जागीरें हरियाली, कारोला, धमाणा, रतौडा, विरोल, आकोली, झांब, डडूसन, चारणीम, बावरला, परावा, झोटडा, चितलवाना, होथीगांव, केसूरी, डबाल, सिवाडा, पुर आदि प्रमुख थीं। इस प्रकार विक्रम संवत 1755 में मारवाड़ महाराजा अजीतसिंह राठौड़ के सांचौर पर आधिपत्य के पश्चात स्वतंत्रता प्राप्ति तक सांचौर तत्कालीन मारवाड़ रियासत का एक हिस्सा रहा। बल्लूओत सांचौरा चौहानों की वतन जागीरों के अध्ययन से एक तथ्य विशेषतः रेखांकित करने योग्य हैं कि चौहानों की पैतृक भूमि में बराबर बंट रहने की परम्परा थी, जिसे चारणीया बंट कहते थे। इसके अनुसार ठाकुर की मृत्योपरान्त उसके पुत्र बराबर ठिकाणे में बंट पाने के हकदार होते थे। ठाकुर के साथ उसके भाईयों को भी सम्मान प्राप्त था।

इस प्रकार बल्लू चौहान महान योद्धा एवं जनहितैशी शासक था। चौहानों के हाथ से सांचौर निकल जाने के बाद वीरवर बल्लू के नेतृत्व में सांचौरा चौहानों का भाग्योदय हुआ और उसने मुगल सेवा और स्वामिभक्ति से अपने पूर्वजों का परगना सांचौर पुनः प्राप्त किया। बल्लू चौहान धरम्मत के युद्ध में औरंगजेब के विरुद्ध लड़ा था तथा धौलपूर के अभियान में बल्लू का पुत्र नहरदास ने भी औरंगजेब की सेना से लोहा लिया था। इसलिए बल्लू चौहान से अन्तर्मन में नाराज था किन्तु उसकी मुगल सेना में स्वामीभक्ति एवं वीरता को ध्यान में रखकर औरंगजेब ने उसको सांचौर परगने का स्वामी बनाये रखा लेकिन उसकी नियुक्ति सुदूर पूर्व में की और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। बल्लू की मृत्योपरान्त उसके वंशज सांचौर परगने के हिस्सेदार तथा बाद में वे ठिकाने के ठाकुर बनकर रह गये। यह सब देशकाल जन्य परिस्थितियों का परिणाम था। सांचौर में मुगल अधिकारियों की नियुक्ति तथा दाम बढ़ने और अकाल पड़ने की दोहरी मार से वार्षिक लगान जमा कराने में सांचौरा चौहानों की असफलता एवं निर्बलता ने उनसे सांचौर के स्वामित्व से हमेशा के लिए वंचित कर दिया और जोधपुर के राठौड़ राजघराने के निष्ठावान सामन्त बने रहकर सेवा करने तक सीमित कर दिया।

बल्लू चौहान ने जनकल्याण के लिए अनेक कार्य किए अतः वह जनप्रिय शासक था। नैणसी द्वारा लिखित ''मारवाड़ रा परगना की विगत" द्वितीय भाग में वर्णित 'बात परगने सांचौर री' के अनुसार तैजसी चौहान तथा राव बल्लू के द्वारा सांचौर नगर में कुएं खुदवाये गए। यहां की पैदावार बरसात पर निर्भर थी। बल्लू चौहान के समय फसल की पैदावार अच्छी होती थी। सांचौर के 28 गांव नदी के किनारे बसे होने के कारण नदी में पानी की आवक होने पर यहां गेंहू, चने की फसल होती थी। उस समय सांचौर में ओसवाल महाजन, श्रीमाली ब्राह्मण, राजपुत, सकना (तुर्क मुसलमान) एवं किसान कौमें निवास करती थीं। राव बल्लू चौहान दानप्रिय शासक था। उसने सांसण व डोली के रूप में अनेक गांव चारणों व ब्राह्मणों को प्रदान कर दानशीलता का परिचय दिया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *के. के. सहगल, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : जालोर, राजस्थान सरकार जयपुर, 1973*
2. *डॉ. दशस्य शर्मा, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, द्वितीय संस्करण, पृ. 164*
3. *मनोहर सिंह राणावत (संपादक), मुहणोत नैणसी री ख्यात, पृ. 231-232*
4. *डॉ. हुकमसिंह भाटी, सोनगरा सांचौरा चौहान का इतिहास, प्रथम संस्करण, 1987, जालोर, पृ. 130-131*
5. *मनोहर सिंह राणावत (संपादक), मुहणोत नैणसी री ख्यात, भाग-1, पृ. 234*
6. *वात परगने सांचौर री, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर*
7. *डॉ. हुकमसिंह भाटी, सांचौर नरेश महाराव बलभद्र चौहान का इतिहास, प्रथम संस्करण, 2004, जोधपुर, पृ. 62*
8. *डॉ. हुकमसिंह भाटी, पूर्वोक्त, पृ. 252-253*
9. *डॉ. हुकमसिंह भाटी, पूर्वोक्त, पृ. 63*
10. *मारवाड़ रा परगना री विगत भाग -1*
11. *वही।*

बिहार में सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव

नागेश्वर कुमार
सहायक प्राध्यापक, बी. एम. डी. कॉलेज, दयालपुर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

20 वीं सदी के आगमन के साथ बिहार के प्रबुद्ध वर्ग में बिहारी पहचान की ललक करवटें ले रही थी। औपनिवेशिक भारत में प्रांतीय पुनर्गठन के लिए पूर्व से चल रहे आंदोलन बिहार आंदोलन से, बिहार को अपनी पहचान के साथ स्वीकृति भी मिली। 1 अप्रैल 1912 को बंगाल का पुनर्गठन किया गया, जिसमें बंगाल से बिहार और उड़ीसा का अलग कर स्वतंत्र प्रान्त का स्थान दिया गया तथा 23 वर्षो के बाद उड़ीसा को भी स्वतंत्र प्रान्त का स्थान दिया गया। बिहार राज्य के गठन के लिए चलाए जा रहे आंदोलन में कायस्थ जाति का महत्वपूर्ण स्थान था और उनका स्वार्थ भी स्पष्ट था कि वे हीं उस समय बिहार की शिक्षित जाति थे जो सरकारी नौकरियों में बंगालियों के वर्चस्व से त्रस्त थे। यद्यपि अन्य शिक्षित समुदाय का भी उन्हें समर्थन प्राप्त था, तथापि यह स्पष्ट था कि बिहार प्रांत बनने से सबसे अधिक लाभ उन्हें ही मिलना था और मिला भी, क्योंकि वे ही सर्वाधिक शिक्षित थे। बिहार के दूसरी अन्य जाति के लोगों में भी असंतोष देखा गया तथा जातीय संगठन स्थापित कर जाति विशेष में जागृति लाने का प्रयत्न किया गया।

सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव मानव जीवन के विभिन्न पक्षों पर पड़ा। शिक्षा व्यवस्था भी इससे अछूता नहीं रह सका। किन्तु इसका दुखद पक्ष यह है कि राजनेताओं ने शिक्षा का व्यवसायीकरण कर दिया। आज बिहार की शिक्षा व्यवस्था पूंजीपतियों की कैद में हो गयी है। निश्चित रूप से सरकारी विद्यालयों में मध्याह्न भोजन के साथ शिक्षा की व्यवस्था की गयी है, वह स्तुत्य है। किन्तु दूसरी ओर निजी विद्यालयों के भव्य और आलीशान भवन, चमचमाते उपष्कर, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ड्रेसकोड के साथ चमचमाते जूते सामान्य जन ही नहीं, सभी को लुभा रहे है। गांव से लेकर शहरों तक असंख्य निजी विद्यालय खुल गए है, जहां नामांकन के समय से लेकर विद्यालय छोड़ने तक लाखों रूपएँ से वसुल किए जाते है। विद्यालयों द्वारा ही पुस्तकें, ड्रेस, कॉपी तथा अन्य सामान प्रदान किए जाते है, जिसके मनमाना मूल्य वसूल किए जाते है। राजनेताओं के संरक्षण/नियंत्रण में ये विद्यालय दिनदुना अर्थोपार्जन कर रहे है। सरकार का इन पर कोई नियंत्रण नहीं है।

संकेताक्षर : *औपनिवेशिक, प्रांतीय पुनर्गठन, जातीय संगठन, व्यवसायीकरण, अर्थोपार्जन।*

शिक्षा और समाज का अटुट सम्बंध है। शिक्षा समाज के नव–निर्माण के लिए होता है और समाज के बिना शिक्षा की कल्पना शून्य में विचार को ढुंढ़ने के समान है। समाज के प्रत्येक अंग का समान विकास में 'उच्चता की भावना' तथा 'हिनता की भावना' समान रूप से जिम्मेदार है। शिक्षा प्राप्त करना सबका समान अधिकार है जिससे समाज का सम्यक रूप से विकास हो सके। अंग्रेजी शासन काल में शिक्षा प्राप्त करने का समान रूप से सभी वर्गों के अधिकार की बात करने का कोई अर्थ ही नहीं था। यद्यपि समाज सुधार का प्रयत्न दयानन्द सरस्वती, राम मोहन राय, रानाडे आदि मनीषियों ने 19 वीं सदी के अंत और 20 वीं सदी के प्रारंभ किया था, तथापि यह सुधार समानता के लिए नहीं था, साथ ही यह सुधार, क्षेत्रीय स्तर तक केन्द्रित रह गया। समाज के पिछड़े और दलितों को उच्च वर्गीय लोगों की तरह समान रूप से अधिकार नहीं दिया गया। परिणाम स्वरूप उनके मन में रूक–रूक के समाज के उच्च वर्गीय लोगों के प्रति द्वेष और विरोध का स्वर उठ

खड़ा होता था जिसे सामन्तवादी सोच के लोग दबा दिया करते थे। जमींदारी प्रथा के विकास के साथ जमींदारों को बिना पारिश्रमिक दिए इन पिछड़े वर्ग के लोगों से अपने खेतों में कार्य करवाना, जमींदारी प्रथा का आवश्यक अंग था जिसे ये दलित अपनी नियति मानकर जीवन जीने का प्रयत्न करते थे। किन्तु समय-समय पर इन पिछड़ों और दलितों के बीच कोई आकर शांत पानी में हलचल पैदा कर जाता था जो धीरे-धीरे अधिकार की लड़ाई के रूप में परिवर्तित होती चली गयी।

बिहार में सामाजिक परिवर्तन का इतिहास बहुत देर से प्रारंभ हुआ किन्तु तीव्र गति से आगे बढ़ता गया। 20 वीं सदी के आगमन के साथ बिहार के प्रबुद्ध वर्ग में बिहारी पहचान की ललक करवटें ले रही थी। औपनिवेशिक भारत में प्रांतीय पुनर्गठन के लिए पूर्व से चल रहे आंदोलन बिहार आंदोलन से, बिहार को अपनी पहचान के साथ स्वीकृति भी मिली। 1 अप्रैल 1912 को बंगाल का पुनर्गठन किया गया, जिसमें बंगाल से बिहार और उड़ीसा का अलग कर स्वतंत्र प्रान्त का स्थान दिया गया तथा 23 वर्षो के बाद उड़ीसा को भी स्वतंत्र प्रान्त का स्थान दिया गया। बिहार राज्य के गठन के लिए चलाए जा रहे आंदोलन में कायस्थ जाति का महत्वपूर्ण स्थान था और उनका स्वार्थ भी स्पष्ट था कि वे हीं उस समय बिहार की शिक्षित जाति थे जो सरकारी नौकरियों में बंगालियों के वर्चस्व से त्रस्त थे। यद्यपि अन्य शिक्षित समुदाय का भी उन्हें समर्थन प्राप्त था, तथापि यह स्पष्ट था कि बिहार प्रांत बनने से सबसे अधिक लाभ उन्हें ही मिलना था और मिला भी, क्योंकि वे ही सर्वाधिक शिक्षित थे। बिहार के दूसरी अन्य जाति के लोगों में भी असंतोष देखा गया तथा जातीय संगठन स्थापित कर जाति विशेष में जागृति लाने का प्रयत्न किया गया।

स्वतंत्रता के सामाजिक समानता के लिए अथवा सामाजिक बुराई दूर करने के लिए कई आंदोलन चलाए गए जिसके परिणाम उत्साह-वर्धक तो नहीं थे, किन्तु निराशाजनक भी नहीं थे। यद्यपि 20 वीं सदी के प्रारंभ में सामाजिक आंदोलन 'जनेऊ' धारण करने तथा अपने नाम के अंत में 'सिंह' उपनाम लगाने के साथ प्रारंभ हुआ था। जिसका स्पष्ट अर्थ ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के साथ सामाजिक समानता का स्थान पाना उद्देश्य था, जो कालान्तर में शासन में जातिय संख्या के अनुसार हिस्सेदारी में परिवर्तित हो गए। समाज के पिछड़ी जातियों के लोग समाज में स्थापित उच्च जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, भूमिहार तथा कायस्थ) की श्रेष्ठता की भावना तथा शोषणपूर्ण नीति के विरूद्ध सामाजिक संघर्ष या आंदोलन का मार्ग अपनाया अब तक सामाजिक आंदोलन की बागडोर अलग-अलग जाति संगठनों के हाथों में थी, किन्तु स्थितियां अब एक संयुक्त संगठन की मांग कर रही थी। इसी पृष्ठभूमि में 30 मई 1933 को शाहाबाद जिला के करगहर में 'त्रिवेणी' संघ का जन्म हुआ। इसके जन्मदाताओं में चौधरी जे0 एन0 पी0 मेहता, सरदार जगदेव सिंह यादव तथा डॉ0 शिवपूजन सिंह। प्रथमतः इस संघ का संगठन कुशवाहा क्षत्रिय सभा, यादव क्षत्रिय सभा तथा कुर्मी क्षत्रिय सभा के रूप में जिला स्तर पर होना प्रारंभ हुआ, किन्तु उद्देश्य तथा कार्यक्रम शोषित-शासित तथा दलित अर्थात् सभी अडन्नत समाज के उन्नति के लिए 'त्रिवेणी संघ' की स्थापना की गयी। इस 'त्रिवेणी संघ' के स्थापना का विचार सर्वप्रथम सरदार जगदेव सिंह के मन में आया, इसलिए उन्हें त्रिवेणी संघ की माता की संज्ञा दी जाती है। प्रारंभ में जिला बोर्डो के निर्वाचन में इस त्रिवेणी संघ को सफलता नहीं मिल सकी, किन्तु आंदोलन निरंतर जारी रहा तथा पिछड़ी जातियों के बीच समानता पाने की ललक पैदा हो चुकी थी। यही समानता की ललक ने उन्हें शिक्षा प्राप्ति करने के लिए उत्साहित भी किया।

अंग्रेजी शासन में 1871 में सर्व प्रथम जनगणना हुआ जिसके प्रतिवेदन के प्रकाशन के पश्चात जातीय विमर्श और आंदोलन को जन्म दिया। क्योंकि इस जनगणना में जातीय आधार पर जनगणना किया गया था तथा प्रतिवेदन में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि किस जाति की संख्या कितनी है। इस जातीय जनगणना ने सामाजिक आंदोलन की आधारशीला रख दी। जातीय आधार पर गोलबंदी और दूसरे जाति के विरूद्ध आंदोलन का यह क्रम निरंतर स्वतंत्रता प्राप्ति तक चलता रहा। स्वतंत्रता के पश्चात् यह आंदोलन समानता के लिए ही नहीं, वरन् शासन में समान भागीदारी ही नहीं जातीय संख्या के अनुसार भागीदारी के लिए संघर्ष का कार्यक्रम आगे बढ़ता गया जिसका स्पष्ट प्रभाव शिक्षा-व्यवस्था पर पड़ा और बिहार की शिक्षा-व्यवस्था को तार-तार कर दिया।

शिक्षा-व्यवस्था का प्रमुखतम अंग छात्र होता है। जब-जब छात्रों में असंतोष विकसित होता है और

समय पर उसका समाधान नहीं हो पाता है, तब छात्र असंतोष का विष्फोट होता है और सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था टूटने के कगार पर पहुंच जाती है। यद्यपि सदैव छात्रों की मांग उचित तथा व्यवहारिक नहीं होती है, तथापि प्रशासकीय उदासीनता के कारण यह असंतोष उत्तरोत्तर विकसित होते जाता है।

स्वतंत्रता के कुछ ही वर्षो बाद छात्रों का असंतोष उभर कर पटना विश्वविद्यालय में आया। 12 अगस्त 1955 को पटना विश्वविद्यालय के छात्रों ने सरकारी नीतियों के विरूद्ध आंदोलन प्रारंभ कर दिया तथा प्रदर्शन कर दिया। पुलिस ने छात्रों पर गोली चला दी जिसमें दीनानाथ पांडेय और एक अन्य छात्र मारे गए। जे0 पी0 ने इस गोली कांड की तीव्र भर्त्सना करते हुए कहा कि ऐसा ब्रिटिश राज में भी नहीं हुआ था। प्रजा सोशलिस्टों और साम्यवादियों ने संघर्ष समिति का निर्माण किया तथा छात्रों ने अपनी संघर्ष समिति बनाई। कांग्रेस सरकार के विरूद्ध इस जन आंदोलन के क्रम में नवादा में भी छात्रों के प्रदर्शन पर गोली चली और दो व्यक्ति मारे गए। छात्र-युवा आंदोलन सम्पूर्ण बिहार में उठ खड़ा हुआ जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा व्यवस्था कमजोर होने लगी। अब यह भी राजनीतिक हस्तक्षेप से निर्धारित होने लगी तथा राजनीतिज्ञ खुलेआम छात्र-समूह का उपयोग अपने हित में करने लगे। इसके अतिरिक्त इस छात्र आंदोलन ने कोई अन्य प्रभाव नहीं छोड़ा।

9 अगस्त 1965 को पटना बंद का आयोजन किया गया। पटना के गांधी मैदान में डॉ0 लोहिया ने जनसभा को संबोधित किया तथा उसी रात डॉ0 लोहिया के साथ भोला प्रसाद सिंह, रेवती कांत सिन्हा, राम एकबाल सिंह, भाकपा नेता और विद्यायक सुनील मुखर्जी गिरफ्तार कर लिए गए। इन गिरफ्तारी के विरूद्ध अगले दिन गांधी मैदान में सभा में पुलिस ने जमकर लाठियां चलायी जिसने रामानन्द तिवारी, कर्पूरी ठाकुर, रामचरण सिंह, पृथ्वीनाथ तिवारी, योगेन्द्र ठाकुर, चन्द्रशेखर सिंह, रामावतार शास्त्री बुरी तरह घायल हो गए। कपिलदेव सिंह, सभापति सिंह, तुलसी दास मेहता, जगदेव प्रसाद आदि गिरफ्तार कर लिए गए। किन्तु आंदोलन रूका नहीं, दिनानुदिन और तीव्र होता चला गया।

1966 में मुख्यमंत्री कृष्ण बल्लभ सहाय के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार थी जिसका विरोध खुले रूप से किया जा रहा था। 10 दिसम्बर 1966 को मुजफ्फरपुर के रामदयालु सिंह कॉलेज में पुलिस ने गोली चलायी जिसमें इतिहास विभाग के एक प्रोफेसर निगमानन्द कुंवर और एक छात्र महेश शाही मारे गए। पुलिस की निर्ममता का यह जिता-जागता उदाहरण था। पुलिस की गोली से एस प्रोफेसर तथा छात्र के मारे जाने की सूचना से सम्पूर्ण मुजफ्फरपुर क्या संपूर्ण बिहार स्तंब्ध रह गया। बिना किसी सूचना के सम्पूर्ण मुजफ्फरपुर की सभी दुकानें बंद हो गयी। मुजफ्फरपुर में श्मसान की शांति फैल गयी। चाय, नास्ता, कपड़ा, किराना यहां तक कि दवा की दुकानें भी बंद हो गयी। लगता था कि कर्फ्यू लग गया हो। ऐसा बंद न देखा, न सुना। देखते-देखते यह छात्र आंदोलन अब जन आंदोलन बन चुका था तथा कांग्रेसवाद के विरूद्ध सभी विरोधी राजनीतिक दल आंदोलन को गति देने लगे।

इसी पृष्ठभूमि में सम्पन्न हुए आम चुनाव में कांग्रेस के बीस वर्षों के अनवरत शासन का अंत हुआ। 1967 के इस काल-खंड में पिछड़ी जातियों का सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन सत्ता के केन्द्र तक पहुंचने लगा। किन्तु पिछड़ों के आपसी एकात्मकता के अभाव में चार वर्षो में पिछड़ों-दलितों के पांच मुख्यमंत्री बने-महामाया प्रसाद, सतीश प्रसाद, हरिहर प्रसाद सिंह तथा कर्पूरी ठाकुर। सदी के आरंभ में जनेऊ धारण करने नाम के अंत में सिंह लगाने से जो आंदोलन प्रारंभ हुआ था, अब इन समुदायों के सिंहासन पर जा बैठने के अवसर पर जा पहुंचा था।

इस काल-खंड की एक और महत्वपूर्ण घटना यह हुयी कि अंग्रेजी को अनिवार्य विषय की व्यवस्था समाप्त कर दी गयी। परिणाम स्वरूप आनेवाले वर्षो में विश्वविद्यालयों में, यहां तक कि उन दिनों के अभिजात्य माने जाने वाले पटना विश्वविद्यालय में भी छात्रों की सामाजिक संरचना बदलने लगी। पिछड़ी जातियों के ग्रामीण छात्रों की संख्या इन विश्वविद्यालयों में बढ़ने लगी। इसके साथ ही परीक्षाओं में कदाचार छात्रों का जन्म सिद्ध अधिकार माना जाने लगा जिसे राजनीतिक दलों के नेताओं ने सत्ता लोलुपता के उद्देश्य से कदाचार करने के लिए उकसाया तथा उनका समर्थन प्राप्त किया। महामाया प्रसाद जैसे नेता 'मेरे जीगर के टुकड़े' कह कर आंसू बहा कर छात्रों को अपने पक्ष में करने का कार्य तो किया ही साथ ही, उन्हें कदाचार के लिए प्रोत्साहित भी किया। दूसरी ओर जातीय राजनीति के जहर ने 1965 के बाद से ही बिहार के विश्वविद्यालयों में अपना प्रभाव छोड़ने लगा

था। कृष्ण बल्लभ सहाय के मुख्यमंत्री काल में छात्र–युवकों पर हुए गोली कांड तथा 1967 में बिहार के मुख्यमंत्री बने महामाया प्रसाद सिन्हा द्वारा छात्रों को 'मेरे जीगर के टुकड़ों' के नाम के संबोधन के साथ प्रदेश में शैक्षणिक वातावरण का तीव्र गति से पतन होने लगा। परीक्षाओं में कदाचार का दौर निकल पड़ा। परीक्षा औपचारिकता मात्र बन कर रह गया। शिक्षक, अभिभावक या समाज के प्रबुद्धजन आंख खोलकर इस प्रहसन का देख रहे थे। क्योंकि बिहार के विश्वविद्यालयों में जातीय वर्चस्व स्थापित था, जहां यदा–कदा समानान्तर दूसरी जातीय संगठन से संघर्ष भी होता रहता था जिसका प्रभाव विश्वविद्यालय के शिक्षण कार्य से लेकर परीक्षा पर भी होता था। बिहार के प्रायः सभी विश्वविद्यालय पर प्रारंभ से ही जातीय वर्चस्व की राजनीति की छाया में संचालित होते थे। उदाहरणार्थ, पटना विश्वविद्यालय जहां प्रारंभ में कायस्थों का वर्चस्व था जो बाद में भूमिहारों के प्रभाव में चला गया, मगध विश्वविद्यालय पर प्रारंभ से ही राजपूतों के प्रभाव के अधिन माना जाता रहा है; बिहार विश्वविद्यालय पर भूमिहारों का; भागलपुर विश्वविद्यालयों में कायस्थ और भूमिहार के बीच वर्चस्व का द्वन्द चलता रहा है। इसी तरी बिहार के सभी विश्वविद्यालयों पर किसी जाति विशेष का दबदवा बना रहा है और उन्हीं के निदेशानुसार विश्वविद्यालय संचालित होते रहे है। निसंदेह किसी विशेष व्यक्ति या जाति के निदेश पर चलने से भ्रष्टाचार तथा अन्य अनियमितता होना असंभावित नहीं माना जा सकता है। किन्तु इस सत्य को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है कि इस जातीय एकाधिकार ने पठन–पाठन से लेकर परीक्षा तथा मूल्यांकन कार्य को प्रभावित किया तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा–व्यवस्था के परिकल्पना को चकनाचूर कर दिया। शिक्षा माफियाओं ने शिक्षा को व्यवसाय बनाकर, बिहार के उर्जावान पीढ़ी–दर–पीढ़ी को बर्बाद करता रहा। सहकारिता माफिया, कोयला माफिया या अन्य माफिया ने तो मात्र कुछ धन लूटे, किन्तु इन शिक्षा माफियाओं ने तो बिहार के भविष्य को ही अन्धकारमय बना दिया।

जो अपने जीवन काल में ही अपने नाम पर स्कूल–कॉलेज खोलते हैं, वे अपने जीवन काल में ही अपना श्राद्ध कर लेते है। क्योंकि उन्हें अपने संतानों पर विश्वास नहीं होता है कि वे उनका श्राद्ध करेंगे या नहीं। बिहार में अधिकांश राजनीतिज्ञ यही कार्य कर रहे थे। बिहार के कांग्रेस के वरिष्ठ नेता राम लखन सिंह यादव के पुत्र प्रकाश चंद्र जहां अपने पिता के नाम पर और संरक्षण में प्रायः 60 कॉलेज और स्कूल चलाते रहे हैं, वहीं नागेन्द्र झा के पुत्र मदन मोहन झा ने अपने पिता के नाम पर 'नागेन्द्र झा महिला कॉलेज' की व्यवस्था के सूत्रधार बने। इसी मदन मोहन झा ने 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ टेकनॉलाजी एण्ड मैनेजमेंट' खोलकर अंतर विश्वविद्यालय शिक्षा परिषद् से डाटा प्रोसेसिंग का कार्य प्राप्त किया जिसके अध्यक्ष उनके पिता के द्वारा नियुक्त रूपनारायण झा थे। जबकि इस संस्था को डाटा प्रोसेसिंग के पर्याप्त साधन ही नहीं थे। सरकार को सात लाख का चूना लगा दिया तथा पटना के फ्रेजर रोड स्थिति मौर्या डाटा प्रोसेसिंग एण्ड कन्सलटेन्ट से चुपचाप यह कार्य करवाया। 1983 में होनेवाली इन्टर की परीक्षा के साढ़े तीन लाख छात्रों के रजिस्ट्रेशन कार्ड की तैयारी की जिम्मेदारी मंत्री पुत्र को दिया गया। उसी तरह रघुनाथ झा जो सीतामढ़ी में अपने नाम पर एक कॉलेज खुलवाया तो राजो सिंह नें अपने क्षेत्र में अपने नाम के साथ कई राजनेताओं के नाम पर स्कूल–कॉलेज खोलवा दिए। इन संस्थानों में अपनें अयोग्य प्रिय पात्रों को नियुक्त कर दिया। ये संस्थान धन संग्रह का केन्द्र बन कर रह गया, इन संस्थानों का शिक्षा से दूर–दूर का नाता नहीं था।

1974 में बिहार में स्वातंत्रयोत्तर भारत का सबसे बड़े छात्र–युवा आंदोलन का केन्द्र स्थल बन गया। प्रारंभ में यह आंदोलन मंहगाई और भ्रष्टाचार के विरूद्ध प्रदेशव्यापी आंदोलन था किन्तु कालांतर में इंदिरा सरकार के विरूद्ध एक राजनीतिक आंदोलन हो गया। वस्तुतः सम्पूर्ण बिहार में विश्वविद्यालय के छात्र अपनी दैनिक समस्याओं के लिए जुलूस प्रदर्शन करते थे। इस समय मगध विश्वविद्यालय के कुलपति ने बिहार के तत्कालीन शिक्षा मंत्री विद्याकर कवि के पुत्र को नाजायज ढंग से ग्रेस मार्क्स देकर परीक्षा में उत्तीर्णकर दिया जिसके विरूद्ध छात्रों का आक्रोश उफान पर आ गया तथा आंदोलन उठ खड़ा हुआ। धीरे–धीरे सम्पूर्ण बिहार मे यह आक्रोश देखने को मिला। 8 फरवरी 1974 को बिहार राज्य छात्र सम्मेलन बुलाया गया जिसमें पटना और बिहार विश्वविद्यालय के छात्र सम्मिलित हुए। पुनः 17–18 फरवरी 1974 को दो दिवसीय छात्रों का सम्मेलन बुलाया गया जिसमें 70 कॉलेजों में 250 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में आठ–सूत्री मांगे बनायी गयी तथा

राज्यव्यापी आंदोलन का फैसला लिया गया। 18 मार्च को विधान सभा घेराव करने का निर्णय लिया गया। सम्पूर्ण बिहार में धरना जुलूस और प्रदर्शन होने लगा। 24 फरवरी को मुख्यमंत्री के आवास के समक्ष 200 छात्रों ने अनशन किया। पुनः 18 मार्च 1974 का ऐतिहासिक दिन, जिसमें छात्रों ने नारा लगाया ''गुजरात की जीत हमारी है, अब बिहार की बारी है''। सरकारी निषेद्य, पाबंदी, रोड, प्रशासनिक प्रतिबंध के बाद भी पटना में छात्रों का जन–सैलाव उमर पड़ा। 29 मार्च को जे0 पी0 भी इस आंदोलन में सम्मिलित हो गये। इस छात्र आंदोलन ने बिहार ही नहीं हिन्दुस्तान के इतिहास को स्थापित कर दिया। सम्पूर्ण देश में कांग्रेसी सरकार ने 'इमरजेंसी' लगा दिया तथा शासन अपने हाथों में ले लिया विरोधी नेताओं को जेल में डाल दिया गया। पर आंदोलन चलता रहा अनंतोगत्वा 1977 के चुनाव में इंदिरा जी की सरकार पराजित हो गयी और छात्र आंदोलन जीत गया।

सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव मानव जीवन के विभिन्न पक्षों पर पड़ा। शिक्षा व्यवस्था भी इससे अछूता नहीं रह सका। किन्तु इसका दुखद पक्ष यह है कि राजनेताओं ने शिक्षा का व्यवसायीकरण कर दिया। आज बिहार की शिक्षा व्यवस्था पूंजीपतियों की कैद में हो गयी है। निश्चितरूप से सरकारी विद्यालयों में मध्याह्न भोजन के साथ शिक्षा की व्यवस्था की गयी है, वह स्तुत्य है। किन्तु दूसरी ओर निजी विद्यालयों के भव्य और आलीशान भवन, चमचमाते उपष्कर, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ड्रेसकोड के साथ चमचमाते जूते सामान्य जन ही नहीं, सभी को लुभा रहे है। गांव से लेकर शहरों तक असंख्य निजी विद्यालय खुल गए है, जहां नामांकन के समय से लेकर विद्यालय छोड़ने तक लाखों रूप से वसुल किए जाते है। विद्यालयों द्वारा ही पुस्तकें, ड्रेस, कॉपी तथा अन्य सामान प्रदान किए जाते है, जिसके मनमाना मूल्य वसूल किए जाते है। राजनेताओं के संरक्षण/नियंत्रण में ये विद्यालय दिनदुना अर्थोपार्जन कर रहे है। सरकार का इन पर कोई नियंत्रण नहीं है।

अनेकानेक कोचिंग सेंटर गांव से लेकर नगरों तक में विकसित हो रहे है तथा मध्यमवर्गीय परिवार इनके प्रति रुझान बढ़ता जा रहा है। इन कोचिंग संस्थानों में अपार भीड़ देखने को मिलती है जो छात्र विद्यालय/महाविद्यालय में उपस्थित नहीं होते वे सभी इन कोचिंग संस्थानों में शत–प्रतिशत उपस्थित रहते है। शिक्षा के समान अवसर प्रदान करना सरकार का दायित्व होता है किन्तु इस असमानता के कारण सम्पूर्ण शिक्षा–व्यवस्था पतन के गर्त में जा रही है। राजनेताओं के नियंत्रण/संरक्षण के कारण सरकारी स्तर पर इन संस्थानों का भौतिक सत्यापन भी नहीं किया जाता है और किया भी जाता है तो मात्र दिखावा ही होता है। उसी तरह कितना शुल्क या अन्य मद में राशि ली जाएगी इस पर भी सरकार की कोई नियमावली नहीं है। वस्तुतः शिक्षा व्यवस्था में समान अवसर की व्यवस्था तथा शिक्षा को समाज के उत्थान के लिए अनुकूल बनाना ही उन्नति के मार्ग को प्रेरित करेगा। शिक्षा भी समाज के आत्मज्ञान और समाज के उत्थान के मार्ग को उत्प्रेरित करने के लिए ही होता है और इसी में सामाजिक परिवर्तन के मर्म भी अन्तरनिहित होता है। विद्यालयी शिक्षा से महाविद्यालयी/ विश्वविद्यालयी शिक्षा/व्यवसायिक शिक्षा/चिकित्सा शिक्षा/अन्य शिक्षा के उद्देश्य को छात्रों ही नहीं अभिभावकों को भी ज्ञात करना ही नहीं रचनाशीलता की ओर प्रेरित करना सार्थक होगा। शिक्षा का उद्देश्य समाज का उत्थान तथा प्रगति के मार्ग पर ले चलने के लिए होता है। इसलिए समाज के वास्तविक विकास के लिए समाज में एकरूपता के साथ अवसर की समानता के साथ शिक्षा की समानता आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रसन्न कुमार चौधरी तथा श्री कांत–बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, पृ. 225*
2. *उपरोद्धत– पृ. 113*
3. *उपरोद्धत– पृ. 113*
4. *शोध–निदेशक डॉ. राजीव नयन झा के वार्ता के क्रम में जानकारी, दिनांक 27.09.2021 जो उस समय वहां के छात्र थे। तथा सेवा–निवृत प्रो. अरूण कुमार सिंह के रामदयालु सिंह से वार्ता क्रम में जानकारी, 27.07.2021*
5. *प्रसन्न कुमार चौधरी और श्री कांत–बिहार में सामाजिक विकास के कुछ आयाम, पृ. 225*
6. *उपरोद्धत –पृ. 225*
7. *विकास कुमार झा– बिहार में राजनीति का अपराधीकरण, पृ. 322*
8. *उपरोद्धत –पृ. 314*
9. *उपरोद्धत –पृ. 315*
10. *उपरोद्धत –पृ. 316*

डॉ. एम. आर. जयकर एवं संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव

डॉ. दिनेश कुमार गहलोत
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

डॉ. एम.आर. जयकर संविधान सभा के एक महत्वपूर्ण सदस्य थे। वे संविधान सभा में बॉम्बे से निर्वाचित हुये थे। हालांकि उन्होंने सभा के तीन सत्रों में सक्रिय भूमिका के पश्चात् इस्तीफा दे दिया था लेकिन संविधान निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा 13 दिसम्बर, 1946 को सभा में लाये गये उदेश्य प्रस्ताव में संशोधन प्रस्ताव उनकी दूरदर्शिता और विधि में पारगंतता को स्पष्ट करता हैं। वे हिन्दू महासभा से जुड़े थे, लेकिन मुस्लिम लीग की सभा में अनुपस्थिति के मायने वे समझते थे। इस शोध पत्र द्वारा संविधान निर्माण में डॉ. एम.आर. जयकर के योगदान को स्पष्ट करना उदेश्य हैं।

संकेताक्षर : *संविधान सभा, उदेश्य प्रस्ताव, संशोधन प्रस्ताव, देसी रियासतें।*

भारतीय संविधान निर्माण में अनेक लोगों का योगदान है। जिन परिस्थितियों में संविधान का निर्माण किया गया था, उनको अनुभूत करते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान एक सुंदर दस्तावेज है। संविधान निर्माण में समाज के सभी वर्गों तथा हितों का प्रतिनिधित्व करने वालों का योगदान रहा है। कैबिनेट मिशन योजना के तहत् सभा में 389 सदस्य होने चाहिए थे। जिनमें से 296 सदस्य ब्रिटिश भारत तथा 93 सदस्य देसी भारत से लिये गये। सभा में निर्वाचित और मनोनीत दोनों प्रकार के सदस्य थे। सभा में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, जैन सभी समुदाय के लोग थे। सभा में दलित, कबायली, महिला, गोरखा हितों की बात करने वाले लोग थे।

9 दिसंबर, 1946 को सभा की प्रथम बैठक डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में हुई। 24 जनवरी, 1950 को सभा की अंतिम बैठक हुई। सभा के कुल 12 अधिवेशन हुये। सभा में सामान्य, मुस्लिम तथा सिख तीन वर्ग थे। सभा के चुनावों में कांग्रेस को 208 तथा मुस्लिम लीग को 73 स्थान प्राप्त हुए थे। संविधान सभा के लिए निर्वाचित स्थानों में भारतीय जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र की उत्कृष्टम विभूतियाँ शामिल थी।[1] कांग्रेस के टिकट पर जीतने वालों में 30 व्यक्ति कांग्रेस के बाहर से थे। सभा में शिक्षाविद्, व्यापारी, पत्रकार, वकील, चिकित्सक, लेखक इत्यादि सभी वर्गों के लोग शामिल थे। 9 दिसंबर, 1946 को सभा की प्रथम बैठक में 207 सदस्यों ने भाग लिया। मुस्लिम लीग ने सभा का बहिष्कार किया था जबकि देसी रियासतों के प्रतिनिधित्व के स्वरूप पर निर्णय होना शेष था।

संविधान निर्माण में एम.आर. जयकर का भी महत्वपूर्ण योगदान है। मुकुंद रामराव जयकर (एम. आर. जयकर) का जन्म 13 नवंबर, 1873 को हुआ था। वे महान् स्वतंत्रता सेनानी थे। बॉम्बे उच्च न्यायालय में उन्होंने वकील के रूप में भी अपनी सेवायें दी। 1932 में वे संघीय न्यायालय [Federal Court] में न्यायाधीश बने। 1932 में गाँधी एवं डॉ. अंबेडकर के बीच हुये पूना पैक्ट में वह भी तेज बहादुर सप्रु के साथ शामिल थे। हिंदू महासभा के मुख्य सदस्यों में रहे डॉ. एम. आर. जयकर इसके पहले अध्यक्ष भी रहे हैं। उन्होंने 1929 में हिंदू लॉ रिसर्च एंड रिफॉर्म एसोसिएशन की स्थापना भी की। स्वराज पार्टी से जुड़े रहे डॉ. जयकर सप्रु समिति के भी सदस्य रहे हैं। जिस समिति ने संविधान निर्माण हेतु संविधान सभा की मांग की थी तथा अपना संविधान भी बनाया था। 1946 में वे कांग्रेस के टिकट पर संविधान सभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए थे। महत्वपूर्ण भूमिका के निर्वहन के बाद उन्होंने सदस्यता छोड़ दी थी। 10 मार्च, 1959 को डॉक्टर जयकर का निधन हुआ था।

9 दिसंबर, 1946 को सभा की प्रथम बैठक डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में हुई। इस दिन विभिन्न देशों के शुभकामना संदेश पढ़ने के बाद डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का सभापति के रूप में उद्‌बोधन हुआ। इसके बाद सभापति ने सभी सदस्यों से अपना परिचय पत्र पेश करने तथा रजिस्टर में हस्ताक्षर करने का आह्‌वान किया। कुल 207 सदस्यों ने हस्ताक्षर किये। डॉ. एम. आर. जयकर बम्बई के उन 19 सदस्यों में से एक थे जिन्होंने अपना परिचय पत्र सौंपते हुये रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये। बम्बई की सूची में डॉक्टर एम. आर. जयकर का नाम तीसरे स्थान पर अंकित है।[2]

13 दिसंबर, 1946 को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक विस्तृत उद्‌बोधन देते हुए सभा में उद्देश्य प्रस्ताव (लक्ष्य मूलक प्रस्ताव) रखा। इस प्रस्ताव में कुल आठ बिंदु थे जो इस प्रकार से है–[3]

(i) यह संविधान सभा भारतवर्ष को एक पूर्ण स्वतंत्र गणतंत्र [Republic] घोषित करने का दृढ़ और गंभीर संकल्प प्रकट करती हैं और निश्चय करती हैं कि उसके भावी शासन के लिए एक विधान बनाया जाये।

(ii) जिसमें उन सभी प्रदेशों का एक संघ [Union] रहेगा जो आज ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के अंतर्गत तथा इनके बाहर भी है और जो आगे स्वतंत्र भारत में शामिल होना चाहते हो।

(iii) और जिसमें उपर्युक्त सभी प्रदेशों को, जिनकी वर्तमान सीमा चाहे कायम रहे या संसद और बाद में विधान के नियमानुसार बने या बदले, एक स्वाधीन इकाई या प्रदेश का दर्जा मिलेगा वह रहेगा। उन्हें वे सब शेषाधिकार प्राप्त होंगे व रहेंगे जो संघ को नहीं सौंपें जायेंगें।

(iv) जिसमें स्वतंत्र भारत तथा उसके अंगभूत प्रदेशों और शासन के सभी अंगों की सारी शक्ति और सत्ता जनता द्वारा प्राप्त होगी।

(v) जिसमें भारत के सभी लोगों को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के अधिकार, व्यक्तिगत स्थिति व सुविधा की तथा मानवी समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों को प्रकट करने की, विश्वास व धर्म की, ईश्वरोपासना की, काम–धंधे की, संघ बनाने व काम करने की स्वतंत्रता के अधिकार रहेंगे और माने जायेंगें।

(vi) जिसमें सभी अल्पसंख्यकों, पिछड़े हुये व कबायली प्रदेशों तथा दलित और पिछड़ी हुई जातियों के लिए अत्यधिक संरक्षण विधि रहेगी।

(vii) जिसके द्वारा इस गणतंत्र के क्षेत्र की अक्षुण्णता रहेगी और जल, थल और हवा पर उसके सब अधिकार, न्याय और सभ्य राष्ट्रों के नियमों के अनुसार रक्षित होंगे।

(viii) और यह प्राचीन देश संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने और संसार की शांति तथा मानव जाति का हित साधन करने में अपनी इच्छा से पूर्ण योग देगा।

इस प्रकार से लक्ष्य मुल्क प्रस्ताव में भावी संविधान की रूपरेखा निर्धारित की गई। 13 दिसंबर को ही पुरुषोत्तम दास टंडन ने अपने विस्तृत उद्‌बोधन द्वारा इस प्रस्ताव का समर्थन किया। 13 दिसंबर को पंडित नेहरू के अलावा श्री टंडन का ही उद्‌बोधन हुआ था। 14 एवं 15 दिसंबर को संविधान की कोई बैठक नहीं हुई थी। 16 दिसंबर, 1946 को बैठक के प्रारंभ में ही इस उद्देश्य प्रस्ताव पर डॉ. एम. आर. जयकर द्वारा संशोधन पेश करते हुये लंबा उद्‌बोधन हुआ। हम सब जानते हैं कि उद्देश्य प्रस्ताव सभा के प्रथम सत्र (9 से 23 दिसंबर, 1946) में पारित नहीं हो पाया था। वह प्रस्ताव 22 जनवरी, 1947 को सभा के दूसरे सत्र में स्वीकृत हुआ था। इस संदर्भ में प्रायः यह पढ़ने एवं सुनने को मिलता है कि डॉ. जयकर के संशोधन प्रस्ताव के कारण यह प्रस्ताव शीघ्र पारित नहीं हो पाया। कई बार डॉ. जयकर को उद्देश्य प्रस्ताव विरोधी भी कह दिया जाता है। इस आलेख के माध्यम से हम इस संदर्भ में वस्तुस्थिति को स्पष्ट करना चाह रहे हैं। स्वयं डॉ. जयकर इन गलतफहमियों से परिचित थे। इसलिए उन्होंने अपने उद्‌बोधन के प्रारंभ में ही इसका स्पष्टीकरण दिया था।

डॉ. जयकर ने अपने उद्‌बोधन की शुरुआत में 13 दिसंबर को पंडित नेहरू द्वारा उद्देश्य प्रस्ताव रखते हुये दिये सुंदर वक्तव्य की प्रशंसा की। उन्होंने कुछ गलतफहमियों की चर्चा की। उनके अनुसार कुछ मित्रों

की यह मान्यता थी कि संशोधन से सभा में फूट पड़ जायेगी या फिर मुस्लिम लीग को संतुष्ट करने की इच्छा से यह संशोधन पेश किया गया है। कुछ ने चर्चिल का समर्थन करने अथवा मुसलमानों को समर्थन देने तक का आरोप लगाया।

डॉ. जयकर ने संशोधन लाने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा कि ''संशोधन उपस्थित करने में मेरा वास्तविक उद्देश्य हैं इस परिषद को नाकाम होने से बचाना। मुझे इस बात का डर है कि हम यहाँ जो कुछ भी कर रहे हैं, वह शीघ्र ही व्यर्थ हो जाएगा। मैं इस बात के लिए चिंतित हूँ कि हमारी राह में आने वाली एक–दो कठिनाइयों की उपेक्षा से कहीं इस परिषद का काम असफल और प्रभावशून्य न हो जाये।''[4]

डॉ. जयकर ने अपने उद्‌बोधन को आगे बढ़ाते हुये कहा कि सभा की प्रारंभिक बैठक में संविधान के बुनियादी प्रश्नों पर विचार नहीं किया जा सकता है। जबकि प्रस्ताव में गणतंत्र, संघ, राज्यों के अधिकार, अल्पसंख्यकों के प्रश्न का उल्लेख है जो बुनियादी प्रश्न हैं। वे कहते हैं कि कैबिनेट मिशन (जिसकी योजना के तहत् सभा का गठन हुआ) के 16 मई के वक्तव्य के अनुसार सभा अपने प्रारंभिक अधिवेशन में यह कार्य नहीं कर सकती हैं। वे 16 मई के वक्तव्य का उल्लेख करना चाह रहे थे कि संयुक्त प्रांत के श्री मोहनलाल सक्सेना ने आपत्ति की कि पहले उन्हें अपना संशोधन प्रस्तुत करना चाहिये।

इस पर डॉ. जयकर ने उद्देश्य प्रस्ताव पर अपना संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो कि इस प्रकार से हैं[5]

''यह सभा अपना दृढ़ और गंभीर निश्चय घोषित करती हैं कि भारत के भावी शासन के लिये जो विधान यह बनायेगी वह एक स्वतंत्र, गणतांत्रिक, सत्ता संपन्न राज्य का विधान होगा। परंतु ऐसा विधान बनाने में मुस्लिम लीग और देसी रियासतों का सहयोग पाने तथा इस तरह अपने निश्चय को और उग्र बनाने के उद्देश्य से सभा इस प्रश्न पर और विचार आगे के लिए स्थगित रखती हैं, ताकि उपरोक्त दोनों संगठनों के प्रतिनिधि, यदि चाहे, इस सभा की कार्यवाही में हिस्सा ले सकें।''

उन्होंने आगे कहा कि प्रस्ताव पर विचार तब तक स्थगित किया जाये, जब तक मुस्लिम लीग और देसी रियासतें नहीं आ जाये। वे स्वयं इस बात को स्पष्ट करते हैं कि यह केवल नियम संबंधी आपत्ति नहीं हैं। बल्कि एक कानूनी कठिनाई हैं। इस संदर्भ में डॉ. जयकर कैबिनेट मिशन योजना की विभिन्न धाराओं का उल्लेख भी करते हैं। इन धाराओं में सभा की प्रारंभिक बैठक में होने वाले कार्यों का उल्लेख है। आगे वे अन्य धाराओं का उल्लेख करते हुये कुछ कार्यों हेतु रियासतों, मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस तीनों की उपस्थिति की अनिवार्यता का उल्लेख करते हुये कहते हैं कि रियासतें एवं लीग जब अनुपस्थित हैं तो इस तरह के बुनियादी प्रश्नों पर विचार नहीं किया जा सकता हैं।

वे अपने उद्‌बोधन में मिशन की कुछ अन्य धाराओं में उल्लेखित प्रावधानों की भी चर्चा करते हैं। उनके अनुसार किसी भी बड़े सांप्रदायिक प्रश्न का समाधान प्रावधान में उल्लेखित व्यवस्था के अनुसार किया जायेगा लेकिन जब अन्य दल उपस्थित ही नहीं है तो सांप्रदायिक प्रश्न कौन उठाएगा? देसी रियासतों की अनुपस्थिति को वे समझते थे लेकिन लीग की अनुपस्थिति डॉ. जयकर के लिए एक कठिनाई थी। इस संदर्भ में उन्होंने पिछले कुछ समय से लीग को प्राप्त हो रही सुविधाओं खविशेषकर यह है कि विधान निर्माण में जाति का एक बड़ा भाग शामिल नहीं होता है तो सरकार विधान को देश के अनिच्छुक वर्ग पर जबरदस्ती नहीं लादेगी, का उल्लेख करते हुये कहा कि यह व्यवस्था मुस्लिम लीग के पक्ष में है और आप इसे फेडरल कोर्ट के सामने नहीं ले जा सकते हैं।[6] (ज्ञातव्य है कि डॉ. जयकर स्वयं फेडरल कोर्ट में न्यायाधीश रह चुके थे।)

'देश के अनिच्छुक भाग' से क्या अभिप्राय हैं? डॉ. जयकर ने अपने उद्‌बोधन में इसे स्पष्ट किया। जिसका सीधा अर्थ मुसलमान से हैं। डॉ. जयकर ने स्पष्ट कहा कि लीग की अनुपस्थिति में बनाया गया संविधान केवल सेक्शन ए पर ही लागू होगा। बी व सी सेक्शन में लागू होने पर उन्हें संदेह था। ख्कैबिनेट मिशन योजना के तहत् प्रारंभ में भारत को तीन सेक्शन ए, बी, सी, में विभाजित करना प्रस्तावित था, उन्होंने श्रम एवं समय की बचत हेतु भी इस पर विचार स्थगित करने का प्रस्ताव रखा। डॉ. जयकर ने यह भी कहा कि यदि मुस्लिम लीग अनुपस्थित रहेगी तो हो सकता है कि रियासतें भी शामिल नहीं हो।[7] इस पर पंडित गोविंद वल्लभ पंत ने आपत्ति की कि उन्हें रियासतों के संदर्भ में बोलने का अधिकार नहीं हैं। इसके जवाब में डॉ. जयकर ने कहा कि वे अनुमान के आधार पर कह रहे हैं।

डॉ. जयकर ने आगे कहा कि मुस्लिम लीग एवं देसी रियासतों की अनुपस्थिति में सभा केवल सेक्शन ए के लिये संविधान बना सकेगी क्योंकि सेक्शन बी में मुसलमानों का बहुमत हैं। 'देश के अनिच्छुक भाग' की अवधारणा के कारण सेक्शन बी व सी के लिये अलग संविधान सभा का गठन करना होगा। इस प्रकार से देश में तीन संविधान बन जायेंगें।[8] इंग्लैंड में घट रही घटनाओं, सर स्टेफर्ड क्रिप्स तथा जिन्ना के वक्तव्यों का उल्लेख करते हुये डॉ. जयकर ने कहा कि हमें मुस्लिम लीग के आने हेतु रास्ता साफ करना चाहिये न कि उसमें और कठिनाई पैदा करनी चाहिये। उन्होंने स्पष्ट कहा कि ''कम से कम 20 जनवरी तक यानी आज से करीब चार हफ्तों तक आप कोई अहम काम नहीं करने जा रहे हैं। कम से कम तब तक के लिए तो मुस्लिम लीग के लिए आपको रास्ता साफ रख देना चाहिये कि यहां आकर हमारी कार्यवाही में हिस्सा लें।''[9]

डॉ. जयकर ने सभा की बैठकों से दूर महात्मा गाँधी द्वारा मुसलमानों को सद्भावना और सहयोग द्वारा अपनाने के प्रयास की चर्चा करते हुये भी मुस्लिम लीग का सभा में आना सुनिश्चित करने पर बल दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि ''उस महापुरुष के आदर्श का हम यहाँ अनुसरण क्यों नहीं कर सकते हैं ?''[10]

डॉ. जयकर के उद्बोधन के बाद डॉ. सर हरिसिंह गौड़ ने अपने उद्बोधन में डॉ. जयकर के संशोधन को संशोधन मानने से ही इंकार कर दिया। उनके अनुसार डॉ. जयकर का संशोधन मूल प्रस्ताव में किसी भी प्रकार का संशोधन नहीं करके बहस को स्थगित करना चाहता है, इसलिये यह संशोधन नहीं होकर एक नया प्रस्ताव हैं। डॉ पट्टाभि सीतारम्मैया और पंजाब के दीवान चमनलाल के भी यही विचार थे। बिहार के श्रीकृष्ण सिन्हा ने डॉ. जयकर के उद्बोधन का उल्लेख करते हुये। कहा कि 16 दिसंबर, 1946 को ही अपने उद्बोधन में स्पष्ट किया कि ''यदि हमने उनका (डॉ. जयकर) भाषण ठीक-ठीक समझा है तो मेरे ख्याल से उन्होंने हमें निराशा की कोई बात नहीं कही हैं। वस्तुतः उन्होंने यह राय दी है यदि हमारे लीगी मित्र कुछ समय तक न आये तो फिर हमें अपने काम में अग्रसर होना जाना चाहिये।[11]

17 दिसंबर, 1946 को बंगाल के एफ. आर. एंथोनी ने अपने उद्बोधन में डॉ. जयकर के संशोधन का समर्थन किया। उन्होंने डॉ. जयकर का समर्थन करते हुए कहा कि ''प्रस्ताव के उस भाग की घोषणा अभी न करें जिसमें देसी रियासतों का तथा प्रांतों और संघ के अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। मैं समझता हूँ कि संशोधन का यह आशय है कि हम एक ऐसी घोषणा, चाहे वह कितनी ही न्याय संगत क्यों नहीं हो, न करें जिससे हम पर यह बेबुनियादी आरोप लगाया जा सके कि हमने तफसीली बातों (विस्तृत बात) को पहले से ही तय कर दिया जिन पर इस सभा में पूरी तरह से वाद विवाद होना चाहिये था और सभी लोगों का मत लिया जाना चाहिये था।''[12] श्री एंथोनी ने अपने वक्तव्य के द्वारा स्पष्ट तौर पर मुस्लिम लीग की उपस्थिति का महत्व और डॉ. जयकर द्वारा बताई गई भावी कठिनाइयों के प्रति सहमति प्रकट की गई।

हमें यहाँ बंगाल के डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के उद्बोधन की अवश्य चर्चा करनी चाहिये। उन्होंने अपने उद्बोधन में डॉ. जयकर तथा उनके संशोधन प्रस्ताव की कई बार चर्चा की। उन्होंने स्पष्ट तौर पर डॉ. जयकर के संशोधन प्रस्ताव को खारिज कर दिया। उनके उद्बोधन को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है-[13]

(i) प्रस्ताव पर चर्चा 20 जनवरी तक स्थगित करने पर क्या गारंटी है कि मुस्लिम लीग सभा की बैठकों में भाग लेगी।

(ii) यह संविधान नहीं है, केवल भावी शासन की रूपरेखा है।

(iii) देसी रियासती इस अवस्था में आ ही नहीं सकती हैं तो उनकी अनुपस्थिति पर चर्चा ठीक नहीं हैं।

(iv) सभा सर्वसत्ता संपन्न है, उसे इस तरह के प्रस्ताव (पंडित नेहरू का प्रस्ताव) पारित करने का अधिकार हैं।

(v) 16 मई, 1946 (कैबिनेट मिशन योजना) के बाद दिये गये बयानों से सभा को कोई मतलब नहीं है।

इन बिंदुओं से यह स्पष्ट है कि डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी डॉ. जयकर के तर्कों (उद्देश्य प्रस्ताव पर चर्चा स्थगित करने) से सहमत नहीं थे।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने डॉ. जयकर के संशोधन प्रस्ताव का समर्थन किया था। उनका यह स्पष्ट मानना था कि इस स्थिति में सभा द्वारा इस प्रस्ताव को पारित करना बुद्धिमता नहीं हैं। उन्होंने कहा कि ''मैं चाहता हूँ कि सभा इस बात पर दूसरे ही दृष्टिकोण से विचार करें। वह इस दृष्टिकोण से विचार न करें कि उसे इस प्रस्ताव को पास करने का हक है या नहीं। वरन् इस

ख्याल से कि क्या इसे अभी पास करना बुद्धिसंगत होगा, नीतिज्ञता की बात होगी ?''[14] पंजाब के सरदार उज्जवल सिंह ने डॉ. जयकर के प्रस्ताव से असहमति अपने उद्‌बोधन में प्रकट की। उनके अनुसार डॉ. जयकर का यह तर्क कि प्रस्ताव 20 जनवरी तक स्थगित किया जाये, क्योंकि यह सभा का प्रारंभिक सत्र हैं, सही नहीं है, क्योंकि 20 जनवरी को होने वाली बैठक भी प्रारंभिक बैठक ही है।[15] मध्यप्रांत और बरार के सेठ गोविंददास ने भी डॉ. जयकर के संशोधन प्रस्ताव से असहमति प्रकट की।

डॉ. जयकर द्वारा रखे गये संशोधन प्रस्ताव पर विभिन्न सदस्यों के विचार से यह स्पष्ट हो रहा है कि संशोधन प्रस्ताव का गलत निर्वचन किया जा रहा था। पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने इस भाव को अपने उद्‌बोधन में प्रकट भी किया था। उनके अनुसार ''इस सभा में दिए हुये कुछ भाषणों से यह मालूम होता है कि कुछ वक्ताओं ने यह समझा है कि जो संशोधन इस सभा में पेश किया गया है, वह विरोध की भावना से किया गया है मेरा विचार है कि उसका उद्देश्य इस सभा के काम में बाधा डालना नहीं है बल्कि उसमें सहूलियत पैदा करना है।''[16] बंगाल के डम्बरसिंह गुरंग ने तो प्रस्ताव के संदर्भ में प्रतीक्षा करने पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुये यहाँ तक कह दिया कि ''सौभाग्य से यह डॉक्टर (डॉ. जयकर एवं डॉ. अंबेडकर) औषधोपचार के डॉक्टर नहीं है। अन्यथा ऑपरेशन में देर कर ये रोगी को मार डालते। हमने काफी समय तक प्रतीक्षा की और अब हमको अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।[17] श्री गुरंग यहाँ प्रस्ताव को तुरंत पारित करने पर बल दे रहे हैं।

21 दिसंबर, 1946 को सभापति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उद्देश्य प्रस्ताव पर विचार स्थगित करने की घोषणा की। उन्होंने कहा कि अभी भी इस विषय पर बोलने वालों की संख्या करीब 50 है। इस पर बहस जारी रखने से अन्य महत्वपूर्ण कार्य रुक जायेंगें। उन्होंने इस प्रस्ताव पर चर्चा अगली बैठक तक स्थगित करने की घोषणा करते हुए कहा कि इस बीच जो लोग यहाँ नहीं हैं वे यहाँ आकर हमें फायदा पहुँचा सकते हैं।[18]

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक प्रकार से डॉ. जयकर का प्रस्ताव स्वीकार हो गया। क्योंकि डॉ. जयकर कुछ तकनीकी कारणों से उद्देश्य प्रस्ताव पर चर्चा 20 जनवरी तक स्थगित करना चाह रहे थे जो सभापति की घोषणा के साथ ही स्थगित हो गया।

सभा का दूसरा सत्र 20 जनवरी से 25 जनवरी, 1947 के बीच हुआ। 20 और 21 जनवरी को भी प्रस्ताव पर विस्तार से चर्चा हुई। 21 जनवरी को एम. आर. जयकर ने संक्षिप्त उद्‌बोधन देते हुये अपना संशोधन प्रस्ताव वापस ले लिया। उन्होंने 20 जनवरी तक उद्देश्य प्रस्ताव को रोकने हेतु सभा का आभार व्यक्त किया। साथ ही उन्होंने इसके कारण बताने की बात कही। लेकिन उन्हें यह अवसर नहीं दिया गया। इसके बाद सभा की अनुमति से यह संशोधन वापस ले लिया गया। 22 जनवरी को पंडित जवाहरलाल नेहरू का इस विषय पर उद्‌बोधन हुआ। अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने पहले इसे अंग्रेजी और बाद में इसका हिंदी रूपांतर पढ़कर सुनाया। मोहनलाल सक्सेना ने इसका उर्दू अनुवाद पढ़ा। फिर अध्यक्ष के आग्रह पर सभी सदस्यों ने खड़े होकर प्रस्ताव को स्वीकार किया।[19] इस प्रकार से 13 दिसंबर, 1946 को रखा गया उद्देश्य प्रस्ताव 22 जनवरी, 1947 को सभा द्वारा स्वीकार किया गया।

डॉ. एम. आर. जयकर स्वयं बड़े विधिवेत्ता थे, संघीय न्यायालय में न्यायाधीश रह चुके थे। इसलिए वे कानूनी दृष्टि से अत्यधिक पारंगत थे। उनका उद्देश्य प्रस्ताव, पंडित नेहरू, कांग्रेस अथवा संविधान सभा से कोई विरोध नहीं था। वे सभा के कार्यों को असफल होने नहीं देना चाहते थे। वे मुस्लिम लीग को किसी प्रकार की शिकायत अथवा बहाने बनाने का अवसर नहीं देना चाहते थे। इस कारण से उन्होंने वह संशोधन प्रस्ताव रखा था। हालांकि कई सदस्यों ने इसे संशोधन प्रस्ताव मानने की बजाय इसे नया प्रस्ताव ही माना था। डॉ. जयकर की मंशा के अनुरूप प्रस्ताव अगले सत्र तक टाला भी गया। हालांकि मुस्लिम लीग तब भी सभा की बैठक में शामिल नहीं हुई थी।

उद्देश्य प्रस्ताव के महत्व और डॉ. जयकर द्वारा संशोधन वापस लिये जाने के संदर्भ में डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद को प्रेषित एक पत्र में लिखा कि ''मैं सभा की दिन ब दिन कार्यवाही को निकटता से अनुसरण कर रहा हूँ। (डॉ. सिन्हा अस्वस्थ्यता के कारण आगे के) सत्रों में भाग नहीं ले पाये थे) मुझे कल के समाचार पत्रों में यह पढ़कर अत्यधिक खुशी हुई कि डॉ. जयकर व अन्यों ने अपने संशोधन वापस ले लिये तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा रखा गया प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया।''[20]

इस प्रकार से पंडित नेहरू द्वारा रखा गया उद्देश्य प्रस्ताव डॉ. जयकर के संशोधन प्रस्ताव के कारण एक

लंबी बहस के बाद पारित हुआ। यह बहस हमें संविधान निर्माताओं के दृष्टिकोण, उनकी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में आस्था को भी स्पष्ट करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *कश्यप सुभाष, भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या – 251*
2. *भारतीय संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिन्दी संस्करण), खण्ड 1, पुस्तक संख्या – 1 , लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या – 16, 9 दिसम्बर, 1946*
3. *वही, पृष्ठ संख्या – 4 एवं 5, 13 दिसम्बर, 1946*
4. *वही, पृष्ठ संख्या – 2, 13 दिसम्बर, 1946*
5. *वही, पृष्ठ संख्या – 5, 13 दिसम्बर, 1946*
6. *वही, पृष्ठ संख्या – 11, 13 दिसम्बर, 1946*
7. *वही, पृष्ठ संख्या – 14, 13 दिसम्बर, 1946*
8. *वही, पृष्ठ संख्या – 15, 13 दिसम्बर, 1946*
9. *वही, पृष्ठ संख्या – 16, 13 दिसम्बर, 1946*
10. *वही, पृष्ठ संख्या – 18, 13 दिसम्बर, 1946*
11. *वही, पृष्ठ संख्या – 32, 13 दिसम्बर, 1946*
12. *वही, पृष्ठ संख्या – 7, 17 दिसम्बर, 1946*
13. *वही, पृष्ठ संख्या – 8, 9, 10, 17 दिसम्बर, 1946*
14. *वही, पृष्ठ संख्या – 19, 17 दिसम्बर, 1946*
15. *वही, पृष्ठ संख्या – 22, 17 दिसम्बर, 1946*
16. *वही, पृष्ठ संख्या – 21, 18 दिसम्बर, 1946*
17. *वही, पृष्ठ संख्या – 28, 19 दिसम्बर, 1946*
18. *वही, पृष्ठ संख्या – 21, 21 जनवरी, 1947*
19. *वही, पृष्ठ संख्या – 14, 22 जनवरी, 1947*
20. *डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को पत्र, 24 जनवरी, 1947, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : कॉरसपोंडेंस एण्ड सलेक्ट डाक्युमेंटस्, वोल्युम – 7, वाल्मीकि चौधरी द्वारा संपादित, एलाइड पब्लिर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 9*

भारतीय पुनर्जागरण में स्वामी विवेकानन्द का योगदान

राजेन्द्र कुमार
शोधकर्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

स्वामी विवेकानंद वेदांत दर्शन के महान व्याख्याता एवं नव हिन्दूवाद के प्रवर्तक थे। उनका वास्तविक नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। उन्होंने भारत एवं यहां की शाश्वत परम्परा को जाना और आत्मसात किय। तत्पश्चात भारतीय दर्शन के सिद्धांतों का प्रचार संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देशों में किया। भारत में विवेकानंद की छवि एक देश भक्त संत की है। वे केवल संत ही नहीं, एक महान देश भक्त, वक्ता, विचारक, लेखक एवं मानव प्रेमी थे। वे पुरोहितवाद, धार्मिक आडम्बरों एवं रूढ़ियों के सख्त खिलाफ थें। उन्होंने धर्म को मनुष्य की सेवा के केन्द्र में रखकर ही आध्यात्मिक चिंतन किया था। उन्होंने भारतीय सभ्यता-संस्कृति की तटस्थ वस्तुपरक एवं मूल्यगत आलोचना की। स्वामी विवेकानंद की चिंतन दृष्टि एवं सामाजिक कार्यो ने भारतीय पुनर्जागरण को नवीन गति प्रदान की। प्रस्तुत अध्ययन में भारत के पुनर्जागरण में स्वामी विवेकानंद के योगदानों का विश्लेषण उनकी चिंतन-दृष्टि एवं कार्यो के आलोक में प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर : *हिन्दूवाद, वेदांत दर्शन, पुनर्जागरण, आध्यात्मवाद, धार्मिक समानता, उदात्तीकरण।*

स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। 1887 में उन्होंने सन्यास ग्रहण किया। सन्यासी बनने के बाद उन्होंने भारत-भ्रमण किया। इस यात्रा ने उन्हें भारत की वास्तविक स्थिति से परिचित कराया। 1893 में शिकागो धर्म सभा में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। इस सभा में अपने ऐतिहासिक भाषणों के द्वारा उन्होंने पाश्चात्य राष्ट्रो की महानता के व्यापक विचार को जड़ से हिला दिया। जब उन्होंने संपूर्ण विश्व के धर्मो के प्रतिनिधियों के समक्ष भारत के वेदांत दर्शन की सर्वोपरिता को भली-भांति प्रतिपादित और प्रतिष्ठित किया। स्वदेश वापसी के बाद उन्होंने संगठित रूप से सामाजिक सेवा का कार्य करने हेतु 1899 ई. में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। मिशन के माध्यम से तीन प्रकार के कार्य किये जाने लगे-

1. सेवा कार्य-असहाय एवं लाचार लोगों के लिए
2. शिक्षा संबंधी कार्य- राष्ट्रीय स्वाभिमान उत्पन्न करने वाली द्वितिका संगठन एवं
3. प्रचार-वेदांत एवं रामकृष्ण की शिक्षाओं का प्रचार

इस प्रकार विवेकानंद ने चतुर्दिक एवं सर्वांगीण जागरण का कार्य प्रारंभ किया। उनके कार्यो ने भारत में जागृति उत्पन्न की। विभिन्न क्षेत्रों में उनकी उपलब्धियों को निम्नवत समझा जा सकता है-

धार्मिक उपलब्धि

स्वामी विवेकानन्द यह भली-भांति जानते थे कि भारत की आत्मा धर्म और अध्यात्ववाद में निवास करती है। धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त ऐसी बुराईयां जैसे देवदासी प्रथा, पुजारीवाद, धार्मिक आतंक आदि को दूर करके वे धर्म और आध्यात्मवाद को भारत के पुनर्जागरण का मूल आधार बनाना चाहते थे-

(क) आध्यात्मवाद को पुनर्जन्म देकर उन्होने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करके उसे ईसाई धर्म के आक्रमणों से बचाया। पश्चिम के लोगों ने उन्हें 'तूफानी भ्रमण करने वाला संत' कहा इससे हिन्दुओं के सम्मान में वृद्धि

 ISSN 2277-5587

हुई। उनके उपदेशों से हिन्दुओं को न केवल अपने धर्म, सभ्यता, उसके प्राचीन गौरव तथा हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का पता लगा अपितु उन्हें अपने पतन का भी ज्ञान हुआ। स्वामी ने यह बतलाया कि अगर एक बार पुनः हिन्दू धर्म अपने वेदांत के आदर्शो पर चलने लगे तो उन दीवारों को तोड़ डालेगा जिन्होंने मनुष्य को मनुष्य से पृथक कर डाला है और समाज तथा राष्ट्र को तोड़ डाला है। संक्षेप में, हिन्दू धर्म में जागृति आयी।

(ख) स्वामी जी ने धार्मिक भावना में जागृति लायी। वे धर्म को आत्म–ज्ञान मानते थे और कहते थे– 'धर्म न पुस्तकों में है, न बौद्धिक विकास में और न तर्क में । वह आत्म ज्ञान में है।' उन्होंने धर्म को आवश्यक बतलाया और कहा कि 'पूर्णता की प्राप्ति धर्म द्वारा सम्भव है।' उनका कहना था 'धार्मिक विचार मनुष्य के शरीर का एक अंग है; वह मस्तिष्क और शरीर के अलग होने के बाद ही शरीर से अलग हो सकता है।

(ग) उन्होंने सभी धर्मो की एकता पर बल दिया। उन्होंने धार्मिक समानता, उदारता और सहयोग पर बल दिया। शिकागो के सम्मेलन में अन्त में उन्होंने कहा था–'एक ईसाई को हिन्दू या बौद्ध बनने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि प्रत्येक को एक–दूसरे की सत्य भावना को समझना चाहिए.. ....। सहायता करो, लड़ो नहीं, एक–दूसरे से संग्रहण करो, विनाश नहीं, मेल और शांति, मतभेद नहीं।' उनका कहना था कि धर्म के मूल लक्ष्य के विषय में सभी धर्मो में एकता है। उन्होंने हिन्दू अध्यात्मवाद और वेदों के ज्ञान का उपयोग संसार के सभी धर्मो की एकता के लिये किया।

सामाजिक उपलब्धि

स्वामी जी बड़े सुधारक थे और सुधार के माध्यम से वे निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने कहा था–'मैं जड़ से शाखा तक सुधार चाहता हूं.....मेरा ढ़ंग निर्माण करने का है।'

(क) उन्होंने विदेश यात्रा का समर्थन किया। भारत के विकास के लिये उन्होंने केवल यही आवश्यक नहीं माना कि भारतवासियों के विदेश यात्रा करने पर कोई प्रतिबंध न लगाये जाएं, बल्कि उन्होंने विदेश भ्रमण करने को भारतीयों ने 'म्लेच्छ' शब्द गढ़ लिया और विदेशों से नाता तोड़ लिया।'

(ख) विवेकानंद संकुचित तथा कठोर जातिवाद के कटु आलोचक थे। 1895 में उन्होंने कहा था कि जाति का आदर्श यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को वह कार्य दिया जाए जिसके वह सर्वाधिक योग्य हो। केवल जन्म के आधार पर जाति निश्चित किये जाने से समाज का संगठन कठोर व संकुचित हो जाता और व्यक्ति का विकास अवरूद्ध हो जाता है। उन्होंने लिखा है–'अमेरिका और यूरोप के प्रगतिशील होने का एक मूल कारण यह है कि वहां कठोर जाति–प्रथा जैसी कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं है जो वहां के लोगों के स्वाभाविक विकास को रोके।' जाति प्रथा को शिथिल करने के हेतु वे व्यावसायिक स्वतंत्रता का समर्थन करने के साथ समान धर्मानुयायियों और एक ही जाति की उप–जातियों में परस्पर अंतर्विवाह का पक्ष लेते थे। उन्होंने लिखा था कि 'विवाहों की परिधि विस्तृत करने पर ही हम अपनी संतति में नये और ताजे खून का संचार कर पायेंगे।

(ग) स्वामी विवेकानंद ने छुआछूत के व्यवहार पर तीव्र प्रहार किया। अछूत प्रथा की उन्होंने तीव्र आलोचना की। मार्च 1899 में उन्होंने रामकृष्ण मिशन के तात्वावधान में अनेक नवयुवकों को अछूतों की दशा सुधारने और उन्हें मानवोचित जीवन व्यतीत करने के उपयुक्त स्तर प्राप्त कराने का कार्य सम्पादित करने के हेतु भेजा।

(घ) इसी प्रकार महिलाओं की दशा सुधारने के प्रति वे पर्याप्त रूप में सजग रहे। उनका कहना था कि राष्ट्र के विकास के हेतु धर्म और अध्यात्मवाद के बाद दूसरा स्थान महिलाओं की स्थिति में सुधार किये जाने के कार्य को दिया जाना चाहिए। उन्होंने घर के घेरे के आतंकपूर्ण वातावरण से महिलाओं को मुक्त किये जाने और उन्हें शिक्षित किये जाने का प्रबल पक्ष लिया और महिलाओं के लिये नवजीवन प्रदान किये जाने के हेतु भारतवासियों द्वारा कार्य करने का आह्वान किया।

(ङ) उन्होंने बाल–विवाह की कटु आलोचना की और 'अपने देश की दस वर्ष की उम्र में बच्चों को

जन्म देने वाले बालिकाओं' के प्रति गहरी संवेदना प्रकट की।

इस प्रकार विवेकानंद के जाति प्रथा, छुआछूत, अछूत प्रथा और स्त्रियों के दशा के सुधार संबंधी विचार भारतीय समाज के परिष्करण और उदात्तीकरण के संदर्भ में उल्लेखनीय है।

राजनीतिक उपलब्धि

राजनीतिक–राष्ट्रवादी पुनर्जागरण को विवेकानंद ने अपने विचारों एवं कार्यो से गहरा, ठोस और व्यापक आधार दिया। वे न तो राजनीतिज्ञ थे और न राजनीतिक आंदोलन के संयोजक, किन्तु उनमें राष्ट्रवादी भावना कूट–कूटकर भरी हुई थी, उन्हें भारत से गहरा प्रेम था। उनकी गर्वोक्ति थी; 'यदि भूमण्डल पर कोई देश ऐसा है जो पुष्प–भूमि कहलाने को अधिकारी है..... जो अंतर्दर्शन और आध्यात्मिकता का देश है तो वह भारत है।' विवेकानंद ने लंका से अलमोड़ा तक और बंगाल से राजस्थान तक भारत की यात्रा की और ओजस्वी भाषणों के द्वारा भारतीयों में राष्ट्र–प्रेम का उभार करने का प्रयत्न किया। भारत की प्रचीन सशक्त संस्कृति की गौरव–गाथा गाकर उनमें राष्ट्रीय भावना फैलायी, राष्ट्रीय स्वाभिमान जगाया। ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के विचारों और अन्य कार्यो पर जो अनेक प्रतिबंध लगा रखे थे उनपर तीक्ष्ण कटाक्ष करते हुए उन्होंने लिखा था कि 'जो मनुष्य या वर्ग, जाति, राष्ट्र या संस्था किसी व्यक्ति के स्वतंत्र विचार या कर्म पर प्रतिबंध लगाती है..... वह आसुरी है और उसका नाश अवश्य होगा।' शिकागो सम्मेलन में भाग लेकर भारत को उन्होंन अंतर्राष्ट्रीय ख्याति दी। उन्होंने पश्चिम की संस्कृति की आलोचना की और भारतीय संस्कृति की गरिमा कायम की। हिन्दू धर्म की हंसी उड़ाने वाले ईसाई धर्मोपदेशकों को करारा उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था 'बढ़–बढ़कर बातें करने और छाती तानकर खड़े होने के साथ यह तो बतलाइयें कि आपका ईसाई मत बिना तलवार का प्रयोग किये कहां सफल हुआ है ?' उन्होंने नवयुवकों को फटकारा और पश्चिम की संस्कृति अपनाने से रोका। उन्होंने कहा 'ऐ वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूं। प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी सब मेरे भाई है। भारत के देवता मेरे ईश्वर है, भारत का समाज मेरी शिशु समाज, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्द्धव्य की वाराणसी है। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है.....।' वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये गरीबी और दासता को दूर करना चाहते थे।

स्वामी विवेकानन्द केवल आध्यात्मिक शिक्षक ही नहीं थे अपितु भारतीय समाज एवं राष्ट्र की अनेक समस्याओं को हल करने का मार्ग भी उन्होंने प्रस्तुत किया था। उनका विचार था कि भारत की पिछड़ी हुई स्थिति के लिए शिक्षा की कमी बहुत हद तक उत्तरदायी थी। वे तत्कालीन शिक्षा–पद्धति के प्रबल आलोचक थे। अंग्रेजों की शिक्षा–पद्धति को वे बाबुओं का निर्माण करने वाला यंत्र मानते थे। यह शिक्षा उन्हें नकारात्मक ज्ञान देती थी और स्वावलम्बन विहीन थी। रटने पर अधिक जोर देने के कारण बुद्धि का विकास नैसर्गिक रूप में नहीं हो सकता था। यह शिक्षा न तो उन्हें जीविकोपार्जन के लिए तकनीकी ज्ञान देती थी और न जीवन जीने का मार्ग दिखाती थी। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा–पद्धति को निश्चित लक्ष्यों से संयुक्त करना चाहते थे। उनका ध्येय मनुष्य का निर्माण करने वाली शिक्षा– पद्धति को अंगीकार करना था। अद्वैत दर्शन के आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने यह रहस्योद्घाटन किया कि ज्ञान मनुष्य में ही अन्तर्निहित है। जब व्यक्ति कोई बात सीखता है तो वह अपने अन्दर ही उस तथ्य को खोज कर निकालने की प्रक्रिया से ऐसा करता है। बाह्य क्षेत्र से ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ज्ञान तो आन्तरिक प्रक्रिया है। उसे जागृत करने की आवश्यकता है। शिक्षक सिखाता नहीं है अपितु ज्ञान जागृत करता है।

शिक्षा के लिए स्वास्थ्य को विवेकानन्द ने अत्यधिक महत्व दिया। स्वस्थ शरीर से ही स्वस्थ मस्तिष्क का बोध हो सकता है। वे ध्यान केन्द्रित करने की क्रिया को भी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण मानते थे। ध्यानावसिति होने पर प्रत्येक विद्या का अभ्यास सहज रूप में हो सकता है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के पालन से नैतिक चरित्र ऊंचा उठता है। कामवासना की शक्ति को आधत्मिक शक्ति में बदलने का स्वामी विवेकानन्द का आह्वान वैज्ञानिक दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना आध्यात्मिक दृष्टि से। पूर्ण शक्ति के साथ विद्याभ्यास कर व्यर्थ की बातों से ध्यान को विकर्षित करना तथा तथ्य पर ध्यान केन्द्रित करना यह विवेकानन्द का स्थापित आदर्श था जिसका अनुसरण करने पर उच्चतम बौद्धिक उपलब्धियां प्राप्त हो सकती थी। विवेकानन्द ने गुरु–सेवा तथा गुरु–शिष्य परम्परा का भी उल्लेख अपने भाषणों में किया। जैसे

आध्यात्मिक ज्ञान बिना गुरू के प्राप्त नहीं हो सकता उसी प्रकार भौतिक ज्ञान भी सद्गुरू की संगति से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार वे गुरुकुल शिक्षा पद्धति के पक्षपाती थे। वे यह भी मानते थे कि सच्ची शिक्षा प्रकृति के सान्निध्य से प्राप्त होती है। प्रकृति से दूर रहकर शिक्षा अधूरी रह जायेगी।

शिक्षा के लिए स्वामी विवेकानन्द ने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के समन्वय पर बल दिया है। इन सभी शिक्षा सम्बन्धी विचारों का मूल लक्ष्य एक विशुद्ध भारतीय शिक्षा–पद्धति का निर्माण करने का था। स्वामी विवेकानन्द पश्चिम के अंधानुसरण के विरोधी थे। जिस प्रकार से पश्चिमी शिक्षा तथा संस्कृति को पढ़े–लिखे भारतवासियों ने अपनाना प्रारम्भ किया था उससे उनका मन व्यथित था। यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय धर्म तथा संस्कृति के मूलभूत स्तम्भ पर शिक्षा का मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वे पाश्चात्य विचारों की नैतिक एवं मानवीय विशेषताओं को ग्रहण करने के लिए उद्यत थे किन्तु उनकी नकल करना उन्हें पसन्द नहीं था। वेशभूषा, खानपान, रीति–रिवाज, धर्म, चिन्तन, शिक्षा, समाज–उत्थान, राष्ट्रीय स्वतंत्रता सभी को वेद, वेदान्त, उपनिषद आदि से नियंत्रित कर उन्हें उन्होंने भारतीयता को जीवित रखा। इस भारतीयता की छाप उन्होंने पश्चिम पर इतनी गहरी छोड़ी कि आज भी भारत के बाहर जो भारतीय महानता का प्रभाव है उसका अधिकांश स्वामी विवेकानन्द के योगदान का ही परिणाम है।

विवेकानंद शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र का निर्माण और पुनरुद्धार करना चाहते थे। भावना, स्वाभिमान और श्रद्धा जगाने वाली शिक्षा को वे वास्तविक शिक्षा मानते थे। वे कहा करते थे; 'हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और देश के युवक अपने पैरों पर खड़े होना सीखें।' वे राष्ट्रीय आधार पर शिक्षा को पुनर्गठित करना चाहते थे। भारतीय दर्शन और संस्कृति का अध्ययन करना वे आवश्यक समझते थे। संक्षेप में, रामकृष्ण मिशन का शिक्षा–संबंधी आदर्श पूर्ण मानव का निर्माण करना है। मिशन की शिक्षा पद्धति में प्रगाढ़ आदर्शवाद तथा पूर्णव्यावहारिक ज्ञान का सामंजस्य करते हुए ऐसे विषयों का समावेश किया गया है, जैसे योगासन, ध्यान, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र बागवानी, कृषि, पुल व सड़कों का बनाना, पशुपालन विज्ञान आदि।

मानव सेवा के आदर्श

विवेकानंद मानव सेवा को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते थे। वे इसे धर्म का एक अंग मानते थे। उनका कहना था कि 'ईश्वर विभिन्न रूपों में तुम्हारे सामने है। जो ईश्वर के बच्चों को प्यार करता है वह ईश्वर से प्रेम करता है।' उन्होंने एक मित्र को लिखा था–'निर्धन; ना समझ, अशिक्षित और असहाय को अपना ईश्वर बनाओं। इनकी सेवा करना ही महानतम धर्म है।' जनसाधारण की अवज्ञा करना वे राष्ट्रीय पाप मानते थे। एक बार उन्होंने कहा था–' जब तक करोड़ो व्यक्ति भूखे अज्ञानी है तब तक मैं हर व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूं जो उन्हीं के खर्चे पर शिक्षा प्राप्त करता है और उनकी बिल्कुल परवाह नहीं करता है।'

निष्कर्ष

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद ने भारतवासियों के अंदर अद्भूत साहस और कर्मठता की भावना उत्पन्न करके; जनसाधारण और विशेषकर अछूतों की स्थिति को सुधारे जाने हेतु भारतीय जनता की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तथा राजनीतिक आकांक्षाओं की जागृति करके, सामाजिक समानता, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का परोक्ष या अपरोक्ष रूप में समर्थन करके; और सबसे अधिक, भारतवासियों को उनकी आध्यात्मिक तथा धार्मिक गुरुता के प्रति विश्वास जागृत करके उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान के भाव को उच्च स्तर पर पहुंचा कर तथा भारत को इंगलैंड के समक्ष समान स्तर पर खड़ा होना सिखाकर आधुनिक भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में योगदान दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पाण्डेय, धनपति; आधुनिक भारत का इतिहास; मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, पृ. सं. 211–213*
2. *https://nim.wikipedia.org >wiki> स्वामी विवेकानंद*
3. *रहबर, हंसराज; योद्धा सन्यासी विवेकानंद; राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ. सं. 54–112, 178–198*
4. *निखिलानंद, स्वामी; विवेकानंद : एक जीवनी; अद्वैत आश्रम (प्रकाशन विभाग) कोलकाता, पृ.सं. 73–123, 237–271*

करौली के मीणाओं में नारी लोकगीतों की सामाजिक चेतना

रामावतार मीणा
सहायक आचार्य, अ.रा.ब..जैन विश्व भारती स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छबड़ा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लोकगीत किसी भी समुदाय की संस्कृति की झलक को दर्शाते है। करौली के मीणाओं की नारीयों में लोकगीतों के माध्यम से सामाजिक चेताना आई। इन लोग गीतों से महिलाओं की दशा सामाजिक संस्कारों वेशभूषा, खान–पान, न्याय व्यवस्था, सामाजिक रीतिरिवाज, दण्ड व्यवस्था के बारे में जानकारी मिलती है। इन लोकगीतों में सांस्कृतिक गाथाओं का भी वर्णन है। अस शोधपत्र के माध्यम से करौली की नाराओं की सामाजिक दशा को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *लोकगीत, करौली, महिलाऐं, सामाजिक दशा, सांस्कृतिक स्थिति।*

लोक गीत :– संयोग वियोगजन्य सुख–दुखात्मक, अनुभूतियों की

रागात्मक, भावात्मक एवं लयात्मक अभिव्यंजनाएँ हैं। गायनगत शास्त्रीयताहीन भी लोकगीत कर्णप्रियतर होते है। ये आकाशवत् उन्मुक्त तथा पवनवत् स्वच्छन्द एवं सागरवत् गम्भीर है।

एनसाइक्लोपीडियानुसार– लोक = FOLK (फोक) ऋग्वेदोक्त लोक = सहस्त्रशीर्शपूरूषः अर्थात् जनगण।

लोकगीतों का महत्व :– ये दुखवेला में सहनीयता (धैर्य) तथा सुखवेला में उल्लास देते हैं। ये प्रताड़ितों के पथभ्रष्टो के एवं मोहग्रस्तों के सम्बल हैं। लोक संस्कृति नीति व इतिहास को दर्पण (आदर्श) है।

पुराणानुसार चैत्र शुक्ला तृतीया को कृतमालानदी में मत्स्य (मीन) भगवान अवतरित हुए। इनसे वृद्धिप्राप्त मीणा मत्स्य संघ (राजस्थान) के शासक हुए। कालगत पतन उपरान्त अंग्रेजो ने आपराधिक जाति माना क्योंकि उन्हे अन्य वर्चस्व असह्य था।

करौली क्षेत्र में मीणा नारियों की दशा :– समाज के पुरूष वर्चस्व क्षेत्रों में आज नारियां सफल प्रवेशरत है। अग्रगामी हैं। पर्दाप्रथा उन्मूलन अन्तर्जातीय विवाह, प्रेमविवाह एवं विलंब विवाह में नारी की स्वीकृति अब स्वीकारी जाने लगी है।

राष्ट्रिय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अब मीणा नारियां छाने लगी हैं। करौली जिले की सभी 6 तहसीलों (करौली, हिण्डोन, टोडाभीम, सपोटरा, मण्डरायल, नदौती) में मीणा नारियां जागृत है।

करौली का इतिहास :– कल्याणपुरी नामक यदुवंशीय राज्य था। 1949 में मत्स्य संध में सम्मिलित हुआ, तत्पश्चात् वृहद् संयुक्त राजस्थान बना। 1997 को यह अलग 33वाँ जिला बनाया गया। यहाँ का राजवंश जादौन था जिन्होने 955 ई. में विजयपाल ने राज्य स्थापित किया। इसकी हिण्डौन तहसील पौराणिक राक्षस, हिरण्यकश्यप एवं महाभारतीय हिडिंबा की कर्मभूमि है। यहां महावीर जी कस्बे में जैन दिगम्बर मंदिर भी है।

कैलादेवी मन्दिर जिला मुख्यालय से 23 किमी उत्तर में 1100 ई. में निर्मित यहाँ प्रतिवर्ष नवरात्र मेले में प्रान्तों से 70 लाख लगभग श्रद्धालु आते है। मान्यता है कि कंस ने वसुदेव–देवकी के नवजात को पछीटना चाहा तो वह छूटकर उड़ गई और कैला मैया कहलाई।

कैला मैया लोकगीत :– माता काली–सी बदली, भवानी रे बीजला चमके ए माय, ...मेवलो सो बरसे ए माय।

कैलादेवी के प्राचीन पुजारी 'लांगुरिया' की प्रतिमा देवी की ओर मुखातिब है। मीणा लोग रतजगा प्राचीनकाल से करते रहे हैं इसमें लोकगीतों में बालकों एवं पुरूषों को भी ''लांगुरिया'' (पुजारी) तथा महिलाओं को 'जोगिन' कहते है।

हम ठाड़े तेरे लांगुरिया,

जोत करन तेरी हम आए,

तेरी सूरत कैसी प्यारी है हम बलिहारी है,

रे लांगुरिया तेरी परकम्मा है भरी–भरी,

सब लोग लुगाई नाचत.....।

लांगुरिया लोकगीतों में 'जोगिन' नाचती है और लांगुरिया ताल देते हैं।

दै दै लम्बे चौक लांगुरिया बरस दिनां में आयेंगे

अबके तो अकेले आए.....

अबके जोगिन संग लामिंगे। दै दै.....

धरे ओलेगो हथेली पे चून बारे लांगुरिया,

अति की लड़ाई मौते मति लड़े,

मेरे ससुर गए देवी जात कूं,

और सास ने लियो पंथ,

बारे लांगुरिया.....।

श्री महावीर जी :– हिण्डोन सिटी से 12 किमी दूर यहां 24 वें तीर्थकर महावीर जी की ताम्र मूर्ति, भव्य मन्दिर में पद्मासनस्थ है। नए पुराने कुल 5 मन्दिर है।

जैनागमानुसार :– एक ग्वाले की गाय एक टीले पर प्रतिदिन थनो से स्वतः दूध सींचती है। आश्चर्यवश ग्रामीणो ने टीला खोदा तो प्रतिमा निकली, जयपुर नरेश ने इन्हे जयपुर ले जाने में असफल होकर यहीं भव्य मन्दिर बनवाया जिसका स्थापत्य अप्रतिम है। उस कामधेनु का चबूतरा है। प्रतिवर्ष अप्रैल में महावीर जयन्ती पर 5 दिवसीय मेला लगता है मेला समापन पर रथ यात्रा निकलती है।

करौली की संस्कृति एवं सामाजिकता :– आठवाँ पूजन, जलवापूजन, आख्या, जडूला, सगाई, बिनौरा, तोरण मारना, खेतपाल/क्षेत्रपाल पूजन, कंकण, डोरणा, बान बैइना व पीढ़ी लोकगीतः–

ल्याई ए तेलन, लेलो तैल सुपारी ले लौ,

लखनलाल जी के घरा गोरड़िया बहू राम श्री तेल चढ़ाइयों।

बिंदोली :– इस हेतु प्रचलित लोकगीत :–

घोड़ी म्हारी चंदरमुखी इन्दरलोक सूँ आई ओ राज आई रतननारी ओ. ओ. तीजण ठाण बधाई.....

आज बाबा नन्द जी से छाबो चोक्यबिराजो.....

मोड़ बांधना, बरी पड़ला, सामेला, बढ़ार, कुँवर कलेवा, मायरा/भात भरना :– इस हेतु प्रचलित लोकगीत :–

आज म्हारा बीरा जी काँकड़ बस रैया,

ओढाई तारा भांत जड़ी, चूंदड़ी हरख्या रे बाल ग्वाल.....

ओढूँ तो बीरा हीरा झड़ पड़े, मेलू तो तरसै बाई रो जीव।

प्रथम वैष्णव अवतार (मत्स्य) से मीणा जनजाति सम्बद्ध है। 8वीं 9वीं शती में इनके राज्य थे। 11वीं. 12वीं शती में कछवाहों और मेवातो ने इन्हे हराया, 16वीं शती के आमेर शासक भारमल ने नाई (नहान) के अन्तिम मीणा राज्य को अधीन कर लिया। खोहगंग के गढ़ कूप वापी छतरियाँ आदि मीणाओं के गौरव के ज्ञापक हैं। मॉच, गैटोर, झोठवाड़ा और आमेर के दूलहराय कछावा ने धोखे से हथिया लिये एवं दीपावली को तालाब पर पितृ तर्पणरत मीणा राजा के कुटुम्बियों की हत्या कर दी थी। यह अति निन्दनीय था।

महाभारत के विराट नगर (बैराठ) मत्स्य जनपद के राजा विराट के यहाँ पाण्डवों ने अज्ञात वास किया था। भानगढ़ एवं बैराठ व इसके समीपस्थ क्षेत्रों में पाशाणकालिक हस्तकटार परशु खुरचनी इत्यादि मीणाओं की प्राचीनता के प्रमाण है।

हाजीपुर के भौलाश्रय की मछली आकृति भी यही बताती है। प्रोटोहिस्टोरिक गणेश्वर क्षेत्र उत्खनन में ताँबें के काँटें मत्स्याखेट दर्शाते हैं आज भी यहाँ मीणा समाज बाहुल्य है। राजस्थानी जनश्रुति के 'नौ नाथ' और 'चौरासी सिद्धों' में मत्स्येन्द्रनाथ समादरित है। वर्तमान अलवर जिला नाथों का प्राचीन केन्द्र था। अलवर के राजा भर्तृहरि गोरखनाथ के शिष्य थे इस प्रकार पुरा उत्खनन साक्ष्य विश्लेषण से मीणाओं का गौरव इतिहास का नया पृष्ठ खुलेगा।

करौली क्षेत्र का मीणा समाज, लोकगीत–पुत्र जन्म यज्ञोपवीत विवाह आदि मांगलिक कार्यो में नरसी मायरा जैसी गाथाएँ, कथाएँ वैदिक थी। इनके गायक 'गथिन्' कहलाये। मन्त्र/ऋचाऐं इनसे अलग थी, संस्कार गृह्यसूत्र में वैवाहिक गाथाएँ हैं। इसी प्रकार

रामायण, महाभारत, में भी है।

मीणा नारियाँ बालक जन्म, विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर लोकगीत गाती हैं।

करौली क्षेत्र कृष्णमय है किन्तु यहां 'भक्त' देवी जागरण भी करते है नवरात्रा में कन्याऐं और लांगुरियां जिमाये जाते हैं।

करवा चौथ :– कार्तिक कृष्णा चतुर्थी सौभाग्यवती व्रत है। इसमें सात भाइयों की बहन की गाथा सुनाई जाती है।

ऋतु गीत :– 'बारहमासा' रामजी, महावीर रथ यात्रा के गीत है।

उदाहरण :– रथ के आगे बूँद पड़ी संवत् को धोखो नही भैया ।.....

होली के गीत :– करौली ब्रज मण्डल में है, बसंत पंचमी से होली जलने तक खाँड़ा रोपकर रसिया गीत गाते है।

''बीरो लखनलाल होली को खांड़ो घालसी जी,

भतीजो राजेशलाल.....

रंग में रंग डारी ऐसे स्याम् खिलारी।''

अतः लोकगीत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हैं।

बच्चों के गीत :– अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बो,

अस्सी नब्बे पूरे सौ।.....

बालिकाओं के गीत :–

शारदीय श्राद्ध पक्ष में पन्द्रह दिनो तक दीवार पर गौबर से 'सैजा' माँड़कर सांध्य काल में घर–घर जाकर गीत गाती हैं।

सैजा बाई रौ सासरियों गढ़ अजमेर,

परण पधारियां सांगानेर''.....।

काम करने में गीत :– हाथ चक्की चलाते, फसल काटते, आँगन लीपते हर समय कोई न कोई लोकगीत गाते रहते हैं।

कई दिनों तक गेय गीत :– नल के पुत्र ढोला के गीत 'ढोला' आल्हा ऊदल आदि गीत।

अनेक असभ्य वन पर्वतीय आदिम जातियों के जीवन पक्ष परिचायक ये लोकगीत ही रहे हैं।

वन पर्वतों में रहने पर भी मीणों का रंग गेहूंआ होता है। भीलों जैसा काला नहीं। इनका शारीरिक–गठन आर्यवत् है। इनके मेवासे (घर) दुर्गम एवं कच्चे–पक्के होते हैं। इनका समूह 'पाल' कहलाता है। घर से सटे ये ढोरों के बाड़े बनाते हैं।

वेशभूषा :– पगड़ी, पोतियां, शरीर पर अंगरखी, नंगे बदन कमर से घुटनों तक पंजा (½ धोती) पहनते हैं। काँटों के अभ्यस्त अतः जूते नहीं पहनते।

स्त्रीवेश :– घाघरा, कुर्ती/काँचली तथा ओढ़नी मध्यकालिक सम्पन्न मीणा कानो में 'बाली' (मुर्की), गले में 'बलेवड़ा', हाथ–पैरों में कड़े तथा कमर में कणकती स्त्रियाँ भी आभूषण लाख हाथी दांत के चूड़े, सिर पर बोरला ढूढाणी नथ नही पहनती गोदना गुदवाते हैं, शरीर पर अन्य क्षेत्र की मीणा स्त्रियां, आभूषण हँसली, सोने का तिमणियाँ नोगरी पूँचो बँगड़ी, गजरा, बाजूबँद, टणका, नेवरी, आँवला। मेव और मेर मीणे मुसलमानी धर्म के अनुयाई हैं।

खान–पान :– माँस एवं शराब तथा गेहूं, मक्का, जौ, बाजरा, दही, छाछ। बर्तनधातु, मिट्टी के होते हैं। हुक्का पीते थे आजकल बीड़ी। बूढ़ें अफीम खाते है तथा स्त्रियाँ तम्बाकू। दूध–घी बेचते है।

न्याय व्यवस्था :– थाँई/चौपाल/चबूतरा/न्यायलय पर बैठकर गांव–गली की बातें, युद्ध शांति की राजनीति होती थी। वरिष्ठ चरित्रवान् व्यक्ति (पटेल) कहलाया और पटेलो का समूह पंच।

सभी त्यौहार मनाते हैं। विरद (यशगाथा) और जयमाल सुनते है। इस अवसर पर मद्यपान प्रथा थी।

मेलों में ये अलगोजा, चंग, बांसुरी आदि बजाते है और सजते–धजते हैं।

सांस्कृतिक गाथाएँ :– गोठवाड़ के 'सोस' मीणा गाथा तथा फूलाड़ी की प्रेम कथा, शेखावाटी के डूंगरजी की गाथा, जवाहर जी गाथा, ढूंढाड़ की मेवाराव गाथा इत्यादि हैं।

करौली में रामधुन, पद, कान्हा, सुड्डा, रसिया, हेला, ख्याल, गोठ, पछवारा (ढूंढाड़) गीत प्रसिद्ध हैं।

करौली के मीणाओं में पंचायती प्रथा :– विवाह, तलाक, नाता, मौसर, दुश्चरित्र, ऋण आदि पर हुए विवादों को इनकी पंचायतें निर्णय करती हैं।

अपराधी का दण्ड :– जाति बहिष्कृति, जुर्माना एवं जातिभोज और तीर्थ यात्रा।

अपराधी परीक्षण :– 1. गाय के गोबर से लीपकर देवी की जोत जलाकर 'कटार' जमीन में धँसाते है। सच्चा

व्यक्ति ही उसे निकाल पाता है।

2. करौली में ठाकुर जी के मन्दिर या थाँई पर पंच पटेलो के बीच गंगाजली उठाते हैं।

मीणा लोकगीतों के पात्र :– 'गुरू' शास्त्रज्ञ व नीतिज्ञ ये गीत के निर्माता होते थे। 'मेडिया–गोठ!' मंडली का मुखिया यह गुरू निर्मित गीत की धुन बनाता है तथा लटके झटके से गाता–नाचता है। सहगायक व वादक संगत करते है।

लोक गीतो की रसव्यंजना :– भगवत पूजा–अर्चना उपरान्त 'कन्हैया' गीतों में गेय 'वीर रस'। 'पद' में करूण रस। 'मीणा ढांचा' में श्रृंगार रस छलकता हैं। 'मेडिया' इनकी व्याख्या करता है इस प्रकार ये लोकगीत मीणाओं की सभ्यता संस्कृति के अनुपम उपन्यास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिन्दी साहित्य कोष पृ. 118*
2. *धरती गाती है– देवेन्द्र सत्यार्थी पृ. 178*
3. *राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति – उा. नंदलाल कल्ला पृ. 1*
4. *वही पृ. 1*
5. *एन साइक्लोपीडियो ब्रिटेनिका भाग प्रथम मि.आर. विलियम्स एम पृ. 448*
6. *ऋग्वेद 10.90.1*
7. *सिद्धान्तकौमुदी पृ. 416 (वैकटेश्वर प्रेस मुम्बई 1990 ई.)*
8. *यजुर्वेद 3.53.12*
9. *जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण 3/28 महाकाव्य प्रथम अहिनक।*
10. *रामचरित मानस – तुलसीदास/बालकाण्ड 27/5*
11. *राजस्थानी लोक साहित्य – नानूराम संस्कृर्ता पृ. 48*
12. *लोकसाहित्य शास्त्र – डा. नंदलाल कल्ला पृ. 98*
13. *मीन पुराण भूमिका पृ. 5*
14. *मीणा जाती और स्वतंत्रता का इतिहास– श्री लक्ष्मीनारायण झरवाल पृ. 68*
15. *राजस्थान का इतिहास– कर्नल जेम्स टॉड पृ. 20 पृष्ठ 65*
16. *मधुर उप्रेती : बृज लोक साहित्य पृ. 42*
17. *नई दिशा पत्रिका– राष्ट्रीय मीणा महासभा पृ. 4*
18. *Research Znstitute Pune Dr. P.P. Goglekar की रिपोर्ट*
19. *ज्नरल ऑफ दा बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी– 1947 पुरातत्वता खेरखेड़ फादर हेरास पृ. 7,8*
20. *वीर विनोद – करौली की तवारीख– श्यामलदास पृ. 11*
21. *मीणा इतिहास – रावत सारस्वत पृ. 6*
22. *ऋग्वेद 7.18.6*
23. *ऐतरेय आरण्यक– ए.बी. कीथ पृ. 26*
24. *राजस्थानी लोकगीतों के अध्ययन– सूर्यकरण पारीक पृ. 110*
25. *वही पृ. 110*
26. *बृज लोक साहित्य– मधुर उप्रेति पृ. 59*
27. *मीणा इतिहास – रावत सारस्वत पृ. 131*
28. *वही पृ. 132*
29. *वही पृ. 133*

राजस्थान के आदिवासी

डॉ. मीनाक्षी मीणा
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय समाज में आदिवासी लोगों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह लोग जंगलों, पहाड़ों ,पहाड़ों आदि क्षेत्रों में अपना जीवन यापन करते है। आधुनिक काल में बाहर संपर्क में आने के फल स्वरुप इन्होंने हिंदू, ईसाई, इस्लाम धर्म को भी अपनाया है ।आदिवासी क्षेत्रों पर अंग्रेजों ने अपनी नीति व्यवस्था थोपी। बाद में बड़े–बड़े साहूकार, जमीदार, पूंजीपतियों ने अपने फायदे के लिए जंगलों को नष्ट कर दिया। जिससे इन आदिवासियों को पलायन करना पड़ा। इसलिए उन्हें अपने मूल निवास स्थानों को छोड़कर विकसित समाज से संपर्क स्थापित करना होता है। जिससे उन्हें कई समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। इनके अस्तित्व की रक्षा होना बहुत जरूरी है। आदिवासियों कें अस्तित्व का प्रश्न जंगल, जल, जमीन तथा प्राकृतिक संसाधनों से जुड़ा हुआ है। क्योंकि जल, जमीन, जंगल के बिना इनकी पहचान खत्म होने लगती है इसलिए जरूरी है कि इन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक, शिक्षित किया जाए। ताकि यह लोग अपने समाज का अस्तित्व बिना किसी खतरे के बना सके। वर्तमान में आदिवासी समाज में कई परिवर्तन आ रहे हैं। इनके क्षेत्र में जगह–जगह शिक्षा संबंधित योजनाओं के कारण यह लोग शिक्षित हो रहे हैं। और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहे हैं वह समाज में अपना अस्तित्व बना रही हैं। संविधान की पांचवीअनुसूची में इन्हें अनुसूचित जनजातियों के रूप में मान्यता दी गई है। भारत की मुख्यतः भील, मीणा, संथाल, सहरिया, मुंडा, गोंड, खखार, बोडो, कोली, भूमिज और बिरहोर आदि आदिवासी, प्रमुख है। भारत में इन आदिवासियों को कई नामों से पुकारा जाता है जैसे– 'एबोरिजिनल, इंडिजिनियस, देशज, मूलनिवासी, जंगली, वनवासी, बर्बर, जनजाति आदि।

संकेताक्षर : *आदिवासी, अनुसूचित जनजाति, योजनाओं, एबोरिजिनल, मूलनिवासी।*

भारत में आदिवासी समूहों का विवरण प्राचीन समय से मौजूद रहा है। वैदिक और उत्तर उत्तर काल तथा महाकाव्य काल में भी इन जनजातियों का उल्लेख मिलता है। भारत में आदिवासी समूह को अनुसूचित जनजाति से संबोधित किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात आदिवासियों को भारत के संविधान में अनुसूचित किया गया है। यह सभी देश व प्रांत में फैले हुए हैं। ज्यादातर पहाड़ों, जंगलों, पठारो में निवास करते हैं। इसीलिए बिजली, सड़क, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा का लाभ उठाने में और असक्षम रहते हैं। ज्यादातर प्रकृति पर ही निर्भर रहने वाले होते हैं। 'वेरियरएल्विन' ने इन आदिवासी समूह को 'एबोरिजिनल' नाम से संबोधित किया उनके अनुसार आदिवासी देश के मूल निवासी होते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'एबोरिजिनल' में कहा है कि 'आदिवासी भारतवर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज है'[1]।

भारत की जनसंख्या का 8.6% का हिस्सा आदिवासियों का है। जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से आदिवासी जनसंख्या भारत के प्रत्येक राज्य में फैली हुई है। यह आदिवासी मुख्य रूप से उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और मिजोरम आदि राज्यों में भी इनकी आबादी फैली हुई है। मिजोरम एवं लक्ष्यदीप में आदिवासी लोगों की जनसंख्या सबसे अधिक है। अरुणाचल प्रदेश, दादर एवं नागर हवेली में भी लगभग दो तिहाई लोग आदिवासी हैं। जिसमें मुख्यतः भील, मीणा, संथाल, सहरिया, मुंडा, गोंड, खखार, बोडो, कोली भूमिज और बिरहोर आदि प्रमुख है। भारत में इन आदिवासियों को कई

नामों से पुकारा जाता है जैसे– 'एबोरिजिनल, इंडिजिनियस, देशज, मूलनिवासी, जंगली, वनवासी, बर्बर, जनजाति आदि।' महात्मा गांधी ने इन आदिवासी को गिरिजन पहाड़ पर रहने वाले लोग कहकर पुकारा'[2]।

संविधान की पांचवीअनुसूची में इन्हें अनुसूचित जनजातियों के रूप में मान्यता दी गई है। अनुच्छेद 366 (25) अनुसूचित जनजातियों को ऐसी जनजातियों या जनजातीय समुदायों या उसमें शामिल जनजातीय समुदायों के भागों या समूहों के रूप में, संविधान के प्रयोजनों के लिए, अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजातियों के रूप में परिभाषित करता है। 'अधिकांश लोग जाति और जनजाति में कोई खास अंतर नहीं कर पाते हैं पर जाति व जनजाति में काफी अंतर होता है।'[3] वंदना टेटे कहती हैं कि – ''गैर–आदिवासी विश्व का धर्म और विश्वास का मनुष्य इस दंभ से भरा है कि वह 84 लाख योनियों में सबसे श्रेष्ठ है। लेकिन आदिवासी विश्वास श्रेष्ठता के इस दंभ से असहमति रखता है। वह मानता है कि इस समूची समष्टि में वह भी महज एक प्राणी है । अन्य प्राणियों एवं समस्त वस्तुजगत से अपने बौद्धिक सामर्थ्य के बावजूद वह कोई विशिष्ट जीव नहीं है।''[4]

जन जातियों की परिभाषा

हट्टन ने इन्हें आदिम जाति (प्रिमिटिवट्राइब्स) नाम से संबोधित किया है। श्यामचरण दुबे के 'अनुसार वास्तव में जनजाति व्यक्तियों का ऐसा समूह है। जो एक निश्चित होकर क्षेत्र में आवास करती है। जिनकी एक सामान्य संस्कृति होती है। और जो आज भी आधुनिक सभ्यता से के प्रभावों से परे हैं। डी. एस.मजूमदार के अनुसार 'जनजाति एक ऐसा समूह होता है। जिसके सभी सदस्य सामान्य भूभाग में निवास करते हैं। तथा उनके विवाह और व्यवसाय के कुछ विशेष नियम होते हैं'[5]। पेडिंगटन के अनुसार 'एक सामान्य भाषा, सामान्य भूभाग, सामान्य संस्कृतिक विशेषता वाले व्यक्तियों के समूह को जनजाति कहा जाता है।' गिलेन और गिलेन के अनुसार 'स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी समूह को जो एक सामान्य क्षेत्र में रहती है एक सामान्य भाषा बोलती है, और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करती है, जनजाति कहलाती है'[6]।

अधिकांश आदिवासी पितृसत्तात्मक परिवार होते हैं। अर्थात पिता की संपत्ति पुत्र को मिलती है। इन समाजों में ज्यादातर पुरुष प्रभुत्व रहता है। परंतु कुछ मातृसत्तात्मक आदिवासी भी है जैसे–मेघालय के खासी, गारो। ब्रिटिश इन आदिवासियों पर शासन करना चाहते थे। वे आदिवासियों से उनके आय के स्रोत जैसे जंगल में विद्यमान खनिज संपदा ले जाना चाहते थे। उनको अपने अधीन रखना चाहते थे। सर्वप्रथम बी. एच. बेडेनपावेल ने 1899 'जर्नल ऑफ रॉयलएशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड'' राजस्थान की आर्य प्रजातियों का अध्ययन किया। टी. एच. हैंडल ने 1875 में 'जनरल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल' में मेवाड़ के भीलों का अध्ययन किया। बार्नस ने 1907 में पश्चिमी भारत के भीलों पर एक निबंध लिखा। जॉन शॉर्ट नें मारवाड़ की जनजातियों की आदतों एवं व्यवहार का अध्ययन किया। के.आर.ए. दास ने जयपुर तथा मेवाड़ के मीणा लोगों का अध्ययन'[7]।

विश्व आदिवासी दिवस

'1982 में संयुक्त राष्ट्र संघ युवाओं ने आदिवासियों की भलाई के लिए एक कार्यदल गठित किया था। जिसकी बैठक 9 अगस्त को हुई थी. उसके बाद से ही प्रतिवर्ष' 9 अगस्त को विश्व आदिवासी दिवस मनाने की घोषणा हुई[8]। भारत में आदिवासियों द्वारा यह दिन बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। जगह–जगह पर यह आदिवासी मंच पर सांस्कृतिक समारोह का कार्यक्रम करते हैं। राजस्थान सरकार ने विश्व आदिवासी दिवस पर सार्वजनिक राजकीय अवकाश भी घोषित किया है।

जनसंख्या–जनगणना 2011 के अनुसार[9]

भारतकी जनसंख्या–2011 के अनुसार	1,21,08,54,977(1.21 अरब) (ग्रामीण) – 83,35,52,554 (शहरी) 37,73,02,411

राजस्थान की जनसंख्या 2011 के अनुसार	6,85,48,437 (6.85 करोड़) (ग्रामीण)–5,15,00,352 (75.1%) (शहरी)–1,70,48,085 (24.9%)
ग्रामीण– 5,15,00,352	पुरुष– 2,66,41,747 (51.74%) महिलाएं– 2,48,58,605(48.27%)
शहरी – 1,70,48,085	पुरुष–89,09,250 (52.26%) महिलाएं– 81,38,835(47.74%)
राजस्थान की अनुसूचित जनजातियां–	92,38,534 (92लाख) (ग्रामीण– 86,93,123) (शहरी)– 5,45,411

Source- www.censusindia.com (2011)

राजस्थान में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या – (जनगणना 2011 के अनुसार)[10]

अनुसूचित जनजाति	*2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या*
अनुसूचित जनजाति	92,38,534
भील, भीलगरासिया, ढोली भील, डूंगरीभील, डूंगरीगरासिया, मेवासीभील, रावलभील, तड़वीभील, भगलिया, भिलाला, पवारा, वसावा, वसावे	41,00,264
भील मीना	1,05,393
डामोर, डामरिया	91,463
धानका, तड़वी, तेतडिया,बालवी	96,737
गरासिया (राजपूत गरासिया को छोड़कर)	3,14,194
कथौड़ी, कातकरी, धोरकथौड़ी, धोरकातकारी, सोन कथौड़ी, सोन कातकारी	4,833
कोकना, कोकनी, कुकन	361
कोलीधोर, टोकरे कोली, कोल्चा, कोलघा	1,535
मीना	43,45,528
नायकडा, नायक, चोलीवाला नायक, कपाड़िया नायक, मोटा नायक, नाना नायक	8,355
पटेलिया	797
सेहरिया, सहारिया, सहरिया	1,11,377
सामान्य जनजाति आदि।	57,697

Source - www.censusindia.com (2011)

राजस्थान में आदिवासी का वर्गीकरण

2011की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या 6,85,48,437 है। इसमें आदिवासी जनजातियों की जनसंख्या 92,38,534 है ।

राजस्थान में मुख्यतः पश्चिमी राजस्थान, दक्षिणी राजस्थान, दक्षिणी पूर्वी तथा पूर्वी राजस्थान में यह जन जातियां पाई जाती है।

पश्चिमी राजस्थान

इस क्षेत्र में 8% आदिवासी जनजातियों का हिस्सा निवास करता है। इसमें मुख्यत मीना,धानका, नायक, कोकना, तथा सांसी जनजाति प्रमुख है। इस क्षेत्र में गंगानगर चूरू, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, जालौर, पाली, झुंझुनू आदि जिले आते हैं।

दक्षिणी राजस्थान

इसक्षेत्र में राजस्थान की सबसे सर्वाधिक आदिवासी जनजाति लगभग 4 3.8 प्रतिशत निवास करती है। इस क्षेत्र में भील, भील मीणा ,गरासिया, डामोर, तथा कथौड़ी जनजाति प्रमुख है। इस क्षेत्र में मुख्यतः उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सिरोही, प्रतापगढ़, जिले सम्मिलित है।

दक्षिणी पूर्वी तथा पूर्वी राजस्थान

इसक्षेत्र में मुख्यतः भील, भील मीणा, मीणा,सहरिया, जनजाति पाई जाती है राज्य की जनजाति का लगभग आधा भाग क्षेत्र में निवास करता है। इसमें भरतपुर, अजमेर, अलवर, सवाई–माधोपुर, टोंक, कोटा, बूंदी, बारां, जयपुर, अजमेर, झालावाड़ जिले सम्मिलित है।

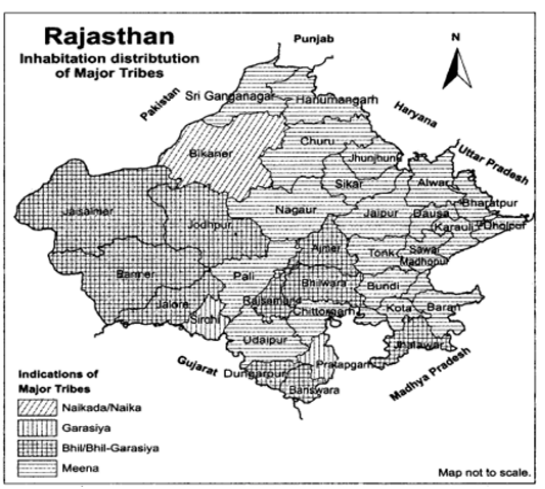

Source & www.censusindia.com (2011)

राजस्थान की अधिकतर अनुसूचित जनजातियां उत्तर पूर्वी, पूर्वी, दक्षिण पूर्व, मध्य राजस्थान दक्षिण एवं दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्र में निवास करती है। घुरिये 'आदिवासियों को पिछड़े हिंदू मानते थे (Ghurye, 1963) इसके बाद भील है। राजस्थान की मुख्य आदिवासी जनजातियांमीना, भील, गरासिया, सहरिया, डामोर, कथौड़ी है।

मीना आदिवासी

राजस्थान राज्य में अनुसूचित जनजातियों में से मीना सबसे अधिक आबादी वाली जनजाति है जो कुल आबादी का 53.5% है। 'मीणा आदिवासी का उल्लेख मत्स्य पुराण में मिलता है। मीणा जनजाति के गुरु आचार्य मुनि मगन सागर है। मीनापुराण आचार्य मुनि मगन सागर द्वारा रचित मीणा जनजाति का प्रमुख ग्रंथ है'[11]। कर्नलटॉड के अनुसार अजमेर से आगरा तक काली खोह पर्वतमाला को मीना जनजाति का मूल निवास मानते हैं। 'रिजवी' की पुस्तक 'मीना– द रूल इन प्राइस ऑफ राजस्थान' के अनुसार मीना जनजाति आर्यों से पूर्व विद्वान थी। मीना शब्द की उत्पत्ति मीन शब्द से हुई है। जिसका शाब्दिक अर्थ मछली होता है। (Rizvi,1987) जनसंख्या के मामले में यह राजस्थान में सबसे बड़ी जनजाति है। जनगणना 2011 के अनुसार राजस्थान में मीना जनजाति की जनसंख्या 43.46 लाख है मीना जनजाति मुख्यतः दौसा, करौली, सवाईमाधोपुर, जयपर, अलवर, कोटा, बूंदी, डूंगरपुर, उदयपुर, पाली, सिरोही आदि जिलों में पाई जाती है।

क्रूक के अनुसार राजस्थान के विभिन्न जिले में बसी इस जनजाति को मीणा, मीना, मैना, मैणा आदि नामों से संबोधित किया जाता है। परंतु राजस्थान से बाहर मीना शब्द से पुकारा जाता है।(बतवा,1896)मीना जनजाति में संयुक्त परिवार की प्रथा का प्रचलन रहा है इसकी संपूर्ण स्थित संपूर्ण गांव को ढाणी कहा जाता है। इनकी मुख्य उपजातिजमीदारमीना, चौकीदार मीना, भीलमीना, परिहार मीना है। इन जनजातियों में प्रमुख नाता प्रथा, छेड़ा फाड़ना, और झगड़ा राशिप्रथा प्रचलित है।डूंगरपुर में नेजानृत्य होली के अवसर पर इन जनजातियों में खासकर किया जाता है। यह अपनी सांस्कृतिक धरोहर के लिए काफी प्रचलित है।

भील आदिवासी

2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में भीलों

की आबादी लगभग 41 लाख है। राजस्थान की आदिवासी जनसंख्या में भील जनजाति का द्वितीय स्थान है। यह सबसे प्राचीन जनजाति मानी जाती है। दक्षिणी राजस्थान में यह जनजाति सर्वाधिक पाई जाती है। दक्षिणी राजस्थान में मुख्यतः बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, व राजसमंद जिले में निवास करती है। उदयपुर में सर्वाधिक संख्या में मिलती है। भील शब्द की उत्पत्ति द्रविड़ भाषा के बिलुशब्द से हुई है। इसका अर्थ है– कमान। तीर–कमान में यें लोग काफी निपुण होते हैं। यह जनजाति जंगलों में रहती है। इसलिए कृषि पर आधारित होती है।

कर्नल जेम्सटॉड भीलों को वन पुत्र भी कहा जाता है। 1916 में ब्रिटिश प्रशासन अर्थ रहे नरीएडन बुक सिमफॉक्स अपनी पुस्तक 'ए मेमायर ऑफ द खान देश भील का पर्स' भी लिखा है कि 'भील जनजाति निसंदेहउन ट्राइब्स में से एक हैं। जिन्होंने आर्यन के आक्रमण से पहले भारत में निवास किया था'[12]। भीलो का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी गौरवान्वित इतिहास रहा है। महाराणा प्रताप को हल्दीघाटी के युद्ध में भील सेना का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसलिए मेवाड़ राज्य में एक तरफ महाराणा प्रताप और दूसरी तरफ राणापूंजाभील अर्थात राजपूत और भील के प्रतीक चिन्हों के अस्तित्व मिलते हैं। पुराणों के अनुसार भील जनजाति की उत्पत्ति भगवान शिव के पुत्र निषाद द्वारा मानी जाती है। रामायण महाभारत में भील जनजाति की कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी व निश्चल प्रेम के कई उदाहरण मिलते हैं। इनमें ढाबा (कन्या मूल्य), गोल गाधेड़ो (विवाह की प्रथा), कट्टा (मृत्यु भोज), गोदना प्रथा (स्त्री पुरुष अपने शरीर पर चिन्ह प्रतीक बनवाते हैं), मौंताना प्रथा (खून –खराबे पर जुर्माना वसूलना) आदि प्रचलित है।

1857 के पूर्व भील के दो अलग–अलग विद्रोह हुए।इनकी कई उपजातियां जैसे ढोली भील, भील मीणा, रावलभील, बसावाभील, पटेलिया, पावरा (गुजरात) आदि पाई जाती है। टोटम भीलों के कुल कुल देवता को कहते हैं। इन आदिवासी जनजाति में विवाह के कई प्रकार की पाए जाते हैं जैसे– हरण विवाह, परीक्षा विवाह, क्रय विवाह, सेवा विवाह, हठ विवाह आदि। माघ पूर्णिमा के दिन सोम, माही, जाखम नदियों के संगम पर एक बड़ा मेला बेणेश्वर मेला डूंगरपुर में लगता है। इसे आदिवासियों का कुंभ भी कहा जाता है। सांस्कृतिक लोक गीत, लोक नृत्य, गवरी नृत्य, गैर नृत्य आदि भी इनमें काफी प्रचलित है। भील समुदाय को रावत, भूमिया, जागीरदार भी कहा जाता है।

गरासिया आदिवासी

गरासिया, मीना और भील के बाद राजस्थान की तीसरी बड़ी आदिवासी जनजाति है। गरासिया जनजाति दक्षिणी राजस्थान के सिरोही, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, पाली आदि जिलों में निवास करती है। गरासिया राजस्थान की आदिवासी जनसंख्या में लगभग 2.5% है । यह लोग कृषि पर निर्भर रहते हैं। इनमें विधवा पुनर्विवाह किया जाता है। इनमें गोत्र परमार, चौहान, राठौर, आदि राजपूतों की तरह ही होते हैं। गरासिया शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'ग्रास' शब्द से हुई है। जिसका अर्थ होता है – निवाला या निर्वाह करने का साधन। यह लोग स्वयं को चौहान राजपूतों का वंशज मानते हैं। भीलजनजाति से इनकी काफी समानताएं मिलती है। इनके घर को ष्घेरष् कहते हैं। गांव फालिया कहलाते हैं। यह ज्यादातर पहाड़ों की ढलानो पर अपना घर बनाते हैं। इनकी भाषा गुजराती, मेवाड़ी, मारवाड़ी भीलीआदि का मिश्रण होती है। कर्नल जेम्स टॉड ने गरासिया की उत्पत्तिगवास शब्द से बताया है जिसका अर्थ होता है–सर्वेंट। यह लोग शिव, दुर्गा और भैरव की पूजा करते हैं।

इन जनजाति के लोग मोर को अपना आदर्श पक्षी मानते हैं। वह सफेद रंग के पशुओं को पवित्र मानते हैं। इनकें लोक देवता घोड़ा बावसी होते हैं। यह आखा तीज को नव वर्ष के रूप में मनाते हैं। इनमें मौर, बादिया, पहरावना, ताणना, मेलबो, खेवणा, नाता, सेवा आदि विवाह प्रचलित है। इस जनजाति में भीलों की तरह गोदना प्रथाका प्रचलन है।महिलाओं के चेहरे पर गोदना मंडलिया वह हाथ पैर पर गोदना मंडला कहलाता है। मुख्य मेला गौर का मेला होता है ।जो सिरोही जिले में वैशाख पूर्णिमा को लगता है। युवाओं को इन मेलों में अपने जीवन साथी के चयन का भी अधिकार होता है। इनमें संस्कृतिक नृत्य मुख्यतः बॉलर, गरबा, गैर नृत्य, मोरिया, लूर, गौर नृत्य आदि प्रचलित है। समाज में जाति पंचायतों का विशेष महत्व है। पंचायत का मुखिया आर्थिक और शारीरिक दोनों प्रकार से अपराधी को दंड देता है। गरासिया प्रकृतिवाद आत्मावाद में विश्वास करते हैं।

सहरिया आदिवासी –सहरिया जन जाति की उत्पत्ति ष्सहरष से हुई है। जिसका अर्थ होता है–जंगल। यह बारां जिले की किशनगंज एवं शाहाबाद तहसीलों में निवास करती है। इस जनजाति के लोग जंगल में निवास करते हैं। इसलिए इनका मुख्य व्यवसाय जंगल से कंदमूल, फल– फूल व लकड़िया एकत्रित करने का होता है। यह लोग जंगली जानवर का भी शिकार करते हैं। इनकी बस्तियों को सहराना कहा जाता है। इनको अनेकों नामों जैसे सवारा, सोरा, सवर, आदि नामों से भी पुकारा जाता है। सहरिया जनजाति में पंचायत तीन भागों में विभाजित होती है। सबसे बड़ी चौरसिया पंचायत होती है। जिसकी बैठक सीताबाड़ी (बारां जिले) नामक स्थान पर बाल्मिकी मंदिर में की जाती है। इन में दहेज प्रथा का प्रचलन नहीं है। नाता प्रथा तथा विधवा विवाह का प्रचलन है। राजस्थान में बारां जिले में सहरिया जनजाति का मेला लगता है। यह मेला वैशाख अमावस्या के दिन भरता है।

डामोर आदिवासी –डामोर जनजातियों की उत्पत्ति राजपूतों से मानी जाती है। डामोर जनजाति के लोगों को डामरिया भी कहा जाता है। दक्षिणी राजस्थान के डूंगरपुर जिले के सीमलवाडा पंचायत समिति तथा बांसवाड़ा जिले में गुजरात सीमा पर डामोर जनजाति मुख्यता पाई जाती है। यह जनजाति मूल रूप से गुजरात की है। राज्य की कुल आदिवासी जनसंख्या में इसका भाग 0.63 प्रतिशत है। यह लोग खेती पशुपालन में खेत का कार्य करते हैं। मक्का, चावल आदि फलों की खेती करते हैं। इनमें बहुपति विवाह भी पाया जाता है। इस जनजाति में लोग मांसाहारी वह शराबप्रिय के होते हैं। इनमें नातेदारी प्रथा तलाक एवं विधवा विवाह का प्रचलन है। विवाह में वधू मूल्य होता है। इनका मुख्य मेला बेणेश्वर मेला (डूंगरपुर), ग्यारस की रेवाड़ी का मेला मुख्य है। आर्थिक दृष्टि से यह लोग काफी पिछड़ी जनजाति है।

कथौड़ीआदिवासी–कथौड़ी जनजाति मुख्य भील ही होती है। यह जनजाति समुदाय जंगल से बाहर महुआ, शहद, मूसली, गोंद, कोयला, आदि एकत्रित करने का कार्य करते हैं। खैर के पेड़ से कथा निकालने के कार्य में निपुण होने के कारण उदयपुर व्यवसायियों ने इन्हें उदयपुर में लाकर ही बसाया। कत्था तैयार करने के कारण इन्हें कथौड़ी कहा जाता है। उदयपुर जिले के कोटडा,सराडा एवं झाडोल पंचायत समिति में बसे हुए हैं। बाकी बारां, झालावाड़ में बसते हैं।

निष्कर्ष

'जनजातियों के लोगों का हिंदू तथा अन्य सभी जातियों के साथ संपर्क के परिणाम स्वरुप उनकी जीवन विधि में परिवर्तन आया है। जनजातियों के इस रूपांतरण के दो प्रमुख कारण बताए हैं। परंपरागत तथा आधुनिकता।'[13] भारतीय संविधान की पांचवी अनुसूची में अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन व नियंत्रण हेतु राज्य की कार्यपालिका की शक्तियों का विस्तार किया गया है। इन्हीं शक्तियों के आधार पर राज्य सरकार ने इन जनजाति समुदाय के विकास के लिए 1975 में जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग की स्थापना की। जिसमें इन जनजातियों के लिए विकास के कार्यक्रम, योजना, नीति आदि का समन्वय किया जा सके। ताकि अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक विकास हो सके। पलायन विस्थापन आदि की वजह से यह लोग अपने मूल संस्कृति भाषा से दूर होते जा रहे हैं। 'पारंपरिक आधारों को देखा जाए तो उसके संबंध में कई प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। क्या आदिवासी समाज की संस्थाओं व्यवस्था तथा कार्य प्रणालियां लुप्त हो गई है ? या रूपांतरित हो गई है।'[14]

जनजातियों में सामाजिक एवं विधिक रूप से तो परिवर्तन आया ही है। लेकिन कानूनी अधिकारों के संरक्षण के बाद भी जनजातियों के मानव अधिकारों के हनन की घटनाएं ज्यादा घटी है। 'ह्यूमनराइट्सवॉच की रिपोर्ट के अनुसार दलित व एवं स्वदेशी लोग जिन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में जाना जाता है। वह लगातार भेदभाव बहिष्कार एवं हिंसा का शिकार हो रहे हैं। यह भी उल्लेखित किया गया है कि भारत सरकार द्वारा बनाए कानून एवं नीतियां इन को संरक्षण प्रदान करती है। लेकिन उनका कार्यान्वयन सही तरीके से नहीं हो पा रहा है'15 सरकार की तरफ से योजनाएं, नीतियां भी संचालित की जा रही है। जो इन आदिवासियों को स्वावलंबी बनाने के साथ–साथ समाज के विकास की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास भी कर रही है। वर्तमान में वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण की वजह से आदिवासी जनजातियां ने सभ्यता व संस्कृति में अपनी पहचान बना ली है। आदिवासियों को अपने हक व सांस्कृतिक पहचान बनाने के लिए कई आंदोलनवह संघर्ष भी करनी पड़े। पंचवर्षीय योजना के तहत शिक्षण जागृति के कारण जनजाति समाज में सामाजिक, आर्थिक, अधिकारों की जागरूकता से समाज में प्रतिष्ठा भी मिली है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वेरियर. एल्विन ए (1943) ''द रिलिजन ऑफ एन इंडियन ट्राइबस,'' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लंदन'' पृ. स.–7
2. आदिवासी –विकिपीडिया ।
3. आदिवासी दर्शन (2020), 19 जुलाई, पृ. स–4
4. टेटे. वंदना, (2013) ''आदिवासी साहित्यः परंपरा और प्रयोजन'', नोशन प्रेस प्रकाशन पृ. स–8
5. मजूमदार. डी.एन, (1958) ''रेस एंड कल्चर'', एशिया पब्लिशिंग प्रकाशन, मुंबई, पृष्ठ सं.– 356
6. गिलन.एंनगिलन. (1914) ''कल्चरलसोशियोलॉजी'' 19414 ,मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्कपृ. सं.– 134
7. उप्रेती. हरीश चंद्र, (2007) ''भारतीय जनजातियां संरचना एवं विकास'', राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर. पृ. संख्या– 427
8. विश्व आदिवासी दिन– विकिपीडिया ।
9. भारत की जनगणना (डब्लू. डब्लू .डब्लू .सेंसस ऑफ इंडिया. 2011)
10. भारत की जनगणना (डब्लू .डब्लू .डब्लू .सेंसस ऑफ इंडिया. 2011)
11. भीलविकिपीडिया
12. मीनाविकिपीडिया
13. उप्रेती. हरीश चंद्र, (2007) ''भारतीय जनजातियां संरचना एवं विकास'', राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर. पृ. संख्या–244
14. भार्गव. नरेश, (2020), ''राजस्थान जनरल ऑफ सोशियोलॉजी'' अक्टूबर, वॉल्यूम12, पृ.– स. 193
15. मीणा. एस.पी, (2015) ''भारतीय जनजातियां एवं मानव अधिकार'' आविष्कार पब्लिशर डिस्ट्रीब्यूटर, जयपुर. पृ. स.4

वैश्विक स्तर पर महात्मा गांधी के विचारों का प्रभाव

डॉ. दिनेश कुमार सेवग
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान (विद्या सम्बल योजना)
राजकीय महाविद्यालय, खाजूवाला, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत को स्वतंत्रता दिलाने में महात्मा गांधी के अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत की जो भूमिका रही उसका असर बाद में विश्व के अन्यानेक देशों में देखने को मिला। पिछले दो सौ वर्षों से राज कर रही ब्रिटिश हुकूमत ने जिस हिंसात्मक स्वतंत्रता संग्राम को अपने दमनचक्र से कुचल दिया, महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन के आगे उसके पैर नहीं टिक पाए और उसे भारत को स्वतंत्र घोषित कर आखिरकार पलायन करना पड़ा। इसके बाद तो विश्व के अनेक अन्य देशों में भी उपनिवेशवाद के विरुद्ध इसी प्रकार के संघर्ष शुरू हो गए जिसके परिणाम स्वरूप कई देशों में राजसत्ता की तानाशाही खत्म हो गई तो कुछ देशों में रंगभेद और नस्लभेद समाप्त हुआ। जिस दक्षिण अफ्रीका में स्वयं गांधी को रंगभेद का शिकार होना पड़ा उसी के विचारक नेल्सन मंडेला की इस अनीति के विरुद्ध जीत हुई। गांधी के विचारों से प्रभावित होकर विश्व के कई चिंतक-विचारक गांधीजी के अनुयायी बन गए तो कई राजनेता अपने देश को स्वतंत्र कराने में सफल हुए। गांधी ने देश में अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराई को समाप्त करने के लिए पहल की तो स्त्री-शिक्षा के लिए भी उन्होंने भरसक प्रयास किए। आज विश्वभर में बालिका-शिक्षा और महिला सशक्तीकरण की मुहिम उन्हीं के विचारों और प्रेरणा का प्रभाव है। पिछले पांच-सात दशकों में वैश्विक परिदृश्य में बेतहाशा बदलाव आए हैं। आज लगभग सभी राष्ट्र स्वतंत्र है और अपना शासन स्वयं चलाते हैं परन्तु महात्मा गांधी के विचार और उनके दर्शन का प्रभाव विश्व के इन सभी राष्ट्रों में कमोबेश देखने को मिल जाएगा।

***संकेताक्षर :** अहिंसा, सत्य, सत्याग्रह, अस्पृश्यता निवारण, स्त्री शिक्षा।*

महात्मा गांधी ने जिस अहिंसात्मक तरीके से दक्षिण अफ्रीका के बाद भारत में ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध मोर्चा खोला उसके आगे अंततः अंग्रेजों के पैर टिक नहीं पाए और उन्हें भारत को स्वतंत्र घोषित कर यहाँ से अपना बोरिया बिस्तर समेटना पड़ा। गांधीजी के अहिंसा रूपी सबसे बड़े हथियार से मिली इस सफलता से प्रेरित होकर विश्व के अनेक अन्य देशों में भी इसी तरह के आंदोलन प्रारम्भ हो गए और इन आंदोलनों में आम लोगों ने हिस्सा लेना शुरू कर दिया। पास्कल एलेन नाज़रेथ के अनुसार, ''भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् पूरे विश्व के उपनिवेशवाद के विरुद्ध सफल आंदोलन शुरू हुए। संयुक्त राज्य अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका में वर्णभेद उत्पीड़न का खात्मा हुआ, तो पौलैंड रूमानिया, चैकोस्लोवाकिया, पूर्व जर्मनी, लाट्विया, लिथुआनियां, फिलिपाइंस, रूस, चिली, सर्बिया, जॉर्जिया और यूक्रेन में तानाशाही समाप्त हुई। तिब्बत और बरमा के लोगों के साथ विश्व-भर के पर्यावरणविदों और अन्य लोगों के साहसिक संघर्षों में महात्मा गांधी की निरंतर प्रेरणा का प्रभाव देखा गया। इसके अलावा पूरे विश्व के किसी भी दूसरे आधुनिक नेतृत्व की बजाय उन पर सबसे अधिक पुस्तकें लिखी गईं और उनके अहिंसात्मक रणनीति कौशल की सराहना के लिए सर्वाधिक सूचना-केन्द्रों और समितियों का गठन हुआ।''[1]

अहिंसा

तानाशाही और हिंसात्मक दमनचक्र के खिलाफ अहिंसा दुनिया का सबसे बड़ा हथियार है। दूर क्यों जाएँ, अपने ही देश भारत में 1857 की क्रान्ति के रूप में हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के असफल होने का सबसे बड़ा कारण यही था

कि यह आंदोलन हिंसात्मक हो उठा था। बागी सिपाहियों ने जगह-जगह अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी बंदूकें तान दी थीं। गोला-बारूद और अन्य हथियारों का इस्तेमाल ब्रिटिश-राज के विरुद्ध होने लगा, जिसे अंग्रेजों ने दमनतापूर्वक कुचल दिया, जबकि महात्मा गांधी द्वारा अहिंसात्मक तरीके से शुरू किया गया आंदोलन धीरे-धीरे रंग लाया और आजादी के इस अनुष्ठान से जन-साधारण जुड़ गया। अहिंसक आंदोलन के परिणाम भले ही देर से निकले लेकिन यह परिणाम स्थाई और शांति-सुकून देने वाले होते हैं।

गांधीजी के लिए अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा न करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका अर्थ व्यापक रूप से है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा का अर्थ मनसा, वाचा, कर्मणा किसी के प्रति बुराई का भाव न रखना है। अहिंसक की किसी से शत्रुता नहीं होती फिर भी कुछ ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं, जो उस अहिंसक व्यक्ति के प्रति शत्रुता का भाव रखते हों। ऐसे व्यक्तियों के लिए भी बुराई की भावना नहीं होनी चाहिए। यदि चोट करने वाले पर चोट की जाए तो फिर अहिंसा कहाँ होगी ? इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अहिंसा में विश्वास रखने वाला भीरुता के कारण आत्मसमर्पण कर दे। यद्यपि अहिंसा का जीवन में प्रयोग इतना सरल नहीं है, जितना दिखाई देता है। यह एक लक्ष्य है, जिसे जीवन में प्राप्त करना चाहिए।[2] जीवन की इस अहिंसक योजना में देशभक्ति के नाम पर यूरोप में होने वाले युद्धों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

प्रो. एलन ब्रिंकली कहते हैं, ''बहुत-सी क्रांतियां कई महत्त्वाकांक्षाएँ उपजाती हैं, जो वास्तव में कभी भी पूरी नहीं हो सकती, कुछ एकदम छलावा और धोखा होती है। अमेरिकी क्रांति अफ्रीकी मूल के अमेरिकियों, स्थानीय अमेरिकियों और एक सीमा तक स्त्रियों को बहिष्कृत कर शीघ्रातिशीघ्र स्वतंत्रता की धारणा का, जो उसकी प्रेरणा थी, सीमांकन कर दिया। फ्रांस की क्रांति ने एक हिंसक क्रोध के उन्माद और आवेश को जन्म दिया और परिणामस्वरूप लगभग एक शताब्दी तक राजतंत्रवाद चलता रहा। रूसी और चीनी क्रांतियों ने तानाशाही, उत्पीडन् और गतिहीनता को जन्म दिया।''[3] सन् 1948 में गांधी की नृशंस हत्या के पश्चात सच्चा गांधी बिल्कुल अदृश्य हो गया, किन्तु आधुनिक इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाचक्र की बानगी के रूप में, उपनिवेशवाद और वैयक्तिक दमन के खिलाफ एक साथ विरोध करने वाले व्यक्ति के रूप में, जिस बीसवीं सदी की दुनिया को रूपांतरित करने में यशस्वी योगदान दिया, उन्हें उचित स्थान देना अपरिहार्य है।

सत्य

अहिंसा के बाद महात्मा गांधी ने 'सत्य' को मनुष्य मात्र के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बताया। गांधीजी जीवन-भर सत्य के प्रयोग करते रहे, जो उनकी आत्मकथा के अंश है। उन्होंने कहा था कि उनका जीवन ही उनका दर्शन है और सत्य के प्रयोग वे अपने जीवन में निरन्तर करते रहे। सत्य गांधीजी के जीवन के कार्य कार्य पद्धति की एक महत्त्वपूर्ण धुरी थी। उन्होंने सत्य को एक प्राण मानते हुए कहा, ''सत्य के बिना जीवन में किसी सिद्धान्त या नियम का पालन करना असंभव है।''[4] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गांधीजी ने सत्य का पालन करने पर बल दिया। उनके मुताबिक, ''सत्य के पालन में पूर्वग्रह, टालमटोल, दुराव, प्रवंचना या विकृति का कोई स्थान नहीं है। मनुष्य को वीरतापूर्वक सत्य को धारण करना, सत्य के लिए कष्ट सहना, यहाँ तक कि सत्य के लिए मर मिटना चाहिए। किन्तु सत्यपालन में सहिष्णुता, उदारता एवं व्यवहारगत विनम्रता अन्तर्निहित हैं। जैसे किसी को भी अपने सत्य का परित्याग कदापि नहीं करना चाहिए, वैसे ही उसे हठाग्रही भी नहीं होना चाहिए और न ही अपने सत्य को दूसरो पर लादना चाहिए।[5] महात्मा गांधी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य के आचरण की आवश्यकता पर बल दिया और उनके इस सिद्धांत का वैश्विक स्तर पर व्यापक प्रभाव पड़ा। 'सत्यमेव जयते' उनके जीवन का दर्शन रहा है। अपनी आत्मकथा सत्य के प्रयोग की भूमिका में वे लिखते हैं कि मुझे आत्मकथा कहाँ लिखनी थी, मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किए उन्हें बताना था। यह बात सत्य है कि इसमें मेरा जीवन मिलजुल जाने से कहानी अेक जीवन-वृत्तांत जैसी अवश्य बन गई है। उसके प्रत्येक पृष्ठ पर मेरे स्वयं के प्रयोग ही प्रकट हों तो मैं उस कथा को निर्दोष मानूंगा। गांधीजी की इस आत्मकथा के भारतीय भाषाओं में ही नहीं, अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुए जिनका वैश्विक स्तर पर व्यापक प्रभाव पड़ा। 'सत्य के प्रयोग' जैसी छोटी-सी पुस्तिका से प्रेरित होकर उसे आधार बनाते हुए हिन्दी के यशस्वी उपन्यासकार गिरिराज किशोर ने तो 'पहला गिरमिटिया' नाम से 900 पृष्ठ का वृहद् उपन्यास लिख डाला।

अस्पृश्यता (छुआछूत)

गांधी ने अस्पृश्यता को समाज का सबसे बड़ा कलंक तथा घातक रोग माना, जो न केवल स्वयं को अपितु संपूर्ण समाज को नष्ट कर देता है। गांधी का कहना था कि इसी अस्पृश्यता के कारण हिंदू समाज पर कई संकट आए। वे कुछ हिंदुओं के इस तर्क से भी सहमत नहीं थे कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म का एक अंग है, जिसे समाप्त करना संभव नहीं है। जेने शार्प लिखते हैं, ''गांधी, जार, निकोलस, लेनिन और स्टालिन, कैसर विलहेल्स और एडोल्फ हिटलर, वूड्रो विल्सन और फ्रेंकलिन रुजवेल्ट, चीन के आखिरी सम्राट सन यात सेन, चियांग काई शेक और माओत्से-तुंग के समकालीन थे। उन्होंने उस समय के दो अंतरालों-जब सेनाएं बंदूकों से युद्ध करती और जब एटम बमों से युद्ध होने लगे-को जोड़ा। उस समय जातिवाद अपनी चरम सीमा पर था। स्त्रियों, अछूतों और दूसरे कई लोगों को आदर और अवसर नहीं मिलते थे, उन्हें सामाजिक और राजनीतिक बुराई समझे जाते थे। इस समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने के लिए गांधी प्रवृत्त हुए।''[6] भारत में आजादी के आंदोलन के समय गांधीजी देश के एक सर्वमान्य नेता के रूप में माने गए और उनकी कही हुई बात और घटना का असर जनता पर होता था। गांधीजी छुआछूत और जातिगत भेदभाव को मानवता के विरुद्ध मानते थे। अस्पृश्यता मिटाने के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किए और अछूत तबके को हरिजन यानी ईश्वर की संतान का नाम दिया, जिसकी पूरे देश में व्यापक प्रतिक्रिया हुई, परन्तु गांधीजी के अनुयायियों ने इसे गांव-गांव में आत्मसात किया और तत्कालीन पारंपरिक समाज की उपेक्षा के शिकार भी हुए। लेकिन धीरे-धीरे इसका व्यापक असर हुआ। भारत ही नहीं विदेशों में भी रंगभेद और नस्लभेद के विरुद्ध अनेक आंदोलन हुए, जिनमें गांधीजी के अनुयायी नेल्सन मंडेला का जीवन इस विषय में सबसे बड़ा उदाहरण है। नेल्सन मंडेला जैसे विश्व के अनेक नेताओं ने अस्पृश्यता और रंगभेद और नस्लभेद की अनीति का जमकर विरोध किया और इस अहिंसात्मक विरोध में अंततः जीत उन्हीं की हुई।

अस्पृश्यता, रंगभेद और नस्लभेद जैसी सामाजिक बुराई बहुत प्राचीन है। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी स्वयं इसके शिकार हुए थे। वे 24 वर्ष की उम्र में 1893 में दक्षिण अफ्रीका वहां के एक व्यापारी दादा अब्दुला का केस लड़ने गए थे। इसी केस के सिलसिले में उन्होंने डर्बन से प्रिटोरिया जाने के लिए फर्स्ट क्लास का ट्रेन टिकट लिया लेकिन एक यूरोपियन यात्री की आपत्ति पर उन्हें ट्रेन से न सिर्फ नीचे उतारा गया बल्कि उनका सामान भी फेंक दिया। यह घटना 7 जून, 1893 की है। उस समय दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद चरम पर था और काले लोगों को फर्स्ट क्लास बोगी में यात्रा करने की इजाजत नहीं थी। इस घटना का गांधीजी के जीवन बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने इस बुराई को मिटाने के लिए जीवनपर्यंत प्रयास किए, जिसके परिणामस्वरूप न सिर्फ अफ्रीका में रंगभेद समाप्त हुआ बल्कि रंगभेद, नस्लभेद और अस्पृश्यता के खिलाफ विश्वभर में गांधीजी के विचारों और सिद्धांतों का व्यापक असर पड़ा। यूनेस्को द्वारा मानवाधिकार से संबंधित किए गए कार्यों में भी रंग एवं रंगभेद से संबंधित सुझावों की घोषणा 1978 में की गई तथा नई पीढ़ी के मानव अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया।

सत्याग्रह

महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद और भारत में अस्पृश्यता के खिलाफ जहाँ अहिंसा का सहारा लिया वहीं संघर्ष की प्रचलित प्रणालियों से भिन्नता स्पष्ट करने के लिए 'सत्याग्रह' नामक नई शब्दावली को भी अपनाया। कहते महात्मा गांधी को सत्याग्रह की प्रेरणा गुजरात के एक चारण से मिली थी। इस संबंध में एक बात प्रचलित है कि एक समय चारणों के गांव में माताजी की बड़ी ओरण (गोचर भूमि) थी, उस पर पौरबंदर दरबार के कहने पर काश्त होने लगी। उसके विरुद्ध चारणों ने दरबार के मुख्यालय के सामने धरना दिया। गांधी उस समय वकालत करते थे। चारणों को धरने पर बैठा देखकर वे हँसकर बाले कि ये बेचारे मूक-मूर्ख लोग औरतों की तरह अपनी धोती की चुनरी सिर पर ओढ़कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं, इन बेचारों की कौन सुनेगा! लेकिन दो-तीन बाद ही दरबार स्वयं चारणों को मनाने के लिए आए और उनकी माँग पूरी की। यह सब देखकर गांधीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने विचार किया कि इस धरने में कोई रहस्य छिपा हुआ है। फिर पोरबंदर के आस-पास विद्वान चारणों से धरने के बारे में जाना और उनसे प्रेरणा भी ली। गांधीजी ने अपने सिद्धांत में इस तरह के धरनों को 'सत्याग्रह' का नाम दिया।[7]

गांधीजी के अनुसार, ''सत्याग्रह करने वाला व्यक्ति निर्भीक होता है। उसके मन में भय नहीं होने के कारण वह किसी अन्य की दासता में नहीं रहता है और वह

दूसरों के मनमाने कार्यों का विरोध करता है। आवश्यकता पड़ने पर उसके द्वारा सत्याग्रह का प्रयोग न केवल शासन के विरुद्ध अपितु समाज के विरुद्ध भी किया जा सकता है। कई बार समाज भी शासन के समान त्रुटिपूर्ण कार्य करने पर उतारू हो जाता है। ऐसे में व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह समाज के विरुद्ध सत्याग्रह करें। स्वयं 'थोरू' ने दास व्यापार के विरुद्ध सत्याग्रह किया था, क्योंकि उनके विचारों में दासों के व्यापार में लिप्त उनका समाज अनैतिक कार्य में संलग्न था, अतः वे स्वयं समाज के विरुद्ध उठ खड़े हुए। 'मार्टिन लूथर' ने जर्मनी में कैथोलिक समाज के प्रति विद्रोह किया और स्वतंत्र विचारों से देश को नया बतलाया। इस प्रकार सत्याग्रह को चमत्कारिक उपचार के रूप में माना जा सकता है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति को भय रहित होकर स्वतंत्र जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त होती है।''[8] गांधीजी ने 'सत्याग्रह का सर्वप्रथम प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में किया। इस शब्द (सत्याग्रह) का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के लिए बने अपमानजनक ऑर्डीनेंस के प्रतिरोध में किया गया। यह संघर्ष जो सन 1906 से 1914 तक चलता रहा, सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए क्रान्तिकारी ढंग का इतिहास बनाने में समर्थ हुआ। वास्तव में, सत्याग्रह शुद्ध आत्मबल है, जिसे गांधीजी ने जीवनपर्यंत सफल क्रियात्मक स्वरूप प्रदान किया। दक्षिण अफ्रीका के आंदोलन का नेतृत्व करते हुए गांधीजी द्वारा भारत में बारदोली, सिद्धापुर, कोटाई तथा तालुरू के राष्ट्रव्यापी स्तर पर किए गए सत्याग्रह इस तथ्य का प्रमाण है।[9] उनके इस सत्याग्रह का प्रभाव भारत और पूरे विश्व में आज भी देखने को मिलता है। अहिंसा और सत्याग्रह के साथ आज सर्वत्र दिए जाने वाले धरने और प्रदर्शन गांधीजी के इस सिद्धांत और सत्याग्रह के प्रति उनके विचारों को वैश्विक स्तर पर आत्मसात किए जाने के पुख्ता प्रमाण हैं। भारत में पिछले वर्ष हुआ लंबी अवधि का किसान आंदोलन इसका ताजा उदाहरण है। सरकार द्वारा किसानों पर थोपे गए तीनों कृषि बिल वापस लेने पड़े। सत्याग्रह के सामने सरकार और सत्ता को अन्ततः झुकना ही पडता है।

स्त्री-शिक्षा

मनुष्य समाज पूरे विश्व में पुरुष और स्त्री दोनों से मिलकर बना है। मनुष्य समाज है परिवार पर टिका हुआ है और परिवार बनाने के लिए विवाह-संस्कार नितांत आवश्यक है। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों की आवश्यकता होती है। इसीलिए स्त्रियों को 'आधी आबादी' के नाम से जाना जाता है। भारतीय समाज में हम स्त्रियों की स्थिति से भलीभांति परिचित हैं। उसे प्राचीन काल से ही अबला समझकर न तो पूरे अधिकार दिए गए और न ही उनके निजी जीवन में स्वतंत्रता, पर्दाप्रथा, बालविवाह, दहेज, विधवा का विवाह न करना, वेश्यावृत्ति, अनमेल विवाह आदि अनेक कुरीतियाँ हैं। उस पर कन्या भ्रूणहत्या के कारण महिलाओं की जनसंख्या में निरंतर कमी आ रही है। गांधीजी कहा करते थे, ''देश का भाग्य स्त्रियों की मुट्ठी में है। जब तक भारत की स्त्रियां पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर पूरी शक्ति के साथ काम नहीं करेगी तब तक हमें स्वराज नहीं मिल सकता, जिसका सपना मैं देखता हूँ।''[10] वे स्त्रियों की बड़ाई करते हुए कहते थे कि श्री, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा, अहिंसा, पवित्रता, शांति, दया, नम्रता सब स्त्रीलिंग नाम है। ये प्रायः गुण स्त्रियों में ही मिलते हैं। धर्म की रक्षा जैसी स्त्री कर सकती है, दूसरा कोई नहीं कर सकता, इसलिए स्त्रियों को शिक्षित करना प्राथमिक आवश्यकता है।

गांधीजी ने स्त्री को कभी भी कमजोर, दासी और भोग की वस्तु नहीं समझी; उन्होंने स्त्री को स्त्री के रूप में देखकर उसे बराबरी का दर्जा देने की बात कही और आंतरिक जागृति और आत्मबल के साथ जीवन जीने की बात कही। इस तरह हम देखते हैं कि सामाजिक समस्याओं को दूर कर महिला उत्थान के गांधीजी ने जो अपने विचार प्रकट किए और स्त्री शिक्षा तथा उनके उत्थान के लिए जो कार्य किए उसका प्रतिफल वर्तमान में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। आज बालिका शिक्षा और महिला सशक्तीकरण की मुहिम न सिर्फ भारत में बल्कि पूरे विश्व में चलाई जा रही है। अब महिलाओं के ग्राम्य स्तर से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर के संगठन बन गए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के उस समय के चुनौतीपूर्ण समय में गांधी ने अहिंसा, सत्य, सत्याग्रह अस्पृश्यता निवारण और स्त्री शिक्षा की अलख जगाकर न सिर्फ देश को स्वतंत्रता दिलाई बल्कि पूरे विश्व में उनके दर्शन, विचार और सिद्धांतों का व्यापक प्रभाव पड़ा और विश्व के अनेक चिंतकों, विचारकों, राजनेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने उनका अनुसरण करते हुए अपने देशों में इसी प्रकार की

अलख जगाई। आधुनिक नायकों के विषय में लुई फिशर लिखते हैं, ''आधुनिक इतिहास के बड़े-बड़े नेतृत्वकर्ता, यथा चर्चिल, रूजवेल्ट, लॉयड जॉर्ज, स्टालिन, लेकिन, हिटलर, वुडरो विल्सन, कैसर, लिंकन, नपोलियन, मैटरनिक, टैलीरैंड आदि के हाथ में सत्ताबल था। लेकिन केवल मात्र कार्ल मार्क्स ही एक ऐसा व्यक्ति है जो गांधी की तरह लोगों के मन-मस्तिश्क पर प्रभाव डाल सकता है। हालांकि उनके सैद्धांतिक मत, सरकारी प्रणाली को निर्देशित करने के लिए थे। एक ऐसे व्यक्तित्व को ढूँढ़ने के लिए जिस प्रत्येक व्यक्ति की चेतना को गांधी ने जितना प्रभावित किया हो, इसके लिए हमें कई शताब्दियों के पीछे जाना होगा वे सब एक दूसरे युग के धार्मिक लोग थे। गांधी ने दिखा दिया कि ईसा मसीह, बुद्ध और हेब्रू के पीर-पैगंबर और ग्रीस के ऋषियों के विचारों को आधुनिक काल और राजनीति में भी काम में लिया जा सकता है। उन्होंने धर्म के ईश्वर के बारे में उपदेश नहीं दिए वरन वे स्वयं एक जीते-जागते धर्मोपदेश थे।''[11]

पिछले पांच-सात दशकों में वैश्विक परिदृश्य में बेतहाशा बदलाव आए हैं। आज लगभग सभी राष्ट्र स्वतंत्र है और अपना शासन स्वयं चलाते हैं परन्तु महात्मा गांधी के विचार और उनके दर्शन का प्रभाव विश्व के इन सभी राष्ट्रों में कमोबेश देखने को मिल जाएगा। इसलिए गांधी और उनके विचार संपूर्ण विश्व के लिए कल भी प्रासंगिक थे, आज भी हैं और भविष्य में भी प्रासंगिक बने रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गांधी का अनन्य नेतृत्व (गांधीज आउटस्टैंडिंग लीडरशिप का हिन्दी संस्करण), पॉस्कल एलन नाज़रेथ, पृष्ठ 43*
2. *स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी (चतुर्थ संस्करण, मद्रास) पृ. 346*
3. *म्हैं गांधी बोलूं, सं. भरत ओला, पृष्ठ 159*
4. *फ्रॉम यरवदा मंदिर, अहमदाबाद, 1945, पृष्ठ 21*
5. *सर्वेपल्ली डॉ. राधाकृष्णन, महात्मा गांधी एस्सेज एंड रिफलेक्शन, पृष्ठ 561-62*
6. *गांधी का अनन्य नेतृत्व, पॉस्कल एलन नाज़रेथ, पृष्ठ 47*
7. *चारण मत चन्द्रिका, भाग-2, रूपदान बारहट, पृष्ठ 29*
8. *गांधी दर्शन मीमांसा, प्रकाश नारायण नाटाणी, पृष्ठ 65*
9. *वैश्वीकरण, मानवाधिकार और गांधी, शिखा गढ़वाल, पृष्ठ 102*
10. *संपूर्ण गांधी वाड्मय, खंड-26, पृष्ठ 362*
11. *म्हैं गांधी बोलूं, सं. भरत ओला, पृष्ठ 154*

लोकधर्मी गीत–परम्परा में नारी शक्ति का योगदान

डॉ. यज्ञेश नारायण पुरोहित
व्याख्याता हिन्दी, श्री नेहरू शारदापीठ (पी.जी.) महाविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लोकगीत, विशेषतः राजस्थानी लोकगीतों के संबंध में विचार करते समय एक तथ्य की ओर ध्यान सहज ही चला जाता है कि इन गीतों के केंद्र में अगर कोई है तो वह है नारी। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि ऐसे अधिकांश गीत स्त्रियों द्वारा ही रचे गए हैं और बहुलांश में उनके द्वारा ही गाए जाते रहे हैं। इन लोकगीतों में नारी के कोमल मनोभावों का बड़ा मनोहारी अंकन हुआ है, साथ ही उसके प्रति अत्यंत स्नेह और सम्मान प्रदर्शित किया गया है। ये लोकगीत नारी के सद्‌गुणों को और उसकी अन्य विशेषताओं को पुष्ट करने वाले गीत हैं। इन लोकधर्मी गीतों की परम्परा में नारी शक्ति के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। वह नारी ही जिसने लोकगीतों की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने के साथ इसके संरक्षण और संवर्द्धन में अपना महनीय योगदान दिया है, तो साथ ही अपने परिवार और कुटुम्ब को जोड़े हुए रखा है। निम्नांकित गीत इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं– 1. बन्नो म्हारो श्याम सुन्दर अवतार... 2. सुणो जी भंवर म्हांनै सुपनो जी आयो... 3. कुण जी खुदाया कुआ बावड़ी... 4. तूं कुरजां म्हारी भायेली ए... 5. बीरा रमक झमक कर आयज्यो...।

संकेताक्षर : *लोकगीत, लोकसाहित्य, राजस्थानी गीत, कुटुम्ब–जीवन।*

किसी भी समाज में दो तरह के लोग होते हैं। एक वे जो अपने आपको विशिष्ट मानते हैं और जिन्हें आभिजात्य संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। दूसरे वे जो सहज स्वाभाविक जीवन जीने वाले सामान्य लोग होते हैं। वस्तुतः ये सामान्य जन ही लोकजीवन और लोक–संस्कृति के खरे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। इस संबंध में हिंदी के मूर्धन्य विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन सहज स्वीकार्य प्रतीत होता है। उनके अनुसार, ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं।''[1]

प्रोफेसर किटरीज ने भी कहा है कि शिक्षा इस मौखिक साहित्य की मित्र नहीं होती। वह उसे इस वेग से नष्ट करती है कि देखकर आश्चर्य होता है। ज्यों ही कोई जाति पढ़ना–लिखना सीख जाती है त्यों ही वह अपनी परम्परागत कथाओं की अवहेलना करने लग जाती है, यहाँ तक कि उनसे थोड़ी–बहुत लज्जा का अनुभव भी करने लगती है और अन्त में उनको याद रखने तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित करने की इच्छा एवं शक्ति से भी हाथ धो बैठती है। जो चीज कभी समस्त जनता की थी वह केवल निरक्षरों की सम्पत्ति रह जाती है, और यदि पुरातत्त्व–प्रेमियों द्वारा संगृहीत न कर ली जाए तो सदा के लिए विलुप्त हो जाती हैं।

लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है।[2] व्यक्ति से रहित समान रूप से समाज की आत्मा को व्यक्त करने वाली मौखिक अभिव्यक्तियां लोक साहित्य की

श्रेणी में आती है।[3] लोकगीतों की परम्परा अक्षुण्ण रही है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार संगीत में इनका बीज निहित है।[4]

लोकगीतों के भी अनेक भेद-प्रभेद हैं। इनकी रसधारा कई रूपों में बहती है। जन मानस के अलग-अलग वर्ग भिन्न-भिन्न रूपों में अपने गीत गाते हैं। राजस्थानी लोकगीतों में पुरुषों के लोकगीत अलग है और स्त्रियों के अलग। इसी प्रकार किसानों के दूसरे और संतों के दूसरे, यहाँ तक कि बालक तथा बालिकाओं के गीत भी भिन्न-भिन्न हैं। सावन में दूसरे गीत गाए जाते हैं और फागण में दूसरे ही।[5]

राजस्थानी लोकगीतों में विशेष रूप से रातिजागे के गीतों के माध्यम से नारी के उदात्त चरित्र के अनेक महनीय पक्षों को उजागर किया गया है। ऐसे गीतों में 'उमादे', 'जसमल', 'सजना' और 'जैतल' आदि के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। 'उमादे' अपर नाम रूठी रानी स्त्री के स्वाभिमान की गौरवगाथा है तो 'जसमल' उसके शील सौंदर्य का व्याख्यान है। 'सजना' उसके अप्रतिम शौर्य, प्रबल आत्मविश्वास और पुरुषों को भी पराजित कर देने वाले प्रबल पौरुष का यशस्वी बखान है, तो 'जैतल' में उसकी विदग्धता और दृढ़ता के दर्शन होते हैं।

लोकगीत असंख्य नारियों के हृदय की झंकार है। कामना की शब्द मूर्ति है, आकांक्षा का रेखाचित्र है। इन गीतों के द्वारा गृह देवियाँ मुस्कराई हैं, काल्पनिक आनन्द से आँख-मिचौनी खेली है। नारी ने कितना गाया है। सीमान्त के गीतों द्वारा गर्भस्थ शिशु को गीत-रस पिलाया, जन्म पर 'हालरे'[6] गाए, माँ के मुँह से निकली लोरियों की गोद में नवजात शिशु सोया और जागा। बालक ने जनेऊ पहना, गीत गाए गए। सगाई हुई, गीत गाए गए। विवाह हुआ, हर्ष में पागल बन्ना की माता 'बनड़े'[7] के गीत गाने बैठी-

बन्नो म्हारो श्याम सुन्दर अवतार, किन्ने री डोर हलावै ए।

बन्नो म्हारो रामचन्द्र अवतार, सीता संग ब्याह रचावै ए।

बन्नो म्हारो सोनो लावो ए, बनड़ी रै हार घड़ावे ए।

बन्नो म्हारो बनड़ी लावै ए, जोड़े सूं महल पधारे ए।

कितना मनोरम, कितना मर्मस्पर्शी और कितना स्वाभाविक है, यह नारी का गान। अन्तस्तल की तन्त्री के एक-एक तार को झंकृत कर देने वाले इस गान को सभ्यता के कृत्रिमतापूर्ण वातावरण में रहने वाले शास्त्रीय कलाकार की वाणी पहुँचे तो कैसे पहुँचे!

एक गीत में पति-पत्नी का संवाद है। पति अपनी नवौढ़ा पत्नी से उसके रूप सौंदर्य का रहस्य जानना चाहता है। वह क्रमशः उसके सुंदर घने बालों, पीपल के पत्र के समान कोमल और कृश उदर आदि के राज को जानने की बात करता है और पत्नी क्रमशः उन-उन उपायों का वर्णन करती है जिनसे उसके सौंदर्य में निरंतर निखार आता गया। यह गीत दंपती के बीच मधुर रस की सृष्टि करता है। ऐसे ही एक गीत में पत्नी पति से सुंदर-सा मकान बना कर देने की प्रार्थना करती है ताकि उस काच से युक्त फर्श वाले घर में वह अपने श्वसुर और अन्य परिजनों को घूमते देख कर प्रसन्नता का अनुभव कर सके। ऐसे अनेक गीतों में 'बधावा' शीर्षक गीतों का विशेष महत्त्व है। यहाँ पति-पत्नी के संवाद के रूप में गाए जाने वाले एक श्रेष्ठ बधावे के कुछ बोल उद्धृत कर रहा हूँ-

सुणो जी भंवर म्हांनै सुपनो आयो, सुपनै रो अर्थ बताओ जी राज

कहो ए गोरी थांनै किण विध आयो, सुपनै रो अर्थ बतावां जी राज

हंस सरवर ढोला गाजत देख्या, मान सरोवर जळ भर्यो जी राज

बागां मांयला चंपला म्हैं फूलत देख्या, फूल बिणै दोय कामणी जी

पोळ्यां मांयला हस्ती म्हैं घूमत देख्या, हरी-हरी दूब घोड़ा चरै जी राज

आंगणा मांयला चौक म्हैं पूरत देख्या, कुंभ-कळश ऊपर धरियो जी राज

महलां मांयलो दिवलो म्हैं सजळ देख्यो जी, दिवले री लोय सवाई जी राज

हंस सरवर गोरी पीहर थांरो, मान सरोवर थांरो सासरो जी राज

बागां मांयला चंपला बीरा ओ थांरा, फूल बिणै थांरी भावजां जी राज

पोळ्यां मांयला हस्ती जेठ थांरा, हरी-हरी दूब सवासणी जी राज

आंगण मांयलो चौक बो कुंवर थांरो, कुंभ-कळश थांरी कुळबहू जी राज

महलां मांयलो दिवलो बो सायबो थांरो, दिवलै री जोत सायबणी जी राज

थे जुग जीवो दशरथ जी रा सींव, सुपनै रो अरथ भलो दियो जी राज।

श्री वासुदेव अग्रवाल ने इस बधावे के गीत को राजस्थानी का सर्वश्रेष्ठ गीत बतलाया था। वस्तुतः इस गीत में बड़े ही काव्यात्मक ढंग से पीहर और ससुराल दोनों ही परिवारों के महत्त्व को अत्यंत उदात्त रूप में व्यंजित किया गय। कुटुम्ब–जीवन के जुदा–जुदा सम्बन्धों के अनेक स्वाभाविक चित्र इन गीतों में देखने को मिलते हैं। भाई–बहन का प्रेम, ससुराल में नव–वधू की व्यथा, सास–ननद का अत्याचार, जिठानी का रौब जमाना, देवरानी का निर्दोष–भाव इत्यादि–इत्यादि न जाने कितने सुन्दर एवं असुंदर गृह–चित्रों की रेखाएँ इन गीतों में उतारी गई हैं–

कुण जी खुदाया कुआ बावड़ी ओ पणिहारी जी ए लोय

कुण जी खुदाया समंद तळाब, बाला जोगी।

सुसरो जी खुदाया कुआ बावड़ी ओ पणिहारी जी ए लोय

सासुजी खुदाया समंद तळाब, बाला जोगी।

कुण जी सुणाया थांनै बोलणा ओ पणिहारी जी ए लोय

कुण जी दीनी झीणी गाळ, बाला जोगी।

सासुजी सुणाया म्हांनै बोलणा ओ पणिहारी जी ए लोय

नणद बाई दीनी झीणी गाळ, बाला जोगी।

नारी हृदय के भावों का नाम लोकगीत है–चक्की चलाती हुई और दही मथती हुई स्त्रियों ने प्रभातियाँ छेड़ी, माता ने लोरियाँ गाईं, बहनों के अन्तःकरण का सारा स्नेह भाइयों पर उड़ेल दिया। पत्नी ने मान–मनावन किये, विरह–वेदना गाई, कागों और कुरजों के साथ संदेसे भेजे और सूनी सेज की शिकायत की–

तूं कुरजां म्हारी भायेली ए,

तूं है धरम की बैन

कुरजां ए म्हारो भंवर मिला दे नीं ए

संदेसो म्हारो पिया ने पुगा दो नीं ए

पांखां पै लिखूं थारै ओळमां,

चांचां पै सात सलाम

कुरजां ए म्हारो भंवर मिला दे नीं ए।

हमारा समस्त गृहस्थ–जीवन नारी का गान है। उस गान में कहीं मीठे स्नेह की सुर सरिता बह रही है तो कहीं पत्नी के प्रेम निर्झर की वेगवती श्यामा कालिन्द नन्दिनी। बहन के पावन प्रेम की सुधा सिंचित सरस्वती ने तो गजब ढहा दिया। जैसा अनिर्वचनीय संबंध भाई–बहन का है वैसा ही निर्मल मधुर बहन का गान–

बीरा रमक–झमक होय आयज्यो,

सरदार भतीजा सागै लायज्यो जी,

बीरा रमक–झमक होय आयज्यो।

बीरा थे आयज्यो भावज लायज्यो,

म्हारा लाल भतीजा सागै लायज्यो जी,

बीरा रमक–झमक होय आयज्यो।

बीरा माथै में मेंमद लायज्यो,

म्हारी रखड़ी रतन जडाज्यो जी,

बीरा रमक–झमक होय आयज्यो।

नारी गीतों में दाम्पत्य–जीव गाया गया, वियोग के महीने गाए गये, सूनी सेज की वेदनाएँ गाई गईं, मान–मनावन गाया गया। नारी की इस महान सृजन–शक्ति का लोप अभी नहीं हुआ है। जब कभी उसके अन्तर में कोई प्रबल उमंग उठ खड़ी होती है तभी एक नवीन गीत की सृष्टि हो जाती है। परन्तु प्रगतिमान सभ्यता के प्रवाह में यह शक्ति कब तक बची रहेगी, यह कौन कह सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *राजस्थानी लोक संस्कृति, डॉ. किरणचन्द नाहटा, पृष्ठ 29*
2. *हिन्दी साहित्य कोश, प्रधान संपादक–डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 682*
3. *भारतीय लोक साहित्य, डॉ. श्याम परमार, पृष्ठ 22*
4. *इट्स सीड इन सिंगिंग : मीट माई प्यूपल, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ 194*
5. *लोककला, राजस्थानी लोकगीतों में कृष्ण–लीला, डॉ. मनोहर शर्मा, भाग–3, अंक–1, पृष्ठ 44–45*
6. *लोककला, राजस्थानी लोकगीतों में कृष्ण–लीला, डॉ. मनोहर शर्मा, भाग–3, अंक–1, पृष्ठ 44–45*
7. *बनड़े के गीत विवाह पर गाए जाते हैं।*

लिंग चयन–अदृश्य अपराध

डॉ. संदीप पुरोहित
सहायक आचार्य, महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर

स्वाति
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इसी भारतीय समाज में वैदिक युग था जब नारी को पूज्यनीय समझा जाता था उसे पुरूषों के समान सम्पूर्ण सम्मान दिया जाता था। कई अवसरों जैसे धार्मिक अनुष्ठानों में तो नारी को पुरूष से अधिक सम्मान दिया जाता था लेकिन समय परिवर्तन के साथ नारी की स्थिति में निरन्तर गिरावट आई व वह अवांछनीय हो गई। बोझ समझी जाने के कारण नवजात कन्याओं की हत्याऐं होने लगी व भारत में लोकतान्त्रिक व्यवस्था होने व कन्या भ्रूण हत्या पर कानून बनने के बावजूद यह कुरीति हमारे समाज से आज भी विलुप्त नहीं हुई है।

संकेताक्षर : *सृष्टि रचियता, लिंगानुपात, जन्मदात्री, ममता एवं वात्सल्य, सौहार्द, प्रकाशमान, लोकतांत्रिक व्यवस्था, सजा प्रावधानी कानून, एमिनो सिंथेसिस, विकृति, अजन्मी कन्या, पितृसत्तात्मक, पिण्डदान।*

परिवर्तन समय की मांग एवं एक निश्चित आवश्यकता है। बस यही वांछनीय है कि वह परिवर्तन सकारात्मक हो। हमारे भारतीय समाज में समय–समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। इन्हीं परिवर्तनों के साथ हमारे समाज में महिलाओं की स्थितियों में भी समय–समय पर परिवर्तन दृष्टिगत हुए है।

भारतीय समाज में एक समय था जब महारानी राजा के समकक्ष दरबार में विराजमान हुआ करती थी, उन्हें सम्पूर्ण सम्मान व आदर सत्कार दिया जाता था, कोई भी धार्मिक अनुष्ठान नारी की अनुपस्थिति में अपूर्ण माना जाता था, लेकिन समय के चलते मुगलों के आगमन एवं परिवर्तित परिस्थितियों के कारण नारी की सामाजिक स्थिति में गिरावट आई, उसे पर्दे में रखा जाकर गृहकार्य, भोगवस्तु एवं वंशवृद्धि के लिए संतोउत्पत्ति की मशीन मात्र माना जाने लगा।

नारी की गिरती हुई सामाजिक स्थिति ने उसके मूल्यों को शून्य पर ला दिया। कन्या पिता के लिए एक अभिशाप व बोझ समझी जाने लगी। उसकी उत्पत्ति अवांछनीय हो गई और कन्या हत्या का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। जो आज भी भारतीय समाज में जारी है। पुराने व नए समय में फर्क सिर्फ इतना है तत्कालीन समय में उपलब्ध संसाधनों से कन्या के जन्म पश्चात् हत्या की जाती थी व वर्तमान समय में उपलब्ध आधुनिक मशीनों के द्वारा भ्रूण परीक्षण कर अजन्मी, अबोली, मासूम कन्याओं की गर्भ में ही हत्याऐं होने लगी हैं।

वैदिक युग में कहा जाता था कि ''जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का वास होता है। हमारे समाज में उस युग में महिलाओं की स्थिति बहुत सराहनीय थी। उस समय तब तक ऐसा कोई धार्मिक व पारिवारिक कार्य सम्पूर्ण नहीं माना जाता था, जब तक की उसमें महिला की सम्पूर्ण सहभागिता ससम्मान न हो। लेकिन समय परिवर्तन के साथ हमारे इसी समाज में महिलाओं के अधिकारों में निरन्तर हनन से इतना अधिक परिवर्तन आया है कि वर्तमान समय में उनकी स्थिति एक सोचनीय विषय है।[1]

हमारे भारतीय समाज में सृष्टि रचियता, जन्मदात्री, ममता एवं त्याग की प्रतिक नारी की स्थिति में इतना ह्रास क्यों हुआ है ? हमारे जीवन को चलाने वाली गाड़ी में पुरुष– महिला रूपी दो पहियों में से एक पहिए को इतना कमजोर

क्यों किया जा रहा है ? हमारे भारतीय समाज में आज महिला को बोझ समझा जाने लगा है। हमारे समाज में लिंगानुपात असन्तुलित हो चला है। जहां बालक के जन्म पर खुशियाँ व उत्सव मनाये जाते है वहीं बालिका जन्म पर घर में शोक जैसा माहौल उत्पन्न होने लगा है। वैदिक युग पश्चात् तत्कालीन समय में जहाँ तत्कालीन उपलब्ध साधनों द्वारा जन्म पश्चात् दायी द्वारा कन्याओं की हत्याऐं करवायी जाती थी, वहीं वर्तमान समय में सजा के प्रावधान युक्त कानूनों के पश्चात् भी उपलब्ध नवीन साधनों द्वारा भ्रूण परीक्षण कर अजन्मी कन्याओं की गर्भ में हत्याऐं की जाने लगी है।

हमारे समाज में व्याप्त दहेज प्रथा व वर मूल्य ने कन्या मूल्य शून्य पर ला दिया है। आज कन्या जन्म के साथ ही उसके विवाह पर होने वाले खर्चों के संदर्भ में सोचा जाने लगा है। कन्या पिता यह महसूस करने लगा है कि अब उसे सम्पूर्ण उम्र कन्या विवाह के लिए रूपया जुटाना होगा। यदि रूपया अर्जित न कर पाये तो कर्ज लेना होगा। कन्या के माता–पिता कन्या जन्म से ही इस जुगाड़ मात्र में लग जाते है। उन्हें इस बात की परवाह नहीं होती कि कन्या का पोषण कैसा हो रहा है ? उसका लालन–पालन कैसा हो रहा है ? उसे उच्च स्तरीय शिक्षा देकर आत्मनिर्भर नहीं बनाया जाता। मात्र पराई अमानत समझकर जल्द से जल्द उसे अगले घर को सौंपने की तैयारी की जाती है।

हमारी सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी है वह कन्या जन्म के साथ ही माता–पिता को एक दबाव में ला देती है। कन्या जन्म के साथ ही परिवार, रिश्तेदारी व अन्य लोग कन्या के माता–पिता से अफसोस व्यक्त करने पहुंच जाते है। वे ऐसा व्यवहार करते है मानो कोई बड़ी दुर्घटना हो गई है। वे ऐसा आवरण उत्पन्न कर देते है मानो कन्या माता–पिता किसी मुसीबत से घिर गए हो।

यदि हम नारी जीवन पर नजर डाले अथवा उसकी समीक्षा करें तो पाएगें कि नारी ही सृष्टि की रचियता है। इस धरा पर निवास करने वाली सम्पूर्ण मानव जाति की जन्मदात्री ही नारी है त्याग व बलिदान का प्रतीक ही नारी है, ममता व वात्सल्य की उत्पत्ति ही नारी से हुई है। समर्पण व सौहार्द की मूरत ही नारी है। नारी ने ही कितनी देवियों का रूप धारण कर समय–समय पर इस सृष्टि को विनाश से बचाया है।

कन्या का स्वरूप और लक्ष्य ही प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। कौनसा दूसरा प्राणी है, इस धरती पर जो माँ–बाप के साथ रहकर स्वयं को इस तरह तैयार करता हो, किसी दूसरे के घर को प्रकाशमान करने के लिए। न वह माँ–बाप के लिए जीती है, न ही स्वयं के लिए। कन्या रूप में सारी दैविक शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करती है। इन्हीं की सहायता से निर्माण–पोषण और निवृत्ति के लक्ष्य को पूरा करती है। जिस जीव को शरीर में धारण करती है, वह स्वेच्छा से शरीर में प्रवेश करता है, पूछकर, स्वीकृति लेकर नहीं आता अतिथि बनकर आता है। देवता की तरह रहता, पूजित होता है। परिष्कृत और प्रशिक्षित किया जाता है। माया का मां रूप इससे बड़ा क्या होगा कि इस अनजान जीव का पोषण करके, शरीर में लपेटकर विश्व को भेंट करती है।[2]

विश्व की सबसे बड़ी एवं मजबूती कहीं जाने वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था हमारे देश भारत की है। भारतीय लोकतन्त्र स्थापना के साथ समय अनुसार निरन्तर मजबूती की ओर बढ़ा। भारत एक ऐसा देश है जहां एक सशक्त लोकन्त्र देखने को मिलता है क्योंकि यदि हम बात महाशक्ति अमेरिका की करें तो लोकतंत्र वहां भी है पर जनवरी 2021 को सत्ता परिवर्तन पर हुई घटना ने वहां के लोकतंत्र पर एक सवालिया निशान लगा दिया।[3]

इतनी बड़ी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में, इतने मजबूत कानूनी प्रबन्धन में भी आज हमारे समाज में भ्रूण परीक्षण कर कन्या भ्रूण हत्या, विज्ञान की उन्नति के कारण मानव सुविधा के लिए उपलब्ध मशीनरी का दुरूपयोग मात्र है। आज सजा प्रवावधानी कानूनों के बावजूद मनुष्य ऐसा अपराध करने का दुस्साहस कर रहा है।

लिंग परीक्षण की शुरूआत

गर्भस्थ शिशु के क्रोमोसोमो के संबंध में जानकारी हासिल करने के लिए भारत में लगभग दो दशक पूर्व ''ऐमिनो सिंथेसिस'' नामक पद्धति का शुरूआत हुई थी। जिसका उद्देश्य गर्भस्य शिशु की ऐसी विकृति का पता लगाना था जिससे शिशु की मानसिक अथवा

शारीरिक स्थिति बिगड़ी हुई हो तो उसका उपचार किया जा सके।

लेकिन गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य की चिंता छोड़ माता-पिता ऐसे केन्द्रों पर यह पता करने पहुंच जाते है कि गर्भ में पल रहा शिशु बालक या बालिका। यदि गर्भ में बालक है तो ठीक यदि बालिका है तो उस अजन्मी बालिका की पीड़ा व चित्कार को अनसुना कर उसकी गर्भ में ही निर्मम हत्या कर दी जाती है।

स्वयं एक माँ अपनी अजन्मी कन्या की हत्या करने की इजाजत कैसे देती है ? क्या उस कन्या को इस संसार में प्रवेश करने एवं अपना जीवन जीने का कोई अधिकार नहीं ? मां की ऐसी निर्दयिता देख ऐसा प्रतीत होता है कि कोई कन्या भ्रूण गर्भ में प्रवेश से पहले अपनी मां से यह जरूर कहेगा.....

माँ चाहे मुझे प्यार न देना.....
चाहे दुलार न देना।
कर सको तो इतना करना.....
की जन्म से पहले मुझे मार न देना।।

लिंग चयन व कन्या हत्या के परम्परागत तरीके

वर्तमान समय में विज्ञान की प्रगति ने जहाँ नए उपकरणों को मानव कल्याण के सदुपयोग हेतु उपलब्ध करवाया है, लेकिन मानव द्वारा कई क्षेत्रों के अतिरिक्त इन उपकरणों का भ्रूण परीक्षण के लिए दुरुपयोग किया जा रहा है, वहीं मानव के खुरापाती, मस्तिष्क ने पुराने समय में भी क्षेत्रीय स्तर पर कन्या हत्या के तरीके अपना रखे थे।

राजस्थान का एक गांव ''देवड़ा'' इसलिए पहचाना जाता है कि वहां पिछले 120 वर्षों से सिर्फ दो बारातें ही आई है और इसका कारण यह है कि वहां कन्या को जन्म लेते ही मार दिया जाता था जो दाई बच्चे का जन्म करवाने आती उसे पहले से कहा जाता था कि यदि कन्या हो तो तुरन्त मार देना और वह उस मासूम कन्या का गला दबाकर या उसके मुँह में आक का दूध डालकर उस नवजात कन्या को मार देती थी। कई बार कुछ जहरीले पौधों को अरंडी के तेल में मिलकार बच्चियों को पिला दिया जाता, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती थी।[4]

लिंग चयन से जुड़े आँकड़े

2011 में भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ हो गई। जिसमें 58.64 लाख महिलायें तथा 62.30 लाख पुरुष है। इसी प्रकार भारत में 0-6 वर्ष तक के बालक- बालिकाओं का प्रतिशत भी बिगड़ा है। 2001 में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं का अनुपात 933 या वहीं 2011 में यह बढ़कर 940 हो गया।[5]

क्र.सं.	राज्य	शिशु लिंगानुपात (0-6 वर्ष)	
		2001	2011
1.	जम्मू कश्मीर	941	862
2.	हिमाचल प्रदेश	896	909
3.	पंजाब	798	846
4.	चण्डीगढ़	845	880
5.	उत्तराखण्ड	908	890
6.	हरियाणा	819	834
7.	दिल्ली	868	871
8.	राजस्थान	909	888
9.	गुजरात	883	809
10.	महाराष्ट्र	913	894

वहीं हम यदि राजस्थान राज्य के आंकड़ों पर नजर डाले तो यहां वर्ष 2001 की जनगणनानुसार 0 से 6 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों में 100 लड़कों पर 909 कन्याएँ थी जो 2011 में घटकर 883 रह गई।[6]

क्र.सं.	जिला	2001 (हजार में)	2011 (हजार में)	गिरावट
1.	दौसा	906	859	−47
2.	टोंक	927	882	−45
3.	राजसमंद	936	891	−45
4.	सीकर	885	841	−44
5.	जयपुर	899	859	−40
6.	डूंगरपुर	955	916	−39
7.	बांसवाड़ा	962	925	−37
8.	सवाई माधोपुर	902	865	−37
9.	भीलवाड़ा	949	916	−33
10.	झुंझुनू	863	831	−32
11.	जोधपुर	920	890	−30
12.	जालोर	921	891	−30
13.	पाली	925	895	−30
14.	अजमेर	922	893	−29
15.	सिरोही	918	890	−28
	राजस्थान	909	883	−26

लिंग चयन–एक सामाजिक बुराई

हमारे समाज में पितृसत्तात्मक सोच होने के कारण पुत्र प्राप्ति की मंशा भ्रूण परीक्षण के प्रमुख कारणों में से एक है। पुत्री को पराया मानते हुए पुत्र को बुढ़ापे का सहारा मानने की पारम्परिक सोच आधुनिक समाज में भी व्याप्त है। हमारी धार्मिक मान्यताओं में पुत्र को माता–पिता के पिण्डदान का अधिकार देते हुए माना गया है कि यदि माता–पिता के अन्तिम संस्कार में मुखाग्नी पुत्र दे तो ही उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है।

लिंग चयन एक सामाजिक व मानवीय बुराई है। गर्भ में ही लिंग की जांच समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव और सामाजिक विदूपताओं का सीधा संकेत है, जो आज भी अविराम और नए–नए रूपों में जारी है।[7 8]

पुरूष प्रधान समाज, पितृसत्तात्मक परिवार, पुत्र मोह, धार्मिक मान्यताएँ, अशिक्षा, निर्धनता एवं दहेज प्रथा आदि इस सामाजिक बुराई के मुख्य पहलू है। यह बुराई मात्र ग्रामीण क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि शिक्षितों के मध्य शहरी क्षेत्रों में भी व्याप्त है।

ऋषि–मुनियों ने भारत को मोक्ष भूमि कहा था। यहाँ दुनियाभर से लोग मोक्ष की खोज में आते रहे है। यहां शक्ति भोग के लिए नहीं, बल्कि परमार्थ और मोक्ष के लिए रही है। ईश्वर से धन–बल के रूप में शक्ति मांगी जाती है, किन्तु अब हमें क्या हो गया है? शक्ति की एक प्रतीक कन्या को हम गर्भ में ही मारने लगे है

सुझाव एवं निष्कर्ष

अक्सर यह माना जाता है कि भ्रूण परीक्षण एवं कन्या हत्या का मूल कारण निरक्षरता व निर्धनता है परन्तु वास्तविकता यह नहीं इसके मूल कारणों में से प्रमुख कारण पुत्र मोह है। भ्रूण परीक्षण करवाने वाले अधिकांश लोग समृद्ध एवं शिक्षित वर्ग के लोग है।

लेकिन सोचनीय यह है कि यह असामाजिक कार्य अब ग्रामीण क्षेत्र में भी अपने पांव पसार चुका है।

जिसकी बड़ी संख्या में भ्रूण परीक्षण एवं कन्या भ्रूण हत्या के आंकड़े हमारे समक्ष आ रहे है और इन आंकड़ों की वृद्धि में जो निरन्तरता बनी हुई है इससे यह साफ प्रतीत होता है कि ऐसे असामाजिक कार्यों को अन्जाम देने वालों का हृदय भयमुक्त हो चुका है। हमारी कानूनी व्यवस्था में सजा युक्त प्रावधान होने के पश्चात् भी इन कार्यों को अंजाम दिया जा रहा है।

वर्तमान समय में यह अतिआवश्यक है कि ऐसे अमानवीय एवं असामाजिक कृत्यों को अन्जाम देने वालों के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही के साथ इनका सामाजिक बहिष्कार भी होना चाहिए। कन्या भ्रूण हत्या में लिप्त माता–पिता, मध्यस्थता करने वाले व्यक्तियों, जांच एवं कन्या भ्रूण हत्या करने वाले तकनिशियन एवं जांच केन्द्र के मालिक आदि पर सीधे तौर पर हत्या का मुकदमा दर्ज कर सजा दी जानी होगी। तकनीशियन की डिग्री रद्द कर उसे बर्खास्त करना होगा। ऐसे परीक्षण केन्द्रों का लाईसेंस रद्द कर उन पर हमेशा के लिए ताले जड़ने होंगे तभी हम इस असामाजिक कृत्य पर नियन्त्रण पा सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. खीची राजेन्द्र सिंह, आलेख ''भारत में महिला उत्पीड़न–अध्ययन एवं सुझाव'' Research revolution, पृष्ठ सं. 108*
2. *कोठारी गुलाब, कन्या–1, राजस्थान पत्रिका, 13 फरवरी 2022. जोधपुर संस्करण*
3. *डॉ. खीची राजेन्द्र सिंह, आलेख ''भारतीय लोकतंत्र की नई दिशा और समाज'', EDU WORLD, A.P.H. PUBLISHING CORPORATION, 4435-3617, ANSARI ROAD, DARYA GANJ, NEW DELHI-110002*
4. *कु. शर्मा नीरज, प्रो. पंत राजेश्वरी, आलेख–''कन्या भ्रूण हत्या एक अभिशाप'' पृष्ठ संख्या 85 से 88*
5. *वही*
6. *राठौड़ कमल सिंह, मूलप्रश्न–''कोख से ही विदाई''। आलेख पब्लिशर्स, दुग्गड़ बिल्डिंग, एम.आई. रोड़, जयपुर।*
7. *मेरा संकल्प, सोसायटी टू अपलिफ्ट रूरल इकोनमी (श्योर), गुरूद्वारा रोड़, बाड़मेर।*
8. *कोठारी गुलाब, ''शक्ति का अपमान फिर कैसी पूजा''। राजस्थान पत्रिका, उदयपुर संस्करण, 21 अक्टूबर 2012.*

Relationship of Television Viewing with Senior Secondary Student's Achievement

Dr. Renu Rawat
Assistant Professor, Dept. of B.Ed., M.B. Govt. P.G. College, Haldwani (Uttrakhand)

shodhshree@gmail.com

Abstract

The present study investigated relationship of Television viewing with senior secondary students' achievement. The researcher took the sample of 400 hundred students (198 boys + 202 girls) at the senior secondary level (age 16+, 17+) of different Public school of Haldwani. The result reveals that the TV viewing was not significantly related with academic achievement in boys and total sample but negatively correlated in girls' sample. The low and high TV viewer boys and girls were not significantly different in achievement in any of the science, commerce and art streams. The low TV viewer science girls were better achiever than high TV viewer science girls. At low TV viewing level, science girls were better performer than science boys but not at high TV viewing level.

Keywords : *Television Viewing, Academic Achievement, Low/ High TV Viewer.*

In the field of mass communication, television is a strongest medium of communication. Doordarshan network provides direct experience to the human beings, and side by side provides more knowledge of facts. We retain this knowledge for a long time. With the help of TV, creativity and activity level of the students increase. They also acquire varied experiences.

Effectiveness of class increases by the use of Doordarshan in the classroom. A direct relationship of students with the environment has been established. It has become a matter of research that how TV is influencing our education and become more important when the school children are involved very actively in TV viewing.

A large number of researches have been conducted in the area of television effects. These investigations suggested that there may be two broad categories of theory which explain the role of television in the lives of children. Firstly the theory is that emphasizes the content presented in TV programmes, and secondly the theory is that focuses on amount of exposure to the medium irrespective of content. In these theories again there may be the sub categories-one that propose effects of television on viewers and other that stress the viewers active role in selecting and using media.

Some researchers have investigated the influence of TV viewing on student's study habit and academic performance.

Many researchers have studied the utility of media in classroom. These studies have explored the relationship of television viewing with academic achievement **(Phutela 1980; Hornik, 1981; Anderson & Collins, 1988; Bahera 1991; Mac Beth, 1996).** These studies suggest that TV viewing has different role at different age group and nature of course.

Rawat, R (1993) studied the impact of TV viewing on achievement and modernization. She found that TV viewing was not related with the academic achievement. It was related with the modernization.

Valkenburg & Vander Voort (1994) investigated that visual attractiveness of television produces

inattention to spoken language, slowing language acquisition and ultimately reducing interest in reading achievement.

Shin, Nary (2004) found that the children who watched more television tended to spend less time in doing homework, studying and reading for leisure. In addition, their behaviours become more impulsive, which resulted in an eventual decrease in their academic achievement.

Motsch, Hans Joachin (2003) studied that there can be any empirical data on the effects of early media consumption on the acquisition of communication and language ability of small children. They tried to extract valid assumptions for possible effects of early media consumption. The comparison of specific characteristics on the background of the present knowledge on language acquisition gives evidence of fact that children's TV as well as computer games did not provide the necessary partnership behaviour for stimulating the language acquisition of pre-school children.

J.O. Omojuwa, A. Timothy and Obiekezie (2009) investigated the influence of television viewing frequency on the performance in vocabulary development of **SS3** students in Cross River State, Nigeria. The study indicated that high frequency television viewers performed significantly better than moderate viewers, while moderate viewers performed significantly better than did the low frequency viewers in vocabulary development.

Ghulam Mustafa Khan (2012) studied the impact of television viewing on the academic achievements of 5th class students. The research revealed that the impact of television has been instant and profound. The study explored the major influence of television and relationship between children relative amount, nature, and extent of television viewing and their academic achievement in the schools in Karachi, Pakistan.

Syed Noor-Ul-Amin (2013) studied the impact of television watching on academic achievement of adolescents with special reference to their socioeconomic status. He found that the heavy and low television viewer adolescents differ significantly in their academic achievement. Low TV viewer adolescents exhibit a higher scholastic achievement than the heavy TV viewer group of adolescents. On the other hand, heavy and low television viewer adolescents, on the basis of gender, do not differ significantly with respect to academic achievement.

Bimala Sharma, Rosemary Cosme Chavez, Ae Suk Jeong and Eun Woo Nam (2017) studied the impact of Television Viewing and Its Association with Sedentary Behaviors, Self-Rated Health and Academic Performance among Secondary School Students in Peru. It revealed that Television viewing was negatively correlated with SAP (Self-reported Academic Performance). Adolescents who watched television in excess of 2 hours were more likely to report poor academic performance than those who watched television less than or equal to 2 hours a day.

So, with such scenario it was considered desirable to study the relationship of television viewing with the student's achievement. Senior secondary level was considered because the adolescents are in the period of stresses & strains and even have shortage of time due to heavy courses.

Objectives

The main objective of the study were the following:

1. To study the relationship of TV viewing with the academic achievement of senior secondary students of Art, Science and Commerce streams.
2. The study the relationship of TV viewing with the academic achievement of boys and girls at senior secondary level.

Hypotheses

The following hypotheses were formulated:

1. The television viewing does not significantly affect the academic achievement of senior secondary students of Art, Science and Commerce streams.
2. The television viewing does not

significantly affect the academic achievement of boys and girls at senior secondary level.

Sample

In the present investigation a group of 400 students (198 boys & 202 girls of 11^{th} –12^{th} class students were selected by cluster sampling technique. The sample was taken up from schools of Haldwani, distt. Nainital. There were 90 boys & 90 girls from science stream; 30 boys & 35 girls from Art stream and 78 boys & 77 girls from commerce stream.

Tools used for The Study

The investigator used a TV viewing questionnaire and Diary by A. Bhartiya and R. Rautela. The purpose of this questionnaire was to find out the effects of TV viewing on students, their favourite programmes, problems and reasons of TV viewing. The statements for all these queries were arranged in this questionnaire. The student were asked to put (3) mark on their choice. Students' responses may be interpreted on the basis of percentage. A TV choice viewing Diary was added in this questionnaire. This diary has been made for the students to note their TV watching time and programmes of a week. Generally all the channels have same schedule for the week. In diary, time has been divided for each hour from 6 A.M. for the whole week. The student has to fill up all the programmes with their date, day and time seen by him/her in a week. The time of watching TV of a complete week can be find out easily by this diary. Therefore this tool was used in the present study to compute weekly television viewing time.

To know the relationship of TV viewing on academic achievement it was necessary to take the marks for achievement. The investigator took up the percentage of marks of the students at the end of academic session from school register with the help of teachers & authorities of the institutions.

Statistical Techniques

The TV viewing time was calculated with the help TV viewing questionnaire and diary. The product moment correlations of TV viewing time with achievement were computed for boys and girls separately. The result could not establish a cause and effect relationship. Therefore, the interaction analysis was attempted by applying the analysis of variance technique. The high and low group of TV viewers were identified. The students were identified for each group from Art, Science and commerce streams and also from boys and girls both. Their academic achievement scores were taken up from analysis. Thus 2 3 2 factorial designs was used and analysis of variance technique was applied to analyze the effect of TV viewing, subject streams and sex on academic achievement.

Collection of Data

TV viewing questionnaire and diary was given to the subjects. The response sheets of this test were scored out. The total TV viewing times was calculated for the week. The groups of high and low TV viewers were to be identified for this purpose. John Kelly's dichotomy was used to obtain sufficiently large and distinct groups of high and low TV viewers. The mean of TV viewing time scores was obtained as 949.96 and standard deviation (S.D.) as 252.77. The 27% top and 27% bottom of this distribution was considered as high TV viewers and low TV viewers respectively. The 27^{th} percentile of this distribution was found to be 810 and 73^{rd} percentile obtained as 1080. The subjects who scored 1080 and above were considered as high TV viewers and subjects who scored 810 and below were considered as low TV viewers. Thus 118 high TV viewers (47 boys & 71 girls) and 110 low TV viewers (82 boys & 28 girls) were obtained. First of all television viewing and subject streams of science, commerce and arts were taken up together. Then from the cells of high TV viewers of Science, Commerce and Arts the boys and girls were located in these. Similarly from the low TV viewers of science, commerce and arts, the boys & girls were located in each cell. The available number of subjects in each cell has been show in table – 1.

Table – 1
FREQUENCIES IN 2 3 2 CELLS FOR TV VIEWING (T) STREAM (ST) SEX (S)

Variables	High TV viewers			Low TV viewers			Total
	Science	Commerce	Art	Science	Commerce	Art	
Boys	10	31	6	48	23	11	129
Girls	36	27	8	9	9	10	99
Total	**46**	**58**	**14**	**57**	**32**	**21**	**228**

The achievement scores of these subjects were collected and analyzed. The data for achievement for boys, girls and total sample were collected. The product moment correlations were calculated. The correlation of achievement with television viewing time of boys, girls and total sample has been shown in table – 2.

Table – 2
COEFFICIENTS OF CORRELATION OF TELEVISION VIEWING TIME WITH ACHIEVEMENT

Variables	Boys (df = 196)	Girls (df = 200)	Total Sample (df = 390)
Achievement	.042	–.148*	–.034

*Significant at .05 level

The degree of freedom for girls sample was 200. It may also be noted from table-2 that the coefficient of correlation of achievement with television viewing time for girls group appeared to be –.148. This coefficient was negative and significant at .05 level. It may be interpreted that achievement was negatively related with television viewing time of the girl. The coefficient of correlation of TV viewing with achievement for the total sample and boys were not significant at any level. Further, the interaction effects of television viewing and achievement was studied.

The subjects were identified for each cell. The achievement scores of these subjects were taken up further analysis. The data have been summarized in table – 3.

Table – 3
DATA FOR ANALYSIS OF TV VIEWING (T) STREAM (ST) SEX (S) WITH ACHIEVEMENT SCORES

Variables		**High TV viewers (T_1)**			**Low TV viewers (T_2)**			**Total**
		Science	**Commerce**	**Arts**	**Science**	**Commerce**	**Arts**	
Boys	n =	10	31	6	48	23	11	129
	m=	47.9	54.84	46.33	49.46	55.3	49.91	51.57
	SD=	13.9	12.57	6.12	10.2	13.14	19.83	12.64
Girls	n=	36	27	8	9	9	10	99
	m=	48.8	49.93	15.25	55.679	50.0	57.4	51.32
	SD=	9.92	14.3	13.15	5.97	17.14	13.71	12.52
Total	**n**	**46**	**58**	**14**	**57**	**32**	**21**	**228**

Table – 3 shows all the necessary values for the computation of F-ratios. The analysis of variance has been presented in table – 3.

Table – 4
ANALYSIS OF VARIANCE OF TV VIEWING (T) STREAM (ST) SEX (S) GROUP FOR ACHIEVEMENT SCORES

Source of variance	df	SS	MS	F Value
T	1	229.144	229.144	1.478
ST	2	116.507	58.254	0.376
S	1	250.405	250.405	1.6
T ST	2	170.264	85.132	.549
S ST	2	1314.204	657.102	4.238*
T S	1	14.016	14.016	.090
T ST S	2	14.388	71.694	.462
ERROR	216	33487.763	155.036	
Total	**228**	**640736.000**		

* = Significant at .05 level

Table – 4 indicated that the value of F-ratio for S X ST was found to be 4.238 with 2 and 216 degree of freedom. This value was significant at .05 level of significance. The other F-values indicated in table – 4 were not significant at any level. It may be interpreted that the main effects were not significant, but the interaction effect of sex and stream was significant on achievement.

The t – test was applied to locate the actual difference in the groups. The value of 't' of the difference between various groups was calculated and obtained statistics have been summarized in table – 5.

Table – 5
SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN MEANS OF T ST S GROUPS

S. N.	Groups	Means	Difference	SED	df	t
1	Low TV viewer boys ~ High TV viewers boys	51.16 ~ 52.28	1.12	2.32	127	.48
2	Low TV viewer girls ~ High TV viewers girls	54.86 ~ 50.08	4.77	2.76	97	1.73
3	Low TV viewer Science boys ~ High TV viewer science boys	44.46 ~ 47.9	1.56	3.785	56	.412
4	Low TV viewer commerce boys ~ High TV viewer commerce boys	55.3 ~ 54.84	0.47	3.519	52	.132
5	Low TV viewer Arts boys ~ High TV viewers Arts boys	49.91 ~ 46.33	3.58	8.413	15	.425

6	Low TV viewer Science girls ~ High TV viewer Science girls	56.89 ~ 48.83	8.06	3.422	43	**2.35***
7	Low TV viewer commerce girls ~ High TV viewer Commerce girls	50.00 ~ 49.93	0.07	5.791	34	0.13
8	Low TV viewer Arts girls ~ High TV viewer Arts Girls	57.45 ~ 6.25	1.15	6.39	16	0.18
9	Low TV viewer Science boys ~ Low TV viewer Science girls	49.46 ~ 56.89	7.43	3.489	55	**2.13***
10	Low TV viewer Commerce boys ~ Low TV Commerce girls	55.3 ~ 50.0	5.30	5.63	30	0.94
11	Low TV viewer Arts boys ~ Low TV viewer Arts girls	44.91 ~ 57.4	7.44	7.51	19	0.99
12	High TV viewer Science boys ~ High TV viewer Science girls	47.9 ~ 48.83	0.93	3.882	44	0.24
13	High TV viewer Commerce boys ~ High TV viewer Commerce girls	54.84 ~ 49.93	4.91	3.525	56	1.39
14	High TV viewer Arts boys ~ High TV viewer Arts girls	46.33 ~ 56.75	9.92	5.83	12	1.70

*** = Significant at .05 level**

Table – 5 indicates that t – value for different combinations of groups. It may be noted from table – 5 that the t – value for the combination 6 were obtained as 2.35 at 43 degrees of freedom and for the combination 9, the t – value obtained as 2.13 at 55 degrees of freedom respectively. These values were significant at .05 level. The mean score of these groups have been provided in table – 5. It may be interpreted that the low TV viewer science girls were better in achievement than the higher TV viewer science girls. Low TV viewer science girls were also significantly better than the low TV viewer science boys. The other t – values for other combination were not found to be significant at any level.

Findings

The following findings were summarized:

- The TV viewing was not significantly related with academic achievement, in boys and total sample but negatively correlated in girls' sample.
- The low and high TV viewer boys were not significantly different in achievement in any of the science, commerce and art streams.
- The low and high TV viewer girls were not significantly different in achievement in commerce and art streams, but different in science stream. Low TV viewer science girls were better achiever than high TV viewer girls. At low TV viewing level, science girls were better performer than science boys but not at high TV viewing level.

Discussion of The Findings

The present study investigated the relationship of television viewing with achievement at senior secondary level.

The relationship of television viewing with achievement has been unique and depending upon age group. Television did not predict reading or mathematics achievements from age 6 to 11 years **(Gortmaker et. al., 1990)** and was also unrelated to reading vocabulary and math achievement from grades 10 to 12 **(Gaddy, 1986).** There is little evidence for direct or indirect influence of television viewing on achievement and where effects are found they are in direction of television's reducing achievement. The viewers of curriculum based informative TV programmes show improvement

in achievement. In present study sample was from senior secondary level. So, television didn't affect their achievement in science, commerce and art stream. Low television viewer science girls showed higher performance. Low television viewing might have given them more time for studies. The findings seen to emerge accordingly.

References

1. ***Anderson, D.R. & Collins P.A. (1988):*** *The impact on children's education: Television's influence on cognitive development (working paper No. 2) Washington, D.C.: Office of Educational Research and Improvement.*
2. ***Bahera, S.C. (1991):*** *M & T for Human Resource Development 4 (I) P. 65 – 75.*
3. ***Gaddy, Gary, D. (1986):*** *"Television's Impact on High School Achievement" Public opinion quarterly Fall 1986, P. 340 – 359.*
4. ***Gortmaker, Steneul et. al. (1990):*** *The impact of Television viewing on mental aptitude and achievement. A longitudinal study public opinion quarterly, Vol. 54 – 4 PP. 594 – 604.*
5. ***Hornik, R. (1981):*** *Out of school television and schooling Hypotheses and methods, Reviews of Educational Research, 51, 193 – 294.*
6. ***Mac Beth, T.M. (1996):*** *Indirect effect of television: Creativity, Persistence, school achievement and participation in other activities. In T.M. Mac Beth (Ed.), Tuning into young viewers; Social Science perspectives on television Thousand Oaks, C.A.: Sage.*
7. ***Motsch, Hans Joachim (2003): "****PC - games and TV – Baby sitters for children with language acquisition Kinder?" Viertel Jahressschriftfur Helipad agogik Und – ihre – Nachbaregebiete. Jun. Vol. 72 (2): P. 115 – 129.*
8. ***Omojuwa J.O., A. Timothy and E. Obiekezie (2009): "****Global Journal of Educational Research" Vol. 8, No. 1 & 2, 2009: 55 – 59.*
9. ***Phutela, R. L. (1980): "****A study into utilization and comprehension ability of school deletion programmes in Delhi". C.I.E.T., N.C.E.R.T.; New Delhi, 1980.*
10. ***Rawat, R. (1993): "****Impact of TV viewing habits on Achievement and Modernization". M.Ed. dissertation submitted in Kumaon University.*
11. ***Shin, Nary (2004):*** *"Exploring Pathways from Television viewing to Achievement in School Age Children". Journal of Genetic Psychology. Dec. Vol. 165 (4); P. 367-381.*
12. ***Valkenburg & P.M. & Vander Voort T.H.A. (1994):*** *"Influence of TV on day-dreaming and creative imagination: A review of research, Psychological Bulletin, 116, P. 316-339.*
13. ***Ghulam Mustafa Khan (2012):*** *"The Impact of Television Viewing on the Academic Achievements of Students between Upper and Lower Socio-Economic Level in Karachi," Indus Journal of Management & Social Science (IJMSS), Department of Business Administration, vol. 6(1), pages 38-63, January.*
14. ***Syed Noor-Ul-Amin (2013):*** *"Impact of television watching on academic achievement of adolescents with special reference to their socioeconomic status". Standard Journal of Education and Essay Vol 1(1) pp. 14– 20, January 2013.*
15. ***Bimala Sharma, Rosemary Cosme Chavez, Ae Suk Jeong and Eun Woo Nam (2017):*** *Television Viewing and Its Association with Sedentary Behaviors, Self-Rated Health and Academic Performance among Secondary School Students in Peru Int. J. Environ. Res. Public Health 2017.*

A Study of Adjustment of Secondary School Teachers in Relation to their Emotional Intelligence

shodhshree@gmail.com

Dr. Umender Malik
Associate Professor, Maharshi Dayanand University, Rohtak (Haryana)

Abstract

The present study was undertaken to study Adjustment with Emotional Intelligence of secondary school teachers .150 secondary school teachers were selected by multistage random sampling technique from secondary schools of South Haryana. Descriptive survey method of research was used. It was found that there is significant difference between Adjustment of Male and Female secondary school teachers. Female teachers are more adjusted than male secondary school teachers. It was found that Male secondary school teachers are more Emotionally intelligent than Female secondary school teachers. Adjustment and Emotional Intelligence of secondary school teachers is positively correlated which shows that more the adjustable nature of secondary school teachers more will be there Emotional inteeligence and vice-versa.

Keywords :

Education is a mobile process of human life. It works all time in our brain and mind also, which influence us to do something new or developmental works. It learns to people how to change or modify their behaviour. Teachers play a vital role in modifying students' behaviour. The success of every student, is mainly depends on the ability of the teacher, they represent many kind of knowledge in fronts of the students. Dr. Radhakrishnan (1949) deeply observed that, "The teacher's place in the society is of vital importance. He acts as the pivot for the transmission of intellectual traditions and technical skills from generation to generation and helps to keep the lamp of civilization burning." The NPE, 1986 and its Revised Version 1992, remarked about teachers that 'No system of Education can rise above the level of its teachers.'

Teachers are fundamental in the educational process and in making an individual a better individual. Teachers are the backbone of our education system, thus play an essential role in society by helping students gain knowledge and ethical values. It is the teacher who molds the most precious material of the land, i.e., students in their most precious period of their development. The quality of teaching always depends upon the mediating and moderating roles of teachers. He or she is there to mediate or moderate the process of teaching in any educational set up, from school to university level. In teaching process both the roles of males and females are important in running the school system smoothly. Female teachers take more work stress and get emotionally disturbed than male teachers because they have a different sort of interaction with students and such kind of interaction and attachment with the kids and students make them more sensitive towards their work. Female teachers have to look after their home also and they have to train their own kids also. In this changing Era today teacher's faces new challenges calling for greater effort from teachers. The teacher should be an integrated individual, skilled in the art and science of human relations and conscious of the wide variety of behavior patterns in teacher

effectiveness to a large extent as her maladjustment with the profession not only has adverse effect on her personality but also produces the world to which he may has to adjust. The adjustment of teacher to his workplace determines maladjustment among children whom she teaches. As reported by Sharma (2008)who studied to explore the personality and adjustment correlates of organizational commitment among college teachers of Haryana found that socially bold, trusting, adaptable, practical, controlled, high in self-concept have home, health, emotional and occupational adjustment and they tends to be more committed to their working institution.

Abiodullah, Dur-e-Sameen and Aslam (2020) studied the teacher engagement level in classroom through emotional intelligence in government secondary schools. Emotional intelligence helps to know emotions which are helping to spend life more easily and happily and such type of people are more satisfied than other people. Results of the study indicated that emotional intelligence level of the teachers was average and they engaged students effectively in classrooms.

A teacher is the single most important factor in the success of pupils and thereby the entire society. They still provide valuable and unique professional service to the nation by guiding students in the development of high ideals and true appreciation of the freedom and responsibilities of any citizenship and by assisting them to develop the skill . Keeping these things in mind the study on these variables was conducted.

Objectives of the Study ;

1. To study the relationship between Adjustment and Emotional intelligence of secondary school teachers.
2. To compare the Adjustment of male and female secondary school teachers.
3. To compare the Emotional Intelligence of male and female secondary school teachers .

Research Design and Methodology ;

Descriptive survey method of research was used in the present study.A sample of 150 secondary school teachers were taken as a sample by using Multistage random sampling technique from the population of secondary school teachers teaching in secondary schools of South Haryana. Adjustment was measured as the score obtained by secondary school teachers on the Mangal Teacher Adjustment Inventory 2007 and Emotional Intelligence was measured as the score obtained by secondary school teachers on the Mangal Emotional Intelligence Inventory 2004. The collected data was analyzed both quantitatively as well as qualitatively . After the scoring procedure Mean,Standard Deviation ,T-values and coefficents of correlation were calculated to find out the significance of difference between the variables and relationship between the variables of the study.

Results and Discussion

Objective 1: To study the relationship between Adjustment and Emotional Intelligence of secondary school teachers.

For the purpose of studying the relationship between adjustment and emotional intelligence of secondary school teachers, the following null hypothesis was formulated:

H_{01} **There is no significant relationship between** adjustment and emotional intelligence of secondary school teachers.

To test the null hypothesis, co-efficient of correlation (r) was computed. The results are presented in Table 1.1

Table 1.1
Relationship between Adjustment and Emotional Intelligence of Secondary School Teachers

Variables	N	Coefficient of Correlation (r)	Interpretation
Adjustment	150	0.44**	Significant at .01 level
Emotional Intelligence	150		

0.05≤ 0.138, 0.01≤ 0.181

A Perusal of Table 1.1 indicates that the coefficient of correlation between **adjustment and emotional intelligence among secondary school teachers** is 0.44 which is significant at .01 level of significance. Thus, the null hypothesis i.e. **There is no significant relationship between** adjustment and emotional intelligence of secondary school teachers, **is rejected**. Thus, we can say that adjustment and emotional intelligence both are correlated with each other. Magnitude of 'r' indicates positive correlation among adjustment and emotional intelligence which means that more the scores in emotional intelligence more the adjustment among secondary school teachers. Similar study was conducted by Sharma (2019) who also showed a significant relationship between social adjustment with emotional intelligence.

Objective 2: To compare the Adjustment of male and female secondary school teachers.

For the purpose of studying the significant difference in Adjustment of male and female secondary school teachers, the following null hypothesis was formulated:

H_{02} **There is no significant difference in** Adjustment of male and female secondary school teachers.

To test the null hypothesis, Mean, Standard Deviation, t-test and level of significance of the scores obtained from adjustment scale was calculated. The results are presented in Table 1.2.

Table 1.2
Descriptive statistics related to the Adjustment of Male and Female Secondary School Teachers

Variable	Groups	N	Mean	SD	't' value	Level of Significance
Adjustment	Male	75	31.98	9.64	4.25	Significant at 0.05
	Female	75	38.78	10.12		

0.05≤ 1.96, 0.01≤ 2.61

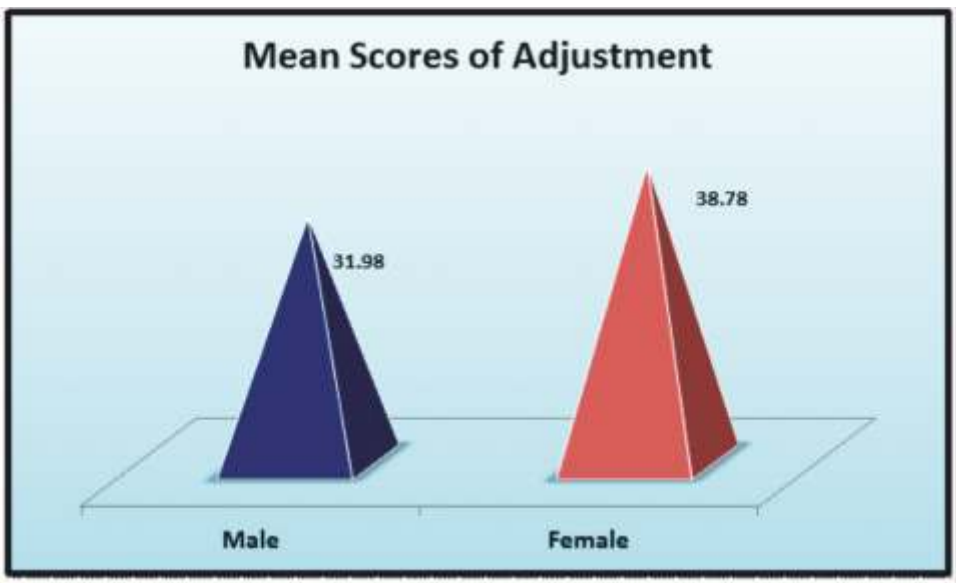

Fig. 1: Mean Adjustment Scores of Male and Female Secondary School Teachers

From the Table 1.1 and Fig.1, it can be observed that the t-value of 4.25 was found significant at 0.05 levels, which indicates that the adjustment among male and female secondary school teachers differ significantly. So, the null hypothesis i.e. There is no significant difference in adjustment of male and female secondary school teachers, is rejected. Thus, we can say that adjustment among secondary school teachers is affected by gender. In terms of mean scores, it was found that adjustment among female secondary school teacher i.e. 38.78 were greater than adjustment among male secondary school teachers i.e. 31.98. Thus, it can be concluded that female teacher are more adjusted than male secondary school teachers.

Objective 3: To compare the Emotional Intelligence of male and female secondary school teachers.

For the purpose of studying the significant difference in emotional intelligence of male and female secondary school teachers, the following null hypothesis was formulated:

$\mathbf{H_{03}}$ There is no significant difference in Emotional Intelligence of male and female secondary school teachers.

To test the null hypothesis, Mean, Standard Deviation, t-test and level of significance of the scores obtained from adjustment scale was calculated. The results are presented in Table 1.3.

Table 1.3
Descriptive statistics related to the Emotional Intelligence of Male and Female Secondary School Teachers

Variable	Groups	N	Mean	SD	't' value	Level of Significance
Emotional Intelligence	Male	75	13.87	5.21	2.97	Significant at 0.05
	Female	75	11.43	4.89		

0.05≤ 1.96, 0.01≤ 2.61

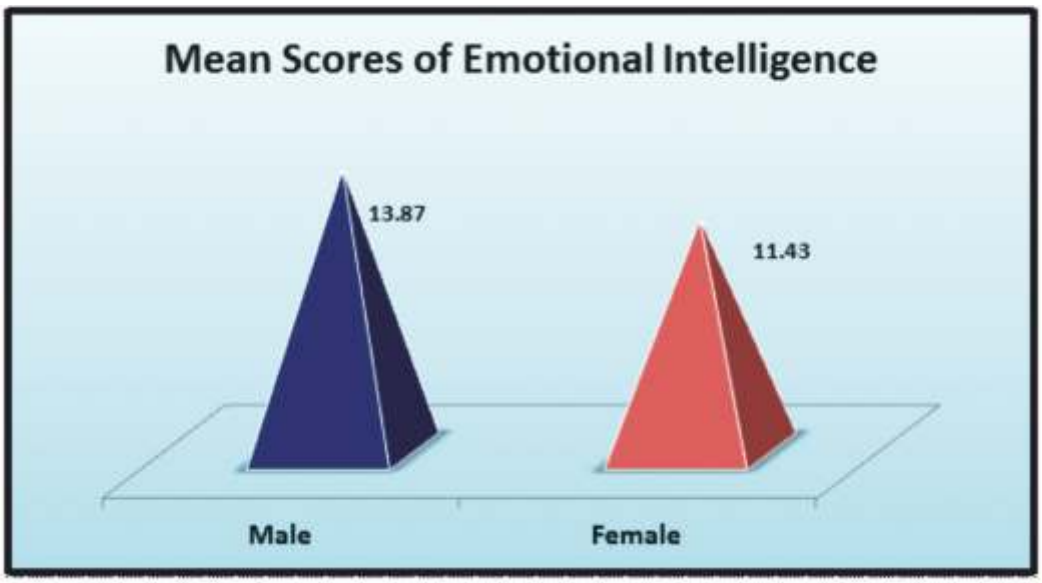

Fig. 2: Mean Emotional Intelligence Scores of Male and Female Secondary School Teachers

An examination of Table 1.2 and Fig.2 indicated that the t-value of 2.97 was found significant at 0.05 levels, which indicates that the emotional intelligence among male and female secondary school teachers differ significantly. So, the null hypothesis i.e. There is no significant difference in emotional intelligence of male and female secondary school teachers, is rejected. Thus, we can say that emotional intelligence among secondary school teachers is affected by gender. In terms of mean scores, it was found that emotional intelligence among male secondary school teacher i.e. 13.87 are greater than emotional intelligence among female secondary school teachers i.e. 11.43. Thus, it can be concluded that male secondary school teacher are more emotional intelligence than female secondary school teachers.

Bibliography

1. *Abiodullah,M.Dur-e-Sameen and Aslam ,M (2020). Emotional intelligence as predictor of Teacher Engagement in classroom.Bulletin of Education and Research,42,1,127-140*
2. *Adhikari (2011)A study of Emotional Intelligence amongst secondary school teachers of Sikkim in relation to their Teaching Aptitude.Ph.D .North Eastern hill university.*
3. *DU Malik, (2020) Teaching effectiveness of university teacher,s in relation to their Sense of humour.Psychology and Education 57(9),6592-6599 www.psychologyandeducation.net*
4. *Kaur, M & Shikha (2015),Adjustment of secondary school teachers in relation to attitude towards teaching .SRJIS,VOL.III/XVII,pp.3007-3014.*
5. *Singh,B(2020).A Study of Teaching Aptitude and Adjustment of senior secondary school teachers.International journal of all research education and scientific methods ,8(4).*
6. *U Malik,Sonia (2015) , Teaching competency of secondary school teachers in relation to their Emotional Intelligence.The Educand 5(1),128-133*
7. *U Malik (2009) ,Teaching effectiveness of secondary teachers in relation to their Emotional Intelligence .Journal of Teacher Education and Research 4 (2),98-105*

Gender Discrimination: Consequences and Security Policy

Dr. Suman Maurya
Assistant Professor, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Paper illustrates and analyses about historical, Social, cultural and all the perspectives and dimensions of Gender discrimination in respect to the portray of female foeticide, child sex ratio and Gender inequality. This is a matter of highly policy concern not only in our country but of worldwide . Due to this results serious and long lasting impacts and consequences over women in all areas. Recently, feminist analysis and security policies are external factors to combat and reduce disparity and discriminations.

Keywords: *Gender, Discrimination, Policy, Female Foeticide, child sex ratio etc.*

India has a long history of strong patriarchal influence in all dimension of life. This has translated in to compulsive preference for sons and discrimination against the girl child and women. It has generated practices like female infanticide, bride-burning and sati and led to the neglect of the girl child in terms of nutrition, education, health care and her overall development. Thus the "elimination" of girls and women has been a part of our social tradition, leading to adverse sex ratio.

The rampant problem of female foeticide in the Indian society today has aroused serious concern among social demographers, policy planners, civil society and community- health managers .That it has now started to draw the attention of and cause anxiety among the contemporary sociologists of the country is in itself a matter of huge concern. A cautious reflection on what role is expected of those who are in the profession of teaching and research seems very much in order.[1]

Gender discrimination is observed before birth of a girl child at foetal stage. Gender discrimination is something which our society has been facing since long in India, discriminatory attitude towards men and women has existed for generations. "Gender discrimination means discrimination based on gender or set which more often affect girls and women. Because of this discrimination girls and women do not have the same opportunities as boys and men for education meaningful career and advancement in equality leads and possible violence in society." Girls and women are considered undesirable in India. Thousands of girls are killed in India everyday with many clean before or just after birth. This is a terrible situation with bring and awful picture of our advanced society. Discrimination in society has led to female foeticide or female infanticide.

Although India is developing and making out standing position in the whole world but we should not forget that the society which at one place praises a female being of supernatural powers or attributes, believe in or worship her named as goddess. On the other hand female being tortured harassed, and even killed this way. This is a terrible face of our society.

"Female foeticide is the termination of female foetus from the womb of mother through abortion in illegal manner for some assumed cultural reasons." In, other words it is the selective abortion or

elimination of the female foetus, done deliberately or under pressure of family by the mother after the detection of the female foetus through medical tests. "Female infanticide is the deliberate killing of newborn female child". It occurs in India for assumed cultural reasons that span centuries. Low status of women an exorbitant dowry demand, religion in some ways contributes to gender discrimination, are the main reasons for female infanticide and foeticide and which also results in trafficking of women at some level .

"In India declining child sex ratio and female foeticide is matter of great concern. The female foeticide means (a) a girl is killed before she is born(b)that sex of a foetus is determined to be that of a female(c)it acknowledges that there is technology privy to this heinous crime(d)there are doctors involved in first determining the sex of the baby, then carrying out abortion; and (e)there is crime involved in violating not one but many laws: the Pre Conception and Pre Natal Diagnostic Techniques,1994 Act,the Section 307 IPC (of attempt to murder) and alongwith crime and abetment of murder etc".[2]

"Women in India are considered inferior then men since ages. In society there is common believe that men are more capable to earn more than their women. It is widely seen that the male members of the family try to control the activities of the female members which lead to the lower status of women. The lower status of women are evaluated as that women do not get the adequate chance to do something to contribute to the society. Since the status of women in society is low, people want a male child instead of a girl child. This escalate the problem of female foeticide. It is seen all over the country. This reflects the narrow mind set of the society. If a girl gets equal opportunity to get educated, then she will be in a better position to decide, what that is best off for her future. The solution to the problem is the empowerment of women is of utmost importance for solving the problem. Awareness must be created to change the narrow mind set of the society. Campaigns must be launched to acknowledge the role and contribution of women in the society. Education can help to solve this problem to some extent. Mass media campaigns should be promoted. Gender equality and women education is very important to stop the evil practice of killing girl child".

Law enforcement is the best way to counter this problem and to save the girl child.The another effective way to put an end to this evil practice is to spread awareness among people. The society must be realise that it could lead to an imbalance in society.

Reasons of adverse child sex ratio: From the several studies; it can be said that following factors are primarily responsible for causing female foeticide or low child sex ratio:

- **Evil of dowry:** Financial burden transferred from father or husband.
- **Social Security:** Continue to posses one's property even after death.
- **Religion:** Son is regarded as essential in Hinduism.
- **Small Child Norm:** Educational status demands small family with son.
- **Financial backup for family:** Son will grow up to be a bread winner and support the family and carry the family name forward.
- **Lack of knowledge and awareness:** Manifestation of patriarchy in rural areas may be cause of this demographic nightmare.
- **Social insecurity among women :** Due to norms, traditions, attitudes, social structure that highly influence the women in society
- **Easy access to sex determination technology :** Easier methods to detect pre-natal sex selection by the means of genetic disorder or anything else.

- **Financial dependence :** Lack of economic empowerment of women leads to dependency to male member.
- **Traditional and cultural factors :** Son preference mind set and son centric rituals.
- **Poverty :** Male member is only earning source of family is widen approach of society .
- **Illiteracy :** Due to illiteracy child marriages, violence against women rises that showing upward trend of declining child sex Ratio.
- **Low status of women in society :** Patriarchal framework of society forefront the low status of women.
- **Weak provisions of Law :** culture, religion and society is more prevelant rather than laws and matter of policy concerns hence the enforcement of laws are ineffective.
- **Universalization of small family :** Son preference approach of families in small family laws may lead adverse child sex ratio in process of family planning.
- **The increasing greed of doctors :** Inspite of strong implementation of PCPNDT Act,1994 doctors involve in wrong deeds of needs of greeds.
- **Globalization :** Due to exploitation and harassment women resists to work and they have dual responsibility to care their infants.

The male dominated society has established its status as a secondary status, despite being the first leader of the family, a program like women empowerment is needed today. Gandhiji considered the woman and the man as two wings of a socially-colored bird. Can not fly in the same way, suppressing the thinking of the female caste in the society cannot develop the society, but we are hesitant to accept the truth despite knowing it.

In the social sector, the situation is most ironic. Where a woman starts being tortured before birth, she is considered Burden in the name of female foeticide or murder of a newborn girl, discrimination in nutrition and education when the girl child is born, child marriages like child marriage and dowry.

With increasing education in modern society, the declining sex ratio has led to discrepancy. The reason for this is that awareness has increased due to education, but the misuse of modern technology has also increased and civilized society has put a stigma on the forehead of the society by aborting the girl child due to sex check. As a result, the child sex ratio is a reflection of the fact that a cultured modern society is a sham while the mindset is worse than that the illiterate society even today.

The different different have evolved policies, plans of action, legislations, programmes and schemes for advancement of women and girls and has been implementing them with the support of GoI, State Government and Non Government Organisations for achieving mandate of women empowerment.

1. Sustainable Development Goals (SDGs) have taken the center stage in defining the developmental priorities. Women empowerment is widely recognised as the precondition for achieving the several targets of the SDGs like poverty eradication, inequality, good health, decent work and economic growth. Wellbeing of women and girls is essential for realisation of demographic dividend of the country. The Schemes and initiatives of the different of state are aligned with the targets of SDGs and are directly linked to the social safety net for development and welfare of women and girls in the country. The quest for women's equality in the home and the work place and in society at large had already become a parent men and women's role in both places are being redefined. The redefining of the women's role in society is having a profound effect upon family life. This is reflected not just in the

pronouncements of psychologist and sociologist but in the rising divorce rate and the sinking birthday speedily. Changing values are creating doubts and uncertainty is in family and children. Traditional notions of morals and property are being challenged and defined employment opportunities for women and minorities expended rapidly between 1964 and 1973 by 1974. However the situation had begin to change the United States and tired and economic recession and employees but both public and private begin to lay of workers open using the long accepted principle of 'last hired, first fired' where the workers who lacked seniority laid off first.

Attitudes and Perceptions

This section presents findings on behaviour, practices and norms on gender in aspects of access to equal opportunities in education, health care and nutrition, which create an enabling environment for the girl child. The section also captures prevalent attitudes and perceptions on social practices and norms such as dowry, child marriage, son preference, etc.

- Proper and effective implementation of PCPNDT Act.
- There is a great need to start PBI (PCPNDT Bureau of Investigation) on the line of CBI.
- Incentives and protection for the informers.
- It is great need for better convergence among the departments for effective implementation of schemes.
- Focus on the humanist, as well as scientific and rational approach and a move away from the traditional teachings which support a practice.
- Empowerment of women and measures to deal with other discriminatory practices such as dowry, etc.
- Ensuring development of and access to good health care services.
- A strong ethical code for doctors.
- Simple methods for complaint registration for all women, particularly those who are most vulnerable.
- Publicity for the cause through the media and increasing awareness amongst the people through NGOs and organizations.
- Regular appraisal and assessment of the indicators of the status of women such as child sex ratio, under five female mortality, literacy, and Nutrition etc.
- Keeping an eagle's eye on the various diagnostic centres for sex determination cases.
- Strict enforcement of the legislation dealing with sex determination.
- Strong movement against sex determination.
- Active participation of women's non governmental organisations in a movement against sex determination.
- Strict registration of ultrasound machines.
- Educating people on the consequences of imbalance in the male-female ratio.
- Free compulsory education for girls up to college and even post graduate education in government run institutions.
- Create a feminine movement so that women feel a sisterhood towards each other and stand up for a women in a neighbouring house rather than turn a blind eye.
- Provide extra incentives for families that have more than one girl child.This will help correct the gender balance in a few years.
- Opening of an information and relief centre where aggrieved mothers can seek help in order to escape sex determination being forced on them by the family.

References:

1. *S.Akhilesh(2012):Female Foeticide in India,*

Female Foeticide, Pointer Publications ,Raj,pp 40

2. *Hoyt Gimlin, Editorial research reports, the women's movement achievements and effects, congressional quarterly Publishers, Washington DC, 1977*
3. *S.K.Ghosh, Women in policing, light and life Publishers, New Delhi, 1981*
4. *Malladi subbamma, Women: tradition and culture, Sterling publishers Private Limited, New Delhi, 1985*
5. *K. N. Jha, Women towards modernization, Janki Prakashan, Patna, 1985*
6. *J. Krishnamurti, Women in colonial India: essays on survival work and state, Oxford University Press , New York, 1989*
7. *Indu Prakash Singh, Indian women: the captured beings, Intellectual publishing house ,New Delhi ,1990-*
8. *Vandana Shiva, Maria Mies, Ecofeminism, Jed books Limited ,UK 1993*
9. *Madhurima, Violence against women: dynamics of conjugal relations, Gyan publishing house, New Delhi ,1996*
10. *Uma Shankar Jha, Aarti Mehta, Latika Menon, Status of Indian women: crisis and conflict in gender issues, progressive women and political identity, Kanishka publishers , New Delhi ,1998.*
11. *N. Jayapalan ,Women and Human Rights, Atlantic Publishers and distributors, New Delhi, 2001*
12. *Leela Desai, Issues in feminism, Pointer Publishers, Jaipur ,2004*
13. *Usha V.T. and S. Murali, Figuring the Female womens this course art and literature the women Press Delhi 2006, classical feminist thought recognises women as a social construct within a patriarchal culture one is not born but one becomes a women (Simone de Beauvoir,1949).*
14. *M. Shinoy, Domestic violence: Issues and perspectives, Aavishkar publishers, Jaipur, 2007*
15. *D. Parth sarthy, Ncis Thekkekara, Veena Poonacha, Women's Self help groups: Restructuring socio- economic development, Dominant Publishers, New Delhi, 2011- Mayur Sachdeva, Rajan Chaudhary, Pre Conception and Pre Natal Diagnostic Technique(Prohibition of Sex Selection) Act ,Rajasthan Law House, Jodhpur, 2017- and Pre-Natal Diagnostic Techniques Rules,1996*
16. *S.V.Pandey,(2012) :A reflection on the Role of Sociologist in the context of a social problem with special reference to female foeticide in Indian Society,Female foeticide ,Pointer Publications ,Raj,pp 1*

Aspects of Human Trafficking in India: An Analytical Study in the context of Human Rights

Dr. Vinod Kumar Sharma
Principal, Hans College, Paota (Kotputli)

shodhshree@gmail.com

Abstract

The interrelationships of complex socio-economic-political structures, factors such as poverty, gender, caste, class etc. form the basis of human trafficking. Human trafficking is one of the most abhorrent forms of human rights violation. Human trafficking includes the transportation, shelter and acquisition of human beings by fraud, coercion, abduction and intimidation for the purpose of exploitation. Trafficking of women and children has emerged as social problem to the world. It is borderless crime because human trafficking in its various forms is spreaded all over the world. Over the years, India has been developing as a destination and transit hub for human trafficking of South-Asian countries. This study is based on both primary and secondary sources. Its purpose is to publish the dimensions of human trafficking and the efforts made at the government level.

Keywords: *Human Trafficking, Coercion, Abhorrent, Intimidation, Dimensions.*

Human trafficking has been related to slavery and forced labour since ancient time. At present it is not limited to sexual exploitation of women and children; it is also associated with other related criminal activities such as: recovery, counterfeiting, money laundering, drug use and trade, gambling, prostitution, trade in human organs, begging, military conflict and bribery to government officials. Human Trafficking has become the third largest source of transnational illegal activities after arms and drugs.[1] In recent years, India has become a major source and destination of human trafficking as well as a transit destination for trafficking of men, women for labour and sexual exploitation.

Definition of Human Trafficking: Human trafficking is multifaceted complex issue, with intertwined and complex commercial, social and cultural factors. Despite of being illegal around the world, human trafficking is continuing to regularly violate national and international law. According to the Oxford dictionary, trafficking means illegal transaction or business of good. The conceptual meaning of human trafficking refers to "to the criminal practice of exploitation of human beings where they are treated as commodities for profit and after being trafficked, are subject to long term explotation.[2] The United Nations Convention for the suppression of the Trafficking in Persons and of the Exploitation of the Prostitution of Others, 1949 prescribes procedures for combating international traffic for the purpose of prostitution, including extradition of offenders.

The Palermo Protocol defines trafficking as: "Trafficking in persons" shall mean the recruitment, transportation, transfer, harboring or receipt of persons, by means of the threat or use of force or other forms of coercion, of abduction, of fraud, of deception, of the abuse of power or of a position of vulnerability or of the giving or receiving of payments or benefits to achieve the consent of a person having control over another person, for the purpose of exploitation. Exploitation shall include, at a minimum, the exploitation of the prostitution of others or other forms of sexual exploitation, forced

labour or services, slavery or practices similar to slavery, servitude or the removal of organs.[3]

Through coercion, kidnapping, fraud or forgery; the recruitment, abduction, transport, shelter, transfer, sale or acquisition of persons within or across borders, whether legally or unlawfully; placing of persons in slavery or servitude-like conditions, forced labour or other services such as forced prostitution or sex service, domestic servitude, bonded labour in shops or bonded labour because of debt, all these activities are included in human trafficking. Following are the key features of the human trafficking under the new international law:

- Trafficking affects women, men and children and involves a range of exploitative practices.
- Trafficking does not require the crossing of an international border.
- Trafficking is not the same as migrant smuggling.
- Trafficking does not always require movement.
- It is not possible to "consent" to trafficking.

Generally, Human trafficking, also called trafficking in persons, involving the illegal transport of individuals by force or deception for the purpose of labour, sexual exploitation, or activities in which others benefit financially.

Root causes of Human Trafficking in India: Human trafficking is a global problem affecting people of all age. There are many reasons for human trafficking, but the demand and supply are the most important reasons. The growing demand for trafficked people is one of the major causes for the expansion of trafficking industry.[4]The development of new sector has fueled the demand for human trafficking such as: pedophilia, pornography, sex tourism, military organizations working against the government and trade in human organs etc. The causes of human trafficking can be defined as follows:

- **Demand of Sexual Desires and their Fulfilment:** Prostitution, pedophilia, sex tourism, pornography, child marriage, mail-order brides and entertainment events like lap-dancing are the important means to fulfil the sexual desires for male. In India demand of commercial sex, encourages human traffickers to recruit and entrap female, especially young girls. Children and women from poor families in India easily become victims of human trafficking and are forced into prostitution and other related works.
- **Poverty and Demand of Cheap Labour:** In India Poverty and the demand for cheap labouris also another reason for human trafficking. Both factors are closely related to each other. India is one of the most populous countries in the world; around 30-40 percent of its population is living below poverty line. Unfavorable economic condition of family provides an opportunity to traffickers for trafficking women and children. Competition to manufacture good at low prices has reduced labour costs in South Asian countries. India has become a Centre for low cost, labour-intensive, manufacturing operations. Bonded labour in farms and on brick kilns; contract labour in plantations and at construction sites; forced labour in shops and home are the forms of human trafficking. All of these have clear relation with poverty and cheap labour.
- **Trade of Human Organs:** In other countries of the world, India and China have become the biggest Centre's of organ transplant due to expensive medical expenses and strict organ transplant regulations. Traffickers by luring children and other people to donate human organs by offering big

sum of money. From time to time, many cases related to kidney transplant in India, which are related to human trafficking, are published in the newspapers.

- **Cast and Ethnicity:** In India, where even today, due to the caste system, families and children Dalits and lower caste groups can be seen working as bonded laborers with upper caste landlords. Bonded labour is found in agriculture, domestic work, brick kilns, glass industries, tanneries and many other manufacturing and construction industries. It is known from many studies that people indulging in bonded labour are belongs to the marginalized scheduled caste, scheduled tribes and other backward class communities. In some state of India, prostitution in some caste mostly belong to low caste like Nats, Kanjars and Bediyas; has remained an ideal profession from generation to generation and mothers are forced to pass on prostitution to their daughters.
- **Organized Crime:** Like other countries of the world, the objective of organized crime in India is acquired profit.Human Trafficking is considered to be the third largest source of profits for organized crime. Crime such as drug trafficking, money laundering, firearms trafficking, illegal gambling, extortion, counterfeit goods, wildlife and cultural property smuggling and cyber-crime are keystones with organized crime. Human trafficking and organized crime are currently closely intertwined. All these illegal acts are easily done by the victims of human trafficking because it is less risky for the traffickers.

Apart from all this there are other factors which are responsible for human trafficking like: Natural Disaster, Armed Conflicts, Illiteracy and Unequal development, Child marriage and Sex ratio inequality, Political and Social insecurity, Illegal adoption of children and Inadequate Law etc.

Provisions related to Human Trafficking in India: Human rights are regarded as basic moral values for every human being of the world. These are equally available to all persons without any discrimination, whether they are men or women because they are human being first and foremost. The constitution of India is influenced by the Charter of the United Nations and the Universal Declaration of Human Rights. In India, along with the constitution, there are many provisions at the government and legislative level, which help in preventing human trafficking as well as protect their rights.

- **Constitutional Provisions related to Human Trafficking in India:** The Indian Constitution provides every person with the right to live a life of dignity.
  - Article 21 of the Indian Constitution Provides: Protection of life and personal liberty: "No person shall be deprived of his life or personal liberty expect according to procedure established by law." [5] Article 21 protects the very Right of life and liberty of people in India, both citizen, and non- citizens, referring to the interpretation made in the case of Kharak Singh v. State of Uttar Pradesh[6] it was stated: life is not mere animal existence and there is more to it. Hence humans cannot be sold like commodities or animals hampering their Right of life. As it is very rightly said in the case of Menka Gandhi v. Union of India[7] right to life embodied in Article 21 of the Indian

Constitution, is not merely a physical right but it also includes within its ambit, the right to live with human dignity. And hence dignity cannot be hampered by any act of contractual human dealing.

- Article 23 of the Indian constitution prohibits human trafficking and forced labour and other similar forms of forced labour.[8]. This article also says that any contravention of this provision shall be an offense and shall be punishable in accordance with law.

- **Legislative Framework Relating to Human-Trafficking in India:**
  - **The Immoral Traffic Prevention Act, 1956 (PITA):** PITA is a major law to combat trafficking for commercial sexual exploitation and prohibits prostitution. It has provisions to provide rehabilitation and protection to victims of commercial sexual abuse.
  - **Protection of Children from Sexual Offences, 2012 (POCSO):** POCSO has come into effect from 14th November 2012, it provides precis definitions for different forms of sexual abuse, including penetrative and non-penetrative sexual assault, sexual harassment. These offences have been clearly defined for the first time in law. The act provides for stringent punishments, which have been graded as per the gravity of the offences. The punishments range from simple to rigorous imprisonment of varying periods. There is also provision for fine, which is to be decided by the court.
  - **The Criminal Law Amendment Act, 2013:** Section 370 of Indian Penal Code, 1860 dealt with the offence of human trafficking.Section 370 amended by the Criminal Law Amendment Act 2013. The Criminal Law Amendment Act, 2013 has come into force wherein section 370 of the IPC has been substituted with section 370 and 370-A IPC which provide for comprehensive measures to counter the menace of human trafficking including trafficking of children for exploitation in any form including physical exploitation or any form of sexual exploitation, slavery, servitude, or the forced removal of organs.

There are also many other specific legislations enacted relating to trafficking as: (1) Bondage Labour System (Abolition) Act, 1976, (2) Inter-State Migrant Worker (Regulation of Employment Conditions) Act, 1979, (3) Child Labour (Protection& Regulation) Act, 1986, (4) Transplantation of Human Organs Act, 1994, (5) The Emigration Act, 1994. Apart from these many states government have also enacted specific legislations to deal with human trafficking as: (1) Maharashtra Control of Organized Crime Act, 1979, (2) The Goa Children's Act, 2003 (3) The Punjab Prevention of Human Smuggling Act, 2012.

- **Administrative Measures and Interventions:** To tackle the menace of human trafficking, Ministry of Home

Affairs, Government of India has undertaken a number of measures such as:

- **Anti-Trafficking Cell:** Anti-Trafficking Nodal Cell was set up in the Ministry of Home Affairs (MHA) in 2006 to act as a focal point for communication various decisions and follow up on action taken by the state governments to combat the crime of human trafficking. MHA conducts coordination meetings with the Nodal Officers of Anti Human Trafficking Units nominated in all States/UTs periodically.
- **Advisories:** To improve the effectiveness in tackling the crime of human trafficking and to increase the responsiveness of the law enforcement machinery, MHA has issued following comprehensive advisories to all States/UTs

Ministry of Home Affairs Advisories

S.N.	Name of Advisory	Date
01.	Advisory on Crime Against Women	04 Sep. 2009
02.	Advisory on Preventing and Combating Human Trafficking in India	09 Sep. 2009
03.	Advisory on Crime Against Children	14 July 2010
04.	Advisory on Prevention Registration and Prosecution of Crime	16 July 2010
05.	Advisory on Preventing Cyber Crime Against Children	16 July 2010
06.	Advisory on Preventing and Combating Human Trafficking during Commonwealth Games.	10 Sep. 2010
07.	Advisory on Missing Children	31 Jan. 2012
08.	Advisory on Human Trafficking Organized Crime	30 Apr. 2012
09.	Advisory on Human Trafficking-Dealing with Foreign National	01 May 2012
10.	Advisory on Hon'ble Supreme Court's direction to file FIR in case Missing Children	25 June 2913
11.	SOP to handle trafficking of children for child labour	12 Aug. 2013
12.	Advisory on Anti-Human Trafficking	05 May 2014
13.	Advisory for Associating SSB and BSF in crime Meeting	23 July 2015

From the website of Ministry of Home Affairs and Ministry of External Affairs, Government of India

Apart from these measures India has ratified many International Convention and Implemented them as: (1) United Nations Convention on Transnational Organized Crime (UNCTOC), 2003, (2) SAARC Convention on Prevention and Combating Trafficking in Women and Children for Prostitution, 2002, (3) Protocol to Prevent, Suppress and Punish Trafficking in Persons especially Women and Children, 2003 and many others.

Violation of Human Rights of Trafficked Person and Facts about Trafficking in India: Nelson Mandela, Former President of South Africa once said that "To deny people their rights are to challenge their very humanity."Human Trafficking in itself is a serious violation of human rights. United Nation's General Assembly and Human Rights Council has been said many times that human trafficking affects fundamental human rights and it also affects many international human rights systems. Trafficked persons are entitled to a number of human rights. A person who is trafficked has to face gender -specific harm and fatal consequences viz: Rape, Forced Marriage, Unwanted Pregnancy, Forced Termination of Pregnancy, HIV/AIDS and Sexually Transmitted Diseases, Exploitative labour and begging. All these situations are violation of human rights. Human trafficking mainly violates specific human rights of trafficked person such as: freedom, free thought and expression, education, living with dignity etc.

The physical and sexual abuse creates psychological depression and fear in trafficked person, that can distract the victim and that can become a threat to the society. It's seen those women, who got back from trafficking, find it difficult to adjust to normal social life. They are afraid to freely settle back into society because of fear of being trafficked again. The brothels are the dens of violations of human rights. Women and children who have been trafficked and thereafter subjected to commercial sexual exploitation are "living embodiments of the ultimate violation of human rights.[9]

Victims of trafficking are sometimes compelled to become criminals. Sometimes it happens, a victim who came back to society is again re-trafficked as because there is a long chain of traffickers working behind this crime. Victims who try to rejoin society sometimes do not get support from their family and community.

TABLE
Victims Trafficked-2019[10]

S. No.	State/UT	Below18Yrs			Above18Yrs			Total		
		Male	Female	Total	Male	Female	Total	Male	Female	Total
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
STATES:										
1	AndhraPradesh	0	18	18	1	380	381	1	398	399
2	ArunachalPradesh	1	3	4	0	0	0	1	3	4
3	Assam	24	56	80	36	132	168	60	188	248
4	Bihar	261	33	294	0	22	22	261	55	316
5	Chhattisgarh	52	61	113	131	94	225	183	155	338
6	Goa	0	2	2	0	88	88	0	90	90
7	Gujarat	0	2	2	0	20	20	0	22	22
8	Haryana	3	3	6	0	14	14	3	17	20
9	HimachalPradesh	0	1	1	2	14	16	2	15	17
10	Jammu& Kashmir	0	0	0	0	0	0	0	0	0
11	Jharkhand	34	138	172	19	48	67	53	186	239
12	Karnataka	12	30	42	32	112	144	44	142	186

13	Kerala	22	155	177	14	27	41	36	182	218
14	MadhyaPradesh	47	76	123	0	92	92	47	168	215
15	Maharashtra	34	61	95	16	875	891	50	936	986
16	Manipur	2	3	5	33	151	184	35	154	189
17	Meghalaya	0	30	30	0	1	1	0	31	31
18	Mizoram	3	22	25	2	27	29	5	49	54
19	Nagaland	0	2	2	0	18	18	0	20	20
20	Odisha	94	108	202	424	250	674	518	358	876
21	Punjab	1	8	9	2	8	10	3	16	19
22	Rajasthan	636	17	653	5	6	11	641	23	664
23	Sikkim	0	0	0	0	2	2	0	2	2
24	TamilNadu	21	22	43	18	16	34	39	38	77
25	Telangana	1	70	71	0	263	263	1	333	334
26	Tripura	0	1	1	0	1	1	0	2	2
27	UttarPradesh	16	16	32	11	94	105	27	110	137
28	Uttarakhand	5	11	16	0	20	20	5	31	36
29	WestBengal	11	148	159	7	96	103	18	244	262
	TOTALSTATE(S)	**1280**	**1097**	**2377**	**753**	**2871**	**3624**	**2033**	**3968**	**6001**
UNIONTERRITORIES:										
30	A & NIslands	0	0	0	0	0	0	0	0	0
31	Chandigarh	0	1	1	0	1	1	0	0	0
32	D&NHaveli	0	0	0	0	0	0	0	0	0
33	Daman& Diu	0	0	0	0	0	0	0	0	0
34	DelhiUT	462	74	536	42	30	72	504	104	608
35	Lakshadweep	0	0	0	0	0	0	0	0	0
36	Puducherry	0	0	0	0	5	5	0	0	0
	TOTALUT(S)	**462**	**75**	**537**	**42**	**36**	**78**	**504**	**111**	**615**
	TOTAL (ALLINDIA)	**1742**	**1172**	**2914**	**795**	**2907**	**3702**	**2537**	**4079**	**6616**

TABLE14.2-Page:1of1

As Per data provided by States/UTs

Duetonon-receipt of data from West Bengal in time for 2019, data furnished for 2018 has been used.

According to an estimate, human trafficking in India may affect between 20 and 65 million people. In every eight minutes a child is kidnapped in the country. According to government data, every year around forty-four thousand children are becoming victims of human trafficking.[11]As a report by the National Human Rights Commission of India, only 10% of human trafficking in India is international; the remaining 90% operates inter-state. According to the CBI (Central Bureau of Investigation) reports from 2009, there are an estimated 1.2 million children involved in prostitution in India. Most of the people from West Bengal, Assam, Jharkhand, Chhattisgarh, Maharashtra, Rajasthan, Tamil Nadu and Gujarat are victims of Human Trafficking. They are consumed in the states of Uttar Pradesh, Delhi, Punjab and Haryana etc. Statistics show that human trafficking in India remains a serious problem of human rights.

Human traffickers bring poor and gullible girls from Nepal and Bangladesh to India by illegally crossing the border with the lure of work and money. They are then thrown into inhuman activities like prostitution, forced labour and domestic slavery. State and Union Territories still do not seem serious regarding human

trafficking. Anti-human trafficking units have been formed in 696out of 718 districts of the country; the government has not been able to prepare dedicated squads in all the districts. Hamid Ansari, former Vice-President of India has said in his speech "Human Rights and Human Wrongs", that introspection is required on some issues of human rights.[12]

Conclusively, the government of India is trying to solve the problem of human trafficking by increasing the security of its borders, making anti-trafficking laws, budget provision to help trafficking victims. The Rescue foundation, established in 2000, through education, training, counselling, legal aids and many rehabilitation programmes: helps to investigate, rescue and rehabilitate victims of human trafficking in India. Human trafficking laws should be strengthened so that all requirements can be met to prevent human trafficking. Poverty is the biggest cause of human trafficking in India. Therefore, it is necessary to make people living below the poverty line in India aware about human trafficking and its consequences. Various issues related to human trafficking should be included in the curriculum at each level of education. Workshops and seminars on human trafficking should also be organized from time to time by government, NGO's and educational institutions; so that the information about human trafficking increases in the general public. Human trafficking is not only problem of India at present, it is an international problem, so there is a great need for national as well as international cooperation for its solution.

Reference:

1. *Malhotra, D. "Trafficking of Women and Children: A Culture of Silence", Lucknow, Eastern Book Company, 2005, p.01.*
2. *Sen., S, & Nair, P.M., "A Report on Trafficking on Women and Children in the India, 2002-2003, Vol. 01, Institute of Social Science, NHRC & UNIFEM, India, 2004, p.440.*
3. *United Nation General Assembly Resolution 55/25 15 November.2000. Article-03, p.02.*
4. *Huda, Sigma, "Report of the Special Rapporteur on the Human Rights Aspects of the Victims of Trafficking in Persons, Especially Women and Children, A/HRC/4/23, 24 January 2007, United Nations.*
5. *Singh, Mahindra, P., "Constitution of India", Eastern Book Company, Lucknow. 1998, p. 164.*
6. *AIR 1963, SC., 1295.*
7. *1978, SCR (2)., 621.*
8. *Dr. Panday, J., N., "The Constitutional Law of India, Central Law Agency, Allahabad, 2013, p.324*
9. *Sen, S., & Nair, P.M., "A Report on Trafficking on Women and Children in India 2002-2003", Vol. 01, Institute of Social Sciences, NHRC & UNIFEM, India, 2004, p.440.*
10. *National Crime Records Bureau, Table no. 14.2, Victims Trafficked-2019.*
11. *Rajasthan Patrika, Jaipur, 29 April 2022, p. 15.*
12. *Hamid Ansari, "Human Rights and Human Wrongs", Lecture delivered on 10th December 2013 at Vigyan Bhawan, New Delhi, 2013*

Curriculum and Pedagogy in the Preschool Classrooms in the Light of NEP 2020

Dr. Zeba Tabassum
Assistant Professor, CECDR, JMI, New Delhi

shodhshree@gmail.com

Abstract

The goals of this paper were two-fold. The first goal was to examine the curriculumin preschool classrooms. This issue is important because of the recent impetus for a more policy focus in early childhood classrooms and questions about the developmental benefits of appropriate curriculum. The second goal was to examine and discuss the pedagogical approaches suitable in preschool classrooms, so as to provide children rich developmental and educational experience. This is because understanding the significance of play based and activity based pedagogical approach could make teachers less apprehensive about using play and activities to promote learning and development, and enable them answer questions regarding the value of play. Using these goals as a backdrop, this paper discusses ECCE in the light of NEP 2020, ECCE significance, Curriculum for ECCE and pedagogical approaches in which the learning processes are based i.e., on the needs, interests, abilities and social context of thechildren for whom it is planned.

Keywords: *Early Childhood Care and Education; Preschool Education; Curriculum; Pedagogy.*

The first 8 years of a child's life, known as early childhood stage, are globally acknowledged to be the most critical years for lifelong development since the pace of development in these years is extremely rapid. Recent research in the field of neuroscience, particularly on the brain, has provided convincing evidence of the 'critical periods' located within these early years for the forming of synaptic connections in the brain and for the full development of the brain's potential. Research has also indicated that if these early years are not supported by, or embedded in, a stimulating and enriching physical and psychosocial environment, the chances of the child's brain developing to its full potential are considerably, and often irreversibly, reduced. This stage in life is also important as a foundation for the inculcation of social values and personal habits, which are known to last a lifetime. What follows logically is the crucial importance of investing in these early years to ensure an enabling environment for every child, and thereby a sound foundation for life, which is not only the right of every child but which will also impact, in the long term, the quality of human capital available to a country. (Position Paper National Focus Group on Early Childhood Education, 2005)

Research indicates children who participate in quality early childhood education programme demonstrate considerable gains in social, educational and intellectual spheres, distinctively different from those who do not participate in ECCE programmes. It is an indispensable foundation for lifelong development and learning, and has lasting impact on children's development. (Preschool Curriculum, NCERT 2019)

Research indicates that over 85% of a child's cumulative brain development occurs prior to the age of 6, indicating the critical importance of appropriate care and stimulation of the brain in the early years in

order to ensure healthy brain development and growth. Presently, quality ECCE is not available to crores of young children, particularly children from socio-economically disadvantaged backgrounds. Strong investment in ECCE has the potential to give all young children such access, enabling them to participate and flourish in the educational system throughout their lives. (National Education Policy, 2020)

NEP 2020 emphasizes universal provisioning of quality early childhood development, care, and education must be achieved as soon as possible, and no later than 2030, to ensure that all students entering Grade 1 are school ready.

Pre-primary education is education imparted to children in 3-6 years age group. It is the first stage of organised education. Pre-primary education is also known as preschool education. It is provided in any of the settings such as Anganwadis, Nursery Schools, Preschools, Preparatory Schools, Kindergartens, Montessori schools and Pre-Primary sections located in government and private schools. (Preschool Curriculum, NCERT 2019)

Research suggests that pre-primary education is very important for the development of young children before they enter formal school. It helps in cognitive development of children at the early grades of primary education and it has strong bearing on attendance and participation of children once they enter primary school. Learning during the early years is critical. (Kaul, 2002)

Research indicates children who participate in quality early childhood education programme demonstrate considerable gains in social, educational and intellectual spheres, distinctively different from those who do not participate in ECCE programmes. It is an indispensable foundation for lifelong development and learning, and has lasting impact on children's development. (Preschool Curriculum, NCERT 2019)

The all-round capacities that emerge in 3 to 6 years age group are the pre-requisites for later success in school life. Through creative play, well thought out games with suitable adaptations for children with special needs, and developmentally appropriate activities, children develop their working memory, focus their attention and acquire self-control. These skills of executive functions and self-regulation provide children with the foundations which help them to become as confident and efficient learners in the later years. Preschool programmes not only benefit children and families, they reduce social inequality, and benefit communities and societies at large. (Preschool curriculum, NCERT 2019)

The consensus seems to be that early exposure to learning experiences in stimulating environment will lead children to perform better in primary schools. In the meantime these individuals become more productive healthier citizens in democratic society.

Preschool education envisions promoting access to universal, equitable, joyful, inclusive and contextualised learning opportunities for ensuring holistic development of all children between 3-6 years of age. These can be ensured by involving parents and teachers in providing an emotionally supportive, culturally rooted, child oriented and stimulating learning environment. It aims at maximising individual potential by creating strong foundations for lifelong learning through play and developmentally appropriate practices. It also intends to develop healthy attitude, good values, skills of critical thinking, collaboration, communication, creativity, technology, literacy and socio-emotional development. It ensures smooth transition from preschool to primary school, thus, enabling children for productive and satisfying life in future. (Preschool curriculum, NCERT 2019). They also learn to accommodate naturally the differences (learning styles) among themselves. It is also important that children should be provided emotionally supportive and enabling environment to develop safe and secure relationships with teachers. Children need to feel

free to explore, express, learn and build positive self-concept. Research shows that participation in preschool programmes is beneficial because it leads to improved outcomes, including better nutrition, health, and education in both the short and the long run. Moreover, from an economic point of view, investment in preschool programmes offers a high pay-off in human capital making a strong case for public intervention

Many pre-primary education researchers proved that the pre-primary school years are crucial and characterized by rapid physical and mental growth, these will have lasting effects across the child's life course. So as of pre-primary years foundation stage every child deserves the best possible start in life and support that enables them to fulfill their potential (Justice and Vulkelick, 2008).

NEP 2020 emphasises on the criticality of the early years to ensure quality early childhood care and education for all children as soon as possible, and no later than 2030. The 10+2 structure in school education is modified with a new pedagogical and curricular restructuring of 5+3+3+4 covering ages 3-18 years.

This National Education Policy 2020 is the first education policy of the 21st century and aims to address the growing developmental imperatives of India.

In the new 5+3+3+4 structure, a strong base of Early Childhood Care and Education(ECCE) from age 3 is included, which aims at promoting better overall learning, development, and well-being. The Foundational Stage shall consist of five years of flexible, multilevel, **play/activity-based learning and the curriculum and pedagogy of ECCE.**

Children in the age group of 3-6(pre-primary education) were not covered in the 10+2 structure as Class 1 begins at age 6. In the new 5+3+3+4 structure of NEP 2020 children in the age group 3-6 years are included in the foundational stage of School Education. The Foundational Stage will consist of five years (3-8 YEARS) of flexible, multilevel, play/activity based learning and the curriculum and pedagogy of ECCE. Hence, in the new 5+3+3+4 structure, a strong base of Early Childhood Care and Education (ECCE) from age 3 is included. NEP 2020 also talks about a National Curricular and Pedagogical Framework for Early Childhood Care and Education (NCPFECCE) for children up to the age of 8 to be developed by NCERT in two parts, namely, a sub-framework for 0-3 year-olds and a sub-framework for 3-8 year-olds. NEP 2020 has given a significant importance to pre-primary education.

Curriculum in Preschool Classrooms

The curriculum is the sum total of all the experiences available to the child, and cannot be reduced to a syllabus. The importance of this period of life, and the need for a curriculum that provides for sound and holistic growth and development of the child, has already been established. ECCE Curriculum has to be constructed to suit the child's requirements in different contexts (Contextualization of ECCE curriculum)

It should be in tune with the age, needs, and abilities of the child; it requires the full involvement of the teacher, both in building it and in transacting it in the classroom (age and developmentally appropriate). It is equally important to reiterate that the curriculum should not be the drab, meaningless, and cruel schedule according to which children are forced to do things most inappropriate for their age and needs.

The child has a natural desire to learn, but often what is being done ends up destroying not only the child's urge to learn more and more but also the child's self-confidence and self-worth, leading to poor academic performance and dropping out at a later stage. Many of the practices encountered at this stage are not only boring and meaningless routines for the child, but can even be damaging and dangerous.

Pre-school curriculum should be such which provides a stimulating environment for the

language, intellectual, social, emotional and physical development of the child. A child centred programme catering to individual children's learning and emotional needs through individual, small and large group activities and one to one communication.

It is important to understand that ECCE curriculum has to be age and developmentally appropriate and Contextualisation of ECCE curriculum is also very important.

Meaning of age and developmentally appropriate ECCE/preschool curriculum

The curriculum needs to be flexible and at many times, spontaneous. However, to reach ECCE goals and objectives, children need to be provided with age- and developmentally appropriate experiences and activities that flow in a loosely organized manner. A high quality ECCE programme or curriculum provides a balanced daily schedule through different activities and experiences based on domains i.e. physical-motor, cognitive, language, socio-emotional and art and aesthetic appreciation.

When we talk about age and developmentally appropriate curriculum, we need to keep in mind the age of the children as well as their developmental level. For example, a child may be physically developed but her language is delayed or a child is very alert with quick grasping power but he has difficulty in walking. Therefore, planning according to age, needs, interests and development has to provide for the different needs of children. This would allow young children to flourish in a stress-free, stimulating environment where flexibility in the programme caters to all children.

Meaning of contextualisation of ECCE/preschool curriculum

Apart from being age and developmentally appropriate, the programme must relate to the context of children's social and cultural lives. If the language or objects or stories or songs are all unfamiliar, it would be difficult to grab the interest of children in the classroom. Local language and simple language appeal to children. Concepts need to relate to real-life concrete experiences and then gradually move to abstract. For example, if you are in a rural area and you are talking about animals, talk about familiar animals first and then gradually show pictures of unfamiliar animals. This is called contextualized learning.

Similarly, if you are talking about plants and trees, talk about common and familiar plants. Talk and discuss about those vegetables, which the children eat and are familiar with, instead of talking about fruits like strawberries and cherries that children may not have seen. That ensures that teaching and learning become more meaningful and joyful.

One of the major principles in planning is to attend and address children's social realities and not expect responses to curricular content to emerge only in a specific direction. In fact, it is from the variety in children's understanding that we can sow seeds of appreciating differences.

Before going into details of planning such a ECCE curriculum which is age and developmentally appropriate, which is based on the needs, interests, abilities and social context of the children for whom it is planned, we need to considers how children learn and what are the principles of Curriculum planning.

How do Children learn

Children learn in different ways. Some learn by seeing, some by hearing, some by listening, some by doing. Giving your child chances to play with other children is a great way to develop skills needed to get on with others. The time between birth to six years are filled with the natural desire to learn and to make meaning of the world around them. There is a possibility of tremendous social, emotional, physical and cognitive development, and it can come and go before you know it. It is necessary and essential to provide high quality stimulating experiences, opportunities of a wide variety to kindle and sustain children's interest in their surroundings and joy in learning. For children, early learning is best through play, stories, conversations, songs,

rhythm, movement and opportunity to explore. Children learn best by actively engaging with the environment.

According to the developmental characteristics, all children are naturally motivated to learn and are capable of learning. Young children learn when they have opportunity to:

- play
- observe and express
- form familiar and new experiences
- participate, engage and communicate
- experiment and explore
- ask questions
- imitate, enact and perform
- feel physically and emotionally safe

Pedagogy in Preschool Classrooms

Pedagogy refers to the, set of instructional techniques and strategies, which enable learning to take place and provide opportunities for acquisition of knowledge, skills, attitudes, and dispositions within a particular social and material context. In the new 5+3+3+4 structure, a strong base of Early Childhood Care and Education (ECCE) from age 3 is included, which aims at promoting better overall learning, development, and well-being. The Foundational Stage shall consist of five years of flexible, multilevel, play/activity-based learning and the curriculum and pedagogy of ECCE.

Pedagogy used by the ECCE teachers to transact the ECCE curriculum must be such that children construct their learning by exploration, investigation, problem solving and critical thinking. It is important to keep in mind that there are three components of pedagogy in early childhood –play, interactions and the environment which must be addressed during curriculum transaction.

Pedagogical approaches to Principles of curriculum planning

The Early Childhood Care and Education Programme recognize that children learn best through play and learning by doing. Children of this age group are naturally curious to explore their immediate world using their senses. Anyone who has spent time observing young children will have noticed that they are in constant interaction with their environment, they want to touch everything they see. All that matters to children is Play, Play, and Play.

Furthermore children learn by doing, by experiencing and actively participating in the learning process. Thus the ECCE curriculum adopts a **play and activity based pedagogical approach** in which the learning processes are based on the needs, interests, abilities and social context of thechildren for whom it is planned. The methodology in this approach is largely based oncreating a stimulating learning environment for the child through planned activities/ taskswhich are joyful, and involve active thinking/learning by the child. Children are visualized asactive beings who construct their own knowledge and the process of teaching –learning isone of co-construction of knowledge, with adults as facilitators.

Play: Play is central to the child's well being and development. Children's spontaneous play provides opportunities for exploration, experimentation, manipulation and problem solving that are essential for constructing knowledge. Play contributes to the development of representational as well as abstract thought. Children engage in various kinds of play, such as physical play, language play, object play,pretend or dramatic play, constructive play, and games with rules. This further influences their motivation, disposition and approaches to learning. Developing positive approaches to learning goes a long way to determine later academic success in life. Adults must provide opportunities for children to explore, play and apply.

Play for a child is natural, spontaneous, enjoyable, rewarding and it is self initiated. While children do not engage in play for its learning outcomes, yet it has been shown that play prompts growth and development. In recent times play has been considered as a behavioural

disposition that occurs in describable and reproducible contexts and is manifested in a variety of observable behaviours. (Fein & Vandenberg,1983). There are majorly four types of play such as:

Functional Play: Children use their senses and muscles to explore and experiment with materials and learn how things go together. It satisfies children's need to be active and to explore.

Constructive Play: Children learn use of different materials, put things together based on a plan, develop and use strategies of reaching their goal.

Dramatic or Pretend Play: Children take on a role, pretend to be someone else and use real or pretend objects to play out a role. Children re-enact they have experienced or watched earlier, use words and gestures and show the role they are playing.

Games with Rules: Children gradually learn to play with others, control their behaviour and conform to a structure of preset rules. However the focus is more on enjoyment rather than winning or losing and cooperative and collaborative games in which children play with each other than against each other.

What is an activity?

Characteristics of a good activity are-

Age appropriate and developmentally appropriate.

fostering all domains of development and is appropriately planned.

The attention span of young children is 15-20 minutes; therefore, the duration of activities should be 20 minutes, with additional time allotted to winding up and initiation of the next activity. However, the programme should allow space and flexibility for need-based variations.

There should be a balance between structured and unstructured; active and quiet; outdoor and indoor; self-directed and adult-initiated learning opportunities and individual, small group and large group activities.

The learning experiences and activities should progress from simple to complex.

A wide range of individual and group experiences should be planned. These should be related to the child's environment, are enjoyable and challenging for children.

Part of a well planned series of experiences identified by the teacher for the child for a particular learning area/areas and not an isolated learning experience.

Where child is actively engaged physically and mentally.

Challenging enough for the child so as to help her/ him practice and apply her/his skills and knowledge in a variety of ways, across many situations.

Enables children to learn in a joyful and interesting way.

Keeping the above perspectives in mind the curriculum in early childhood is defined as an organized framework that includes **three components** (Bredekamp&Rosegrant, 1992, p. 10):

Context: This component is the setting, the environment in which stimulation and learning takes place.

Content: This component is the subject matter of the curriculum, the goals and objectives for children's learning.

Processes: This component is the pedagogy of learning, how ECCE teachers/caregivers interact with children, creates opportunities for learning and the ways in which children achieve the goals and objectives of the curriculum.

Each of these components, to be implemented well, requires knowledge of how children develop and learn at each stage of development; their individual strengths, interests, and needs; and the social and cultural contexts in which they live.

These dimensions of learning, known as developmentally appropriate practice, guide all aspects of teaching and learning. When ECCE teachers/Caregivers understand

developmentally appropriate practice, they can use this information to guide children's learning.

Conclusion

The First eight years play a key role in a child's life as they begin to absorb the world around them and develop. These experiences that children have early in their lives affect their physical, cognitive, emotional and social development. (Preschool Curriculum, NCERT 2019)

Pre-primary education is important since it introduces children to basic learning skills that are needed in primary schools and enhance their chances of success in the education system. (Kaul,2002)

From the above discussion on the curriculum and pedagogy in the pre-school classrooms, it may be concluded that the curriculum covers all those things designed to help children's learning and development. This calls for a child-centred approach that empowers the child and makes her/him an active participant in the learning process. In India, the contextual diversities should be an important consideration in providing for curriculum flexibility. Thus, the curriculum should help evolve an environment that is conducive for sociality, provides linguistic richness, and engages children mentally and physically amidst safety and gratification.

Preschool curriculum has to be constructed to suit the child's requirements in different contexts, and should be in tune with the age, needs, and abilities of the child; it requires the full involvement of the teacher, both in building it and in transacting it in the classroom. It is equally important to reiterate that the curriculum should not be the drab, meaningless, and often cruel schedule that passes for preschool education today, according to which children are forced to do things most inappropriate for their age and needs. The child has a natural desire to learn, but often what is being done ends up destroying not only the child's urge to learn more and more but also the child's self-confidence and self-worth, leading to poor academic performance and dropping out at a later stage. Many of the practices encountered at this stage are not only boring and meaningless routines for the child, but can even be damaging and dangerous.

Pedagogical processes to be used by the teachers to transact the curriculum in such a way that children construct their learning by exploration, investigation, problem-solving and critical thinking thus, achieving the specified early learning outcomes as envisioned by NEP2020. An outcome based Curriculum and pedagogy is the need of the hour which requires planning of the ECCE curriculum , pedagogical approaches suited to the planned ecce curruiculum, ecce teacher's training.

References

1. *Kaul, V. (2010). Early Childhood Education Programme. New Delhi: NCERT.*
2. *Ministry of Women and Child Development. (2013). National Curriculum Framework for ECCE, 2013. New Delhi: Government of India.*
3. *MWCD. (2013). Quality Standards for ECCE, Govt. of India, New Delhi. NCERT. (1996).*
4. *Minimum Specifications for Preschool. New Delhi. NCERT. (2005).*
5. *Muralidharan, R. Systems of Preschool Education in India. Delhi: Maxwell Press.*
6. *Muralidharan, R., & Banerjee, U. (1969). A Guide for Nursery School Teachers. New Delhi: NCERT.*
7. *National Council of Educational Research and Training. (2006). Position Paper of the National Focus Group on Early Childhood Education. New Delhi: NCERT.*
8. *Preschool Curriculum. New Delhi. NCERT. (2019)*
9. *Soni, R. &Sangai, S. (2014). Every Child Matters. New Delhi: NCERT.*
10. *Soni, R. (2012). Little Steps: A Manual for Pre-School Teachers. New Delhi: NCERT.*
11. *Soni, R. (2009). Trainer's Handbook in Early Childhood Care and Education. New Delhi: NCERT.*
12. *Swaminathan, M. and Daniel, P. (2004). Play Activities for Child Development: A Guide to Preschool Teachers. New Delhi: National Book Trust.*

Good Governance and Supreme Audit Institutions of India

Dr. Supriya Sharma
Post-Doctoral Fellow, Dept. of Public Administration,University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

SAIs are responsible for external audit of executive and reports directly to the Parliament. It strengthens governance by ensuring the accountability and enhancing transparency in operations of government by bringing into light the extravagance and misappropriation of financial resources by the executive authority. Supreme Audit Institutions are playing vital role of holding public sector institutions accountable, transparent and to be open while performing their respective assigned task. Therefore Supreme Audit Institutions themselves need to stand as an exemplary public sector oversight bodies. They need to follow high standards of stewardship which they demand from other institutions. SAIs need to ensure good governance within their respective organisations. In this backdrop this paper will examine that how Supreme Audit Institution of India is complying principles of good governance in their institutional management for performance of its assigned mandate.

Keywords : *Supreme Audit Institutions, Good Governance, Peer Review, Internal Control, Participation.*

Today Parliaments in the world have developed various institutions and mechanisms for ensuring the accountability and transparency in the functioning of executive. One such institution is that of Public Auditor which is generally referred as "Supreme Audit Institution (SAI)". SAIs are responsible for external audit of executive and reports directly to the Parliament. Most of the SAIs' are headed by the Auditor General. Supreme Audit Institution is the highest audit body of their respective country.

Accountability and Transparency are the two cardinal principles of good governance[1]. Observance of these two cardinal principles largely depends on the role played by the SAIs'. Audit is the powerful tool of good governance.[2] It strengthens governance by ensuring the accountability and enhancing transparency in operations of government by bringing into light the extravagance and misappropriation of financial resources by the executive authority.

Supreme Audit Institutions are providing oversight, insight and foresight services.[3] Through such services SAI's are playing a significant role in safeguarding the interest of various stakeholders thus facilitating good governance .Through oversight services SAIs' evaluates whether government entities are spending for the intended purpose and complying with the mandatory rules and regulations. SAIs' provides insight to decision makers by assessing the effectiveness, efficiency and economy of the programmes and policies implemented by the various government institutions. Under the foresight services falls the risk based audit approach. Through risk based audit SAIs' provides useful and relevant information to the respective organisations for managing its risk, such services help in decision making and avoiding any crises and financial losses. Supreme Audit Institutions are playing vital role of holding public sector institutions accountable, transparent and to be open while performing their respective

assigned task. Therefore Supreme Audit Institutions themselves need to stand as an exemplary public sector oversight bodies. They need to follow high standards of stewardship which they demand from other institutions .According to principle 9 of the "Value and Benefits of Supreme Audit Institutions "(set of 12 principles ratified by International Organisation of Supreme Audit Institutions) SAIs need to ensure good governance within their respective organisations.

Principle 9: Ensuring Good Governance of SAIs.[4]

- SAIs should adopt and comply with good governance principles and report appropriately.
- SAIs should periodically submit their performance to independent review, for example peer review.
- SAIs should have an appropriate organizational managements and support structure that will give effect to good governance processes and support sound internal control management practices

In this backdrop this paper will examine that how Supreme Audit Institution of India is complying with above mentioned principles in their institutional management for performance of its assigned mandate.

Efficiency

Supreme Audit Institution of India is contributing for bringing transparency and accountability in the acts of National/State/Local Government. The purpose is to track and to catch the acts of corruption in the governance. In the recent past few of the audit reports of Supreme Audit Institution of India have detected the big scams like Common Wealth Games 2010, Coalgate and 2G Scam.

Now a day's focus of audit has undergone a major change because of massive financial flow for socio economic activities, the attention has shifted into the areas of performance audit.[5] Supreme Audit Institution of India is performing performance audit also known as Value For Money (VFM) Audit. This audit analyses the economy, operational efficiency and the general effectiveness of government programs in achieving their objectives. Economy is concerned with minimizing the monetary cost of inputs. Efficiency is concerned with the relationship between the output in terms of goods, services or other results and the resources used to produce them. Supreme Audit Institution of India has carried out comprehensive performance evaluation of major flagship programmes of the government.

Effectiveness

On the basis of observations made by Supreme Audit Institution of India in its audit report some of the auditee institution has made changes in their polices, law, rules and procedures for example -Under the provisions of section 143 (b) of the Companies Act Supreme Audit Institutions of India conducted supplementary audit of government companies and corporations . As an outcome of supplementary audit 147 companies and corporations has made corrections in their accounts in 2019-2020 [6]. Power Finance Corporation Ltd approved new "Comprehensive Grading Framework For Private Sector Projects". It is an appraisal methodology which has ultimately tighten the credit standards and has introduced objective parameters for comprehensive evaluation of the projects[7]. Supreme Audit Institution of India has longer association with United Nation and its agencies and with International Organisation of Supreme Audit Institution and Asian Organisation of Supreme Audit Institutions. It is because of the quality services provided by Supreme Audit Institution of India to its International client which has made it to secure largest portfolio in UNO for auditing in 2015.

Quality services which Supreme Audit Institution of India is providing to United Nation and its agencies are due to excellent professional skills of its staff members. Staff members are

holding professional degrees in the field of Chartered Accountancy, Cost and Work Accountancy, Certified Information System Auditor (CISA), Certified Information Security Manager (CISM).

Information Technology based audit is the strength of Supreme Audit Institution of India. International Centre for Information System and Audit of Supreme Audit Institution of India possess recognition in International community of Supreme Audit Institution. Courses which Institution is providing to auditors of other Supreme Audit Institution are highly appreciable. It is the proficiency in information technology based audit the information system audit of International Thermal Nuclear Experiment Reactive (ITER) was outsourced from Supreme Audit Institution of India.

The expenses of Indian Audit and Account department except the expenditure of C&AG's office and UN Audit is voted. The expenses of C&AG office and UN audit are charged on the consolidated fund of India and are not subject to vote in Parliament thus gives financial autonomy. Budget of the Indian Audit and Account department like any other department or ministry of government of India is approved by the Finance Ministry. Supreme Audit Institution of India follows the Practice of prior consultation which is followed by a formal meeting of the Budget officer of Indian Audit and Account Department will secretary of Expenditure division of ministry of Finance for budget approval.

According to the department there has not been an occasion where budgetary cut has been imposed unilaterally by the Ministry Finance. More over Supreme Audit Institution of India has been a very conservative and disciplined organisation in financial matters and its self has imposed budgetary curbs on the basis of Government of India orders.

Enhancing Participation

Now a day's Supreme Audit Institution of India for enhancing citizen participation in audit. It is involving Civil Society and Public for providing input for audit for example- In July, 2009, a conference on environment audit was organised, and purpose was identification of significant areas of enquiry related to major environmental issues in India. Number of experts from Civil Society, Government & Corporate representatives participated in the conference. An International Conference on Environment Audit was organised in March, 2010, water pollution problems were the basic concern of the conference. Representatives from International bodies and Civil Societies participated in the conference. After the conference Supreme Audit Institution of India sought suggestions from common citizens of India on water pollution problems faced by them. Through Email and letters Supreme Audit Institution of India received over 500 responses. Keeping these responses in view Supreme Audit Institution of India framed audit objectives and questions for the performance audit on water pollution. This audit was carried out in 2010-2011. Such practise of citizen engagement is quiet helpful to auditors in identification of relevant issues for audit at the same time they can follow relevant audit methodology.[8]

As there is a huge devolution of central funds for various socio-economic programmes/schemes at local level (Rural\Urban) demand for social audit has grown. Though Supreme Audit Institution of India posses expert human resources but it cannot do extensive and detailed audit required for ensuring complete grassroots level accountability while recognizing this limitation Supreme Audit Institution of India has made effort to brought Social Audit into the main stream of auditing .Social Audit give strength to Supreme Audit Institution of India Audit. Through this Supreme Audit Institution of India has" overcome the limitations for their perceptions and verification of delivery of the programs, including the existence of the community assets and their actual utilisations."[9]

Enhancing Transparency

Article 151 of the constitution provides that the Comptroller and Auditor General of India will prepare and submit reports to the President or the Governor for laying in the Parliament or the State Legislature as the case. Audit report is the final outcome of the audit process. For attracting and sensitising public, media and academic fraternity Supreme Audit Institution of India reports are converted into small booklets which are well indexed; these booklets are referred as "Noddy Books".[10] These booklets are freely distributed to media, colleges & civil societies. The aim is to mould public opinion for critical appreciation of socio-economic schemes implemented by the central and state governments. Supreme Audit Institution of India keeps the track of public opinion on its activities through monitoring information from publications, articles and the media. On its website Supreme Audit Institution of India has provided feed back forms to encourage the public to give their comments & feedback on Supreme Audit Institution of India activities. Supreme Audit Institution of India is not always critical to functioning of auditor organisation. It brings into notice the good and innovative practices of auditee organisations.

Strategy for improving communication and relation with stakeholders

Supreme Audit Institution of India has incorporated "Goal: 3 Improving communication with stake holders and ensuring higher visibility" in its strategic plan 2020.[11] The goal includes following measures for improving communication with all the stake holders-

1. For wider dissemination of audit reports Supreme Audit Institution of India is dependent on the print & tv media, However, it has been realised that media often pick-up only those audit reports or issues within an audit reports which makes good/sensational news in their view. This leads to skewed focus on certain issues in audit reports. To address this issue, Supreme Audit Institution of India is planning for buying space in print/tv media, so that audit reports are disseminated in structured and focused manner for round the year.
2. Union and State Legislatures are the primary stakeholders for the SAIs'. Supreme Audit Institution of India has realised that there is a need of separate parliamentary unit for maintaining interaction providing information and feed back to Public Account Committee Members/ Members of Union/ Sate legislature on request.
3. For attracting citizens towards the products of Institution, Supreme Audit Institution of India has planned to standardise the letterheads, visiting cards, presentations, templates etc.
4. CAG India came out with some value-added products which aimed to give an added support to various government departments, examples of such products are: study report on the state of preparedness of the Common Wealth Games in July 2009. The purpose was to provide the government with assessment of statges of completion of different projects by various agencies. Study report on preparedness for South Asian Federation (SAF) Games in Uttarakhand was another value added product of Supreme Audit Institution of India. It has also published Compendium on Police Modernisation which is very beneficial for executive to plan their future strategies across the states in the country. The purpose of such reports was improving and sustaining good governance.

Supreme Audit Institution of India is considering to holding a series of "Good Practice Seminars all Over India". Topics for Good Practice Seminar series could be procurement, public-private

partnerships, research and innovation, consultancy, performance measurement, project measurement, regulating public service delivery etc. According to Supreme Audit Institution of India, such seminars would help in increasing awareness among stakeholders on important governance issues, sensitising executive/departments to prevalent rules and regulations.

Internal control and independent review

Supreme Audit Institutions are encouraging the auditee organizations to have sound internal control mechanisms for continuous improvement in their processes, product and outcomes. This will help in self-assessment of quality of procedures .Supreme Audit Institutions need to practice what they preach therefore Supreme Audit Institution of India has developed sound system of internal audit at regular interval to checks the quality of audit conducted and comments specifically on this aspects in its report so that suitable measures may be initiated to improve the quality of work where necessary[12].

The field offices and the different branches of the Supreme Audit Institutions in India are inspected periodically by the Principal Director of Inspection .The Inspection aimed at pointing out deviations without authority and locating defective or deficient procedures.

Supreme Audit Institution of India to meet the growing demand for high quality assurance and greater transparency in reviewing its own functioning has introduced 'Peer Review' "Peer Review" means review of work done by a person of similar standing. Peer reviews are used as a quality assurance tool to help SAIs carry out their work in compliance with professional standards and to help them to enhance their practices and procedures .

During the past decade, Supreme Audit Institution of India has been the subject of two external peer reviews. In 2011 an International Peer Review team reviewed the performance audit functions of Supreme Audit Institution of India. The External peer review team was led by the Australian National Audit office .This International Peer Review focuses on the performance audit function. Objective of peer review was "to assess the extent to which the performance audit functions of Supreme Audit Institution of India adheres to applicable standards of professional practice and to identify opportunities for improvement"**.**

The International Peer Review Identify Following as Good Practices of Supreme Audit Institution of India.[13]

(1) Supreme Audit Institution of India Strategic planning focusing on organizational goals

(2) Establishment of Audit Advisory Board which comprises of highly qualified individual. This board use to advise the C&AG on matters relating to audit including potential audit topics and focus areas.

(3) Use of small colour booklets to communicate performance audit messages to client is appreciated by peer review.

Ethical Values

Ethical values in employees is one of the mandatory condition for ensuring good governance within the institutional management. Ethical Values must permeate in entire operations of the organisation from bottom to top managements.

The Auditor is expected to act in ethical manner. Ethics are defined as the systematic study of behaviour based on moral principles philosophical choices and values of right and wrong conduct. The Office of the Comptroller and Auditor General of India, New Delhi has adopted as code of ethics for Indian Audit and Account Department based on the international best practices and also incorporates the values and principles contained in the central civil service (conduct Rules 1964) and broad principles contained in ISSAI 30 (International Organization Of Supreme Audit Institutions Standards for supreme Audit Institution). Maintaining Integrity, Independence and

objectivity, confidentiality and competence, respect for Legislature and/or the executive authority, the general public and the audited entities, independence from the legislature and the executive, objectivity and impartiality in all work conducted by auditors particularly in their reports, maintain political neutrality , avoid any possible conflict of interest by refusing gifts or gratuities which could independence and integrity influence are the major ethical codes which auditors need to follow. This is how Supreme Audit Institution of India is assuring good governance.

Conclusion

SAI's are one of the pillars of good governance in democracy. It is essential that public be made more aware about their functions, role and performance in the governance of the country. As external auditors Supreme Audit Institution of India is playing a vital role in ensuring financial accountability of State/National Governments to their respective Legislature. This oversight role of Supreme Audit Institution of India is essential for the inclusive and sustainable economic growth of the nation.

Traditional role of external oversight of government's financial account is not the only avenue through which Supreme Audit Institution of India can contribute in delivery of good governance. It can go be beyond the traditional oversight role and can link its work with policy making and policy implementation. There is a need to tap this potential of Supreme Audit Institution of India which could provide deeper insight in improving the functioning of various policies and programmes. By doing this Supreme Audit Institution of India can aid governments in adapting to future trend and risks, as it has done in recent past through its reports on Common Wealth Games, SAF Games and through Compendium on Police Modernisation.

Supreme Audit Institution of India is managing its organizational practices and procedures very efficiently and effectively and have moved long way in recent years. As a leading public oversight body Supreme Audit Institution of India is committed for ensuring good governance in Indian democratic system .However it is to be remember that good governance is not an end rather it is the mandatory condition which provides basis for effective and maximum use of powers of Supreme Audit Institution .

References

1. *ISAS special report No.26, 14th July, 2015. httpp//www.isas.nus.edu.sg*
2. *Ibid.*
3. *The role of Supreme Audit Institutions in promoting Good Governance,httpp//www.naogov.com*
4. *ISAAI 12: The Value and Benefits of Supreme Audit Institution –making difference to the lives of citizen,2010.pg12,httpp//. www.issai.org.*
5. *Role of Accountability Institutions in a Democracy, India Today Conclave New Delhi – 15th March, 2013, httpp.// www.cag.gov.ini/CAG, speech.*
6. *Mathur Kartikaye "Performance Audit of Water Pollution in India" Journal of Government Audit and Accounts, Issue 1,November 2013.httpp.//www.cag.gov.in*
7. *Role of Accountability Institutions in a Democracy, India Today Conclave New Delhi – 15th March, 2013, httpp//. www.cag,gov/CAG, speech*
8. *Strategic Plan – 2012 for IAAD, page, 24. , httpp//. www.cag,gov.in*
9. *Ibid.*
10. *Das Dibeyndu, Role of CAG in meeting challenges of Good Governance, available at www.coursehex.com*
11. *Strategic Plan-2012 for IAAD, pg. 24 httpp//. www.cag.gov.in*
12. *Audit Quality Management Framework- No 172 Audit (AP)/37 2008, June 4, 2009 pg. 22.httpp://www.cag.gov.in*
13. *International Peer Review of the Supreme Audit Institution of India, pg-40.httpp://www.cag.gov.in*

Delhi Sultans and Peasants of North India [1300-1526]

Bindu Rajput
Research Scholar, Department of History, University of Jammu

shodhshree@gmail.com

Abstract

Peasants or Raiyat of Sultanate period can be categorized into three parts: 1. village servant who had small holding; 2. Raiyat with its own land as Malik-i-Zamin; 3. Khut, muqaddam and choudharies as landed aristocrats. We have very little information about the economic condition of the peasants under the Sultans of Delhi. The historians of the period were more interested in the events at the court than in the lives of ordinary people. From the economic standpoint, however, the most important section of the village population comprised the cultivators who are collectively referred to as Raiyat. A change in dynasty generally did not brought any change in the lives of peasants during the Sultanate period. The administration of the early Turkish Sultans in India rested on the foundation of two elements, namely the iqta [assignment of land revenue] and kharaj [land revenue]. The idea of paying a share of produce to the ruler was no novelty to the Indian subjects of the Sultans of Delhi. The really important question for the new rulers was the selection of a competent and trustworthy agency for the collection of the kharaj. These include the representatives which comprised the village headmen, the khots, the muqaddams and choudharies, who collected the revenue from the peasants on behalf of state for which they were given special concessions. Agrarian system of the Sultanate deals not only with land revenue administration but also with agrarian economy and social structure of the state. In India during the Sultanate period, the state was highly centralized and despotic because all the powers were held by rulers and army was the basis of power. The state was neither theocratic nor ethnocentric because while formulating the state policies shara was not the core concern of the Sultan rather his policies were based upon political considerations, welfare of state and ruler's interest and the state was not based on social equality but it was based on hierarchy. The ulemas were the authoritative interpreters of Islamic law. Some Sultans consulted them even on matters of state policy while few Sultans resisted their interference in state policy. Another important check on the royal power was the privileged position of the nobles. The paper will present the Land policy of the Sultans, agrarian and non-agrarian taxes and cesses on the peasants and also the socio-economic life of the peasants.

Keywords: *Peasants, Cultivation, Sultanate, Revenue.*

Land was in abundance in India throughout ancient and medieval periods. The Sultans of Delhi received huge amount of land revenue from peasants. In the modern works of W.H Moreland, A.L Srivastava entitled *The Agrarian System of Moslem India; & The Sultanate of Delhi* respectively, the economic conditions of the peasants have been overlooked. These works are mainly concerned with the assessment, demand and realization of revenue by the state functionaries. The present paper focus on the land policies of the Sultans, methods of revenue collection, various agrarian and non-agrarian taxes levied on the peasants and also the socio-economic life of the peasants under the Sultans of Delhi.

There are different views of authors regarding the peasants of North India. W.H. Moreland finds out that peasants got very little amount of their production as larger share went to the state. According to him, their condition varied from peasant to peasant. Irfan Habib made differentiation among the peasants on economic basis as khots and muqaddams. He said, Khots and muqaddams were peasants, but peasants standing on the borderland of rural aristocracy. When prosperous, they could imitate the ways of knight when hard-pressed; they would sink to the level of ordinary cultivators and even wage-earners. K.M Ashraf said that the economic condition of the peasants of Sultanate period was very miserable and they lived constantly in a state of semi-starvation. Barani portrays the peasants as an impoverished mass of helpless people without arms or organization. But Haji Dabir indicates that the peasants were armed and organized under their leaders. The commentators on Dharma Shastras and other writers are agreed about the harrowing poverty and wretched life of the mass of toiling peasantry. The administration of Delhi Sultanate was based on the working of different social groups such as nobles, ulema, slaves, peasants etc. Nobles: Nobles form the most influential social group of the Delhi Sultanate. In the early period of the Sultanate the *umara* or nobles were its greatest, if not its only prop. Immediately below his monarch came his nobles. They usually supported him in power but at time usurped his functions, and if a ruling dynasty grew weak and effete, they stepped into its shoes, and founded a new ruling dynasty of their own. A noble usually began his life as a slave or a retainer of the sultan or of another noble and proceeded on a graduated scale of promotion until a suitable opportunity brought to him the dignities of an office, and rank of an *Amir* (Ashraf, 1970:84). The significance of the nobles was duly recognized by Sultan Shamsuddin Iltutmish, who may be said to be the first to consolidate the possessions of his predecessors as well as his own considerable conquests. The establishment of the kingdom had only been possible because of the support and the devotion of these chiefs who came from the same class as other monarchs of the slave dynasty, and had no particular reason to subordinate themselves like other common subjects of the state to the will of the Sultan.

The *shamsi* nobles got huge opportunities to express their talents. Their organizing capacity and experience in art of war not only brought the Sultanate of Delhi into being but strengthened its foundations also. Barani says about Balban that during his khanate every *wilayat* which was assigned to him became, as a result of his efforts, prosperous and populous (Nizami, 1961:145).

In personal prowess and attainments in the art of war, these nobles had established their reputation far and wide. Men like Malik Kabir Khan, Muhammad kishlu Khan, Malik Alauddin Kashli Khan and others were endowed with remarkable qualities of head and heart and their fame had crossed the Indian borders.

The nobles drew inspiration in their social life from the imperial court and tried to emulate the Sultan in their social and cultural activities. In certain respects, their assemblies were miniature courts of Sultan and their generosity which often exceeded their means, sometimes evoked the ruler's criticism.

Most of the nobles were great patrons of art and letters and were known for their urbanity and culture. Some of the most distinguished poets of medieval India like Amir khusrau and Amir Hasan Sijzi, started their literary careers in the service of the nobles.

The highest among the nobles bore the title of khan which signified the uppermost grade of nobility. As a special distinction some of them were given the title of *ulugh khan-i-azam* (Ashraf, 1970:85). Next in the rank came the title of Malik, and lastly that of Amir.

The official status of a noble was determined in relation to what were called the *shughl,* the *khitab and* the *Aqta* or their sinecures, their titles of honour, and the assignments of revenue

respectively. There was no fixed rule for the award of offices at court or the distribution of titles of honour. All of them, however, had large revenue assignments to maintain them and their huge establishments in lieu of their services.

Ulemas: After the nobles, the ulema *(ahl-i-qalam)*- the Turkish intellectuals and theologians exercised a great influence on the policies and functions of the state; together with the nobility, they constituted the first two estates of the Turkish society, styled as the umara (Mehta, 1980:287). As a rule, they had undergone a course of training in Islamic law, logic, Arabic letters and the religious literature of Islam in general, namely *Tafsir, Hadis, Kalam* etc. Although the Quran emphasizes their position in a general way as a separate class of Muslims, inviting people to the path of goodness, no special provision was made for them in the Holy book (Ashraf, 1970:97). They interpreted the Islamic law and regarded themselves as the spiritual guardians of the Islamic state. They manned the judicial and ecclesiastical services (Nizami, 1961:156) and held an exclusive control over the mosques, religious establishments and educational institutions. They enjoyed respect and prestige among the Turkish masses and because of their popular appeal, demanded attention of the Sultan and the nobility alike.

Tradition classified Ulama into two categories- the *ulama-i-akharat* and the *ulama-i-duniya*. The basis of this division was the difference of their attitude towards worldly affairs. The *ulama-i-akharat* led an abstemious life of pious devotion to religious learning and eschewed entanglement in materialistic pursuits and political affairs. The *ulama-i-duniya,* on the other hand, were totally mundane in their outlook. They aspired for wealth and worldly prestige and didn't hesitate in compromising their conscience if it served their purpose.

The highest ambition of the ulama is the office of *sadr-i-jahan*. Beyond that they dare not aspire for anything (Nizami, 1961:158). Though the offices entrusted to the ulama were not hereditary, some tradition seems to have developed due to which certain families came to be known as families of *qazis*, *muftis* and *khatibs.* Minhaj informs us that I the 14th regnal year of Nasiruddin Mahmud, the *sheikh-ul-Islam*, the *qazi*, the *Qarabak*, *Amir-i-Hazib* and *Imam* died and all the offices were conferred upon their sons (Raverty, 1970:713).

The influence of the ulama on the politics of Delhi Sultanate became very pronounced from the time of Bahram shah. Minhaj-us-Siraj, who himself belonged to this class of theologian-politicians, has refrained from giving any details about the activities of ulama, probably because the record was not very complimentary, but a few anecdotes that are found in contemporary works- both political and non-political show that the ulama had lost their religious dignity and moral prestige and were wallowing in dirty water of politics (Nizami, 1961:173).

Slaves: In our enumeration of Turkish social classes, slaves were the familiar feature of every respectable Turkish home. The position of different types of slaves- one born in the household, one purchased, one acquired and one inherited (Chandra, 2012:170). The most important section of the domestics comprised of male and female slaves. Slaves were imported into India from many countries; those of Turkistan and India had acquired a classical reputation all over the East. Among the slaves of Indian origin, Ibn-i-Battuta writes that those of Assam were especially valued because of their strong physique and their powers of endurance, their price being many times that of slaves of other nationalities. A special class of slaves was employed for the care of the female inmates of the *haram*. The later were usually bought in childhood and castrated.

Apart from the slave girls of India, female slaves were also imported from China and Turkistan. Female slaves were of two kinds, those employed for domestic and menial work, and others who

were bought for company and pleasure. The former, wanting in education and skill, and bought expressly for rough domestic work, were often subjected to all sorts of indignities; the later had a more honorable and sometimes even a dominating position in household (Ashraf, 1970:103).

Slaves had no defined status or rights under Turkish rule. Since a slave was usually a convert to Islam, he possessed the same rights as any other member of Turkish society which is still conspicuous for a certain amount of feeling of brotherhood and equality. Thus, his moral claims could never be denied. If he was originally a Hindu, and probably of a lower caste, the social change was decidedly for the better. In practice, the position of a slave was very different. He was usually a prisoner of war, and according to the military usage of the age, his life was at the mercy of his captor, who had full power of killing him or of otherwise disposing of him.

Slave raiding was widely practiced in west and central Asia, the ghazis being specially used to capture and then convert slaves from central Asia. The early Turkish rulers, such as Qutbuddin Aibak, continued this practice in India. Thus, when he invaded Gujarat in 1195, he captured and enslaved 20,000 persons and another 50,000 during his raid of Kalinjar. Iltutmish's period witnessed the rise of forty shamsi slaves known as Turkan-i-Chihalgani. They bore the title of khan (Barani, 1871:109). The sale and purchase of slaves was such a routine matter that Barani mentions the price of slave girls and handsome boys along with cattle. During the reign of Firoz Shah, 1,80,000 slaves were collected. While some of them were trained for religious studies and others as artisans.

In order to cater the needs of slaves, the Sultan Firoz Shah created an exclusive department, *Sahib-i-Diwan-i-Bandahgan* under a *Majumdar*, with other officers called *Chawush-i-Ghuri* and a deputy *Chawush-i-Ghuri* besides a distinct *diwan*.

Slave is a term of closest approximation in order to explain the nature of bondage in the Delhi Sultanate. Slaves are generally referred to as *bandagan, ghilman, burdah, kaniz, laundi* and *mamluk* in the sources of the Delhi Sultanate.

Slaves being the most reliable group among the servicemen were employed for espionage by the Sultans. Ibn-i-Batutah frequently mentions the royal slave singers and dancers. These artists performed in the weddings of the nobles. The slaves provided the large, controlled supply of labour. With reasonably priced male and female slaves available for work and training, they became a convenience for the master craftsmen and merchants, as well as royal and aristocratic masters.

Slaves were always given financial benefits by their rich masters. They were also given regular salaries and stipends. At the time of Iltutmish's death, we find most of his slaves appointed on *iqtas* or the land revenue assignments. Keeping in view the economic role of the slaves the Delhi Sultanate cannot be termed as a slave society but can be called as society with slaves or a slave holding society.

India had predominantly been an agricultural country; hence the main source of income was land. Agriculture was carried on by peasants living in villages. Each village is said to contain 200-300 men. Cultivation was based on individual peasant farming, and the size of land cultivated by them varied greatly, from the large holdings of the *khots* or headmen, to the petty plots of the *balahars,* or village menials. There was lack of any description of the tools employed by the peasants. But perhaps a smaller quantity of iron was used and wells were probably the major source of artificial irrigation in most areas. The contemporary sources are almost silent on the subject of rural society. Some sources of the 9^{th} -10^{th} C provide us background and also enable us to understand better the changes and continuities in village life under the Sultans of Delhi. From the writings of 12^{th} C Jain writer, Hemchandra, we came to know about different categories of village folk i.e. 1. The produce

sharing peasants or share croppers for whom the words *karshaks or ardhikas* [receivers of half share] are used; 2. Plough-shares and field labourers for whom various words such as *halavakaka, kinasa* and even *karshak* are used. These two sections constituted the lowest most dependent peasantry. The word *karshak* was a generic word for the lower peasantry which formed the largest group in the villages. 3. Other section is of free peasants for whom the word owner-proprietor may be appropriate. In later times, they were called *malik-i-zamin* [owners of land] or *khud-kasht* [owner cultivator]. They were entitled to inherit the land they claimed by descent. They also owned their huts or houses, and had the use of the village commons.

With the establishment of Sultanate, the older systems were not immediately eliminated but continued to function though with the super imposition of the demands of a new ruling class. Thus, the system which Turkish conquerors brought with them from Afghanistan to India was substantially identical with the system which they found in operation. They came prepared to claim a share of the produce of the soil and they found the peasants accustomed to pay a share to whoever might be in a position to take it: they were prepared to assess either by sharing or by measurement, and they found that both methods were known in the country; and there can have been no great obstacle to a fusion of two systems so nearly identical.

It is not possible to draw a firm picture of the system of agrarian relations in the Sultanate period. The evidence is so fragmentary and we can only present such evidence as we have for the various aspects of the system. When Iltutmish became the sovereign, the sultan and his *muqtis* [governor] made use of the existing political structure for quite some time, imposing tribute on the *Rais* and *Ranas* while expecting them to collect taxes as they did before. As a result, the immediate control of the older ruling class over the land and the peasantry continued. Even when the authority of the Sultanate over the country was asserted more vigorously, and an arbitrary tribute was replaced by a land tax assessed on the peasants, the older aristocracy still had a place. The governor could initially demand the land revenue from the Rana; so presumably the Rana normally collected the tax from the peasantry. Upon Rana's inability to pay the amount demanded, the governor would enforce a direct collection from village headmen and *chaudhuries*. From the point of view of the Sultanate ruling class, the existence of an intermediary class in the countryside was essential for its own appropriation of a large amount of agricultural surplus in the form of land revenue. It would seem that there was little question of the peasants claiming property rights over any parcel of land. Land was abundant, and the peasant could normally put up with a denial of his rights over the land he tilled. What he feared, on the contrary, was a claim of the superior classes over his crop, and more still over his person. Irfan Habib explained this by giving example; a village was assigned to a trooper called Ziauddin, the sovereign having given the right over its poll tax *[jiziya]* and the tax on cultivation *[ziraat],* so that he might spend the income on himself and his military equipment. The peasants, however, fled from the assigned village and settled in villages of which the *qazis* of Thaneswar were the *maliks* or proprietors, Ziauddin insisted that the emigrants be returned to his village. The *Qazis* retorted that the peasants were free men by birth and could not be forced to go back against their will. This drew the explanation that no one was claiming ownership of their persons. What was being pressed was the right to collect the poll tax *[jiziya]* from the peasants. As for the *kharaj* or land tax, these peasants had, by abandoning the land on which the tax was levied *[arz-i-kharji]* (Choudhary, 1984:54) reduced the revenue of that village. Their residence in the village was thus a necessary condition for the collection of land tax; and for this reason, too, they were not to be enticed away by the other *maliks* whose duty now was to return them to their original village.

The peasants were thus not master's of their domicile. But they had certain things that they could own, such as seed, cattle and implements. They also sold their produce in order to pay the land revenue in cash. These were sufficient factors for the existence or emergence of economic differentiation within the peasantry.

The highest stratums among the peasants were designated as *khots* and *muqaddams*. They are alleged to have claimed exemption from paying the three major taxes, viz. land revenue *[kharaj],* house tax *[ghari],* and the cattle tax *[charai]*(Barani, 1871:182). Furthermore, they levied a cess of their own *[qismat-i-khoti]* on the villagers. As a result, some of the *khots* became prosperous enough to ride horses, wear fine cloths and even eat betel leaf. Alauddin prohibited the khots from levying any cess on peasantry and forced them to pay the full land tax on their cultivated lands and also *ghari* and *charai.* As a result, the *khots* are said to have become so poor that no trace of gold or silver or money remained in their houses and their wives were compelled to work as maidservants for wages. The condition of peasants was never as wretched as during the oppressive rule of Alauddin khalji. While abolishing the rights of *khots* and *muqaddams* he gave one rule for the payment of land revenue applicable to all and the heaviest land revenue was not to fall upon the poorest. (Barani, 1871:143). The net result of these measures was universal poverty and degradation among the peasantry. Their standard of living was reduced to the lowest level. The entire surplus which was taken from them was spent on the maintenance of a large standing army. Above all, they had lost their freedom and were governed by the officials who had no respect for their culture. Ghiyasuddin Tughluq modified these stern measures to some extent: though still forbidding the *khots* from levying any cess upon peasants, he exempted them from paying tax on their own cultivation and cattle. The consideration of the welfare of the peasants was uppermost in the mind of Ghiyasuddin Tughluq. His orders were not to treat the peasants in such a way that wealth had tempted them to raise the standards of rebellion; nor were they to be made extremely poor, because in that case they would give up cultivation. The steam-roller reforms of Alauddin khalji had paralyzed the economic life of the agriculturists. The burden of taxation had been so heavy that all the incentives to work had dried up, and they were no longer interested in improving or expanding cultivation. The advantages they had been enjoying for centuries had disappeared, leaving them in the grip of penury and poverty. To lighten the heavy load of the peasants, Ghiyasuddin revoke Alauddin's rule of measurement and the yield per *biswa*, and substituted for it crop-sharing. It was advantageous in two ways: First, it ensured to the producer the benefit accruing from improved cultivation, and secondly, it made allowances for complete or partial failure of crops. Instructions were issued to the officers to see that cultivation increased from year to year, and that the government revenue was also proportionately enhanced. Increased in the incidence of taxation was to be gradual, and such that it did not affect the prosperity of the peasant and did not reduce its interest in its holdings. The sultan repeatedly warned the revenue officials against increase in taxation, which rendered it difficult for the peasants to cultivate his holdings or bring virgin lands under the plough. He laid down rules of conduct for governors regarding the realization of the land revenue, and took all possible precautions to save the peasant from their high-handedness and oppression.

Sultan Mohammad bin Tughluq increased taxation in the Doab which was accompanied by famine and rise of prices (Barani, 1871:238). He thought to get ten or five percent more land revenue from fertile land in the Doab. The land revenue was collected so rigorously that the *raiyats* were impoverished and reduced to beggary. Those who were rich and had property became rebels; the lands were ruined, cultivation was entirely arrested. The decline of cultivation and the distress of the raiyats in the

doab produce a fatal famine in Delhi and its environs and throughout the doab. There was deficiency of rain, so the famine became general. The revenue collectors oppressed the peasantry for the revenue and in retaliation the distressed peasants revolted in doab. When Sultan came to know about this, he adopted several measures for the welfare of peasants. He gave considerable thought to the problem of agrarian distress and the short-fall in agriculture after the famine years. His main attempt was to restore agriculture to normal conditions. He advanced loan i.e. *sondhar* to the peasants for buying seeds, cattle and for digging canals. For extending and improving cultivation in the doab, he set up a separate department called *diwan-i-amir-koh* and officials were appointed in it. (Ibn Baututa, 1976:164) Sultan Firoz shah waived off the loans that were given to the peasants by Mohammad Tughluq at the time of drought (Afif, 1871:288). He issued strict instructions to the officers not to harass the peasants. There is little doubt that under the beneficent rule of Sultan Firoz, the condition of the people improved. No demand in excess of the regular government dues was to be made, and the officers who made any such exaction were to make full reparations. Such rules were made that the raiyats grew rich and were satisfied, their homes were replete with grain, property, horses and furniture, everyone had plenty of gold and silver and no house was wanting in excellent beds and couches (Afif, 1871:290). There is no doubt that under the comparatively mild rule of Firoz, the peasants were relatively prosperous. Sikandar lodhi greatly promoted the economic prosperity of the people. He introduced '*Gaz-i-sikandari'* of 39 digits or 32 inches for the measurement of agricultural land. A passage from 'Abdullahs Tarikh-i-Daudi' is worth quoting. One of the wonders of the reign of sultan Ibrahim was that corn and cloth and all commodities became so cheap that they were never so at any other time. Although during the reign of sultan Sikander, there was cheapness, yet it was not to an extent as was during sultan Ibrahim's reign. The people were happy and the glory of the sultanate was revived.

As far as compromise between the state and peasants for land revenue and peasant protection is concerned, throughout history peasant communities have been involved in forms of land pioneering which have contributed to the territorial formation and consolidation of states. A triangular relationship links the peasantry and the state in the production, integration, control and administration of territory. Hindus formed the overwhelming majority of the population and most of them were cultivators who lived in villages and hardly came into touch with the ruling minority. Religious freedom was given to those who had accepted the over lordship of the Turkish ruler and agreed to abide by the rules and regulations enforced on them. Such people were called *Zimmis* (Aghnides,379) or protected persons. The protected person was required to pay a special tax called *jizyah*. He suffered from many disabilities and was not accorded rights of full citizenship. For a section of the orthodox *ulema*, however, jizyah was a means of harassing, humiliating and insulting the Hindus.

For the collection of land revenue, there was development of agrarian relations under the Sultans of Delhi and there was classification of these developments into two groups. In the first, the direct relation between the state and the individual peasant is maintained, but the assessment of the state's share is separated from the collection; in second, the state ceases to deal directly with individual peasants, and operates through Intermediaries of various kinds. Chiefs, representatives, assignees and grantees were intermediaries for assessment of land revenue. In the beginning of the Turkish rule, large areas remained in the hands of Hindu chiefs who paid tribute for them in cash and that the king's officers did not normally deal with the peasants in these areas. Later, the chiefs came to be designated collectively as *zamindars.* Chief decided for himself in what way he should collect

the state's share from his peasants; his tenure depended on his loyalty, which meant primarily the punctual payment of tribute. During large portions of the Moslem period the amount to be paid by a village for the king's share was commonly settled, season by season, or year by year, between the official assessor and the headmen acting on behalf of the peasants i.e. representatives.

Both agrarian and non-agrarian taxes were collected from the peasants and the demand of revenue changed with the coming of new Sultan. Sultan Alauddin khalji decreed that three taxes were to be levied on the peasantry, viz. the *kharaj* or tax on cultivation; *charai*, a tax on milch cattle and *ghari*, a tax on house. He demanded half of the produce from every peasant without exception.[17] Ghiyasuddin Tughluq understood the position of the agriculturist, as he thought that the prosperity of the state depended upon the well-being of the tillers of the soil and reduced the state revenue demand to 40%. Muhammad Tughluq increased the taxation in the Doab to 40-50%. Firoz shah reduced the state demand to 20% and abolished the *non-sharia* taxes. During his reign, *jizyah* was collected from the peasantry as a separate tax and *haq-i-sharb* i.e. water tax was also collected which was equal to 10% (Afif, 2001:93). Lodi Sultans collected *kharaj*, *zakat* and *Jizyah* (Halim, 1974:243)

To complete the discussion of the peasant life it can be said that, of the produce of land, a large share went to the state, in the form of the land tax and various perquisites. Of the remainder, a customary share was fixed for various classes of domestic and other laborers. The peasant and his family kept the rest for their own use, gradually consuming the produce, and making special use of it on the great occasions of domestic life, namely, at birth, marriage and funeral celebrations. It is difficult to convert the possible grain surplus of the peasant or of other labourers in the village into a cash money value, for the sake of comparison with other classes. There are very few and very vague references to the life of the peasants. The poverty of the peasants and field labourers is contrasted with the luxurious life of the landed aristocracy, the *samantas*. It will thus be seen that village society was highly unequal. The growth of a cash nexus which became more rapid under the Sultanate increased the disparities further. While the agrarian policies of the Sultans were meant to ensure a steady income for the ruler and the officials who administered the state, their policies also had an impact on the rural society and economy.

References

1. *Afif, Shams-i-Siraj, Tarikh-i-Firozshahi, tr. Elliot and Dowson, vol.3, Trubner & Co.,8 & 60, Paternoster Row, London, 1871*
2. *Aghnides, Nicolas P, Mohammedan Theories of Finance, Columbia University, New York, 1916.*
3. *Ashraf, K.M, Life and Conditions of the people of Hindustan, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1970.*
4. *Abdullah, Tarikh-i-Daudi, tr. Elliot and Dowson, vol.4, Trubner & Co.,8 & 60, Paternoster Row, London, 1872.*
5. *Barani, Ziauddin, Tarikh-i-Firozshahi, tr. Elliot and Dowson, vol.3, London, 1871*
6. *Chandra, Satish, Medieval India vol.1, Har-Anand Publications, New Delhi, 2012.*
7. *Choudhary, Tapan Ray, Cambridge Economic History of India, Cambridge University Press, Cambridge, 1984.*
8. *Halim, Abdul, History of the Lodi Sultans of Delhi and Agra, Idarah-i-Adabiyat-i-Delli, Delhi, 1974.*
9. *Mehta, J.L, Advanced Study in the History of Medieval India, Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 1980.*
10. *Nizami, K.A, Some Aspects of Religion and Politics in India During the Thirteenth Century India, Aligarh Muslim University, Aligarh, 1961.*
11. *Siraj, Minhaj, Tabaqat-i-Nasiri, tr. H.G Raverty, vol.1, Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, 1970.*
12. *Batuta, Ibn, Rehla, tr. Mahdi Hussain, Oriental Institute, Baroda, 1976.*
13. *Afif, Shams-i-Siraj, Tarikh-i-Firozshahi, tr. R.C Jauhari, Sundeep Prakashan, New Delhi, 2001.*

Marital disharmony and shattered soul in the novels of Shobha De

Bhoopendra Kumar Tripathi
Research Scholar, Swami Vivekananda University, Sagar (Madhya Pradesh)

Dr. Pankaj Dwivedi
Associate Professor, Swami Vivekananda University, Sagar (Madhya Pradesh)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Shobha De's women protagonists are trapped and trampled in the awkward but challenging conditions and situations of their married life. De's women characters on the one hand, are subjugated and suppressed physically and mentally by their husbands and on the other hand they are treated with hostility by their mothers in law. The result of this is shattered soul and mental agony of the women characters of Shobha De. In her novels Shobha De emphasized and highlighted santimony and double standard dealings overpowering the blessedness of marriage in the present day society. In the male dominated society, marriage is used as a tool in the hands of the husbands to reduce the wives to a mere object. In the novels of Shobha De women characters suffer psycho- emotional trauma in their married life to the extent of being broken psychologically. The husbands take superior position and become indifferent and insensitive towards their wives. The lack of affection, care and emotional support from husband disturb women and this becomes the reason of marital disharmony between the husbands and wives.

Keywords : *Shobha De, Marital disharmony, Marital insensitiveness, Marital clashes, Patriarchy, Shattered soul, Feminist instinct, Male dominated, Psycho emotional trauma, Emotional sterility, Psychologically broken.*

Marriage is not a bed of roses or a palatable dish for Shobha De's women characters. In fact, De's women protagonists are trapped or trampled in the awkward but challenging conditions and situations of their married life. Many factors play catastrophic roles tending to marital disharmony in the lives of De's human characters. The husbands treat their wives as inferior being and as a result marital life turns out to be Warzone between husband and wife. Husband's noncooperative attitude, their insensitiveness and Indifference spoil their relationship with their wives. Another factor is the lack of communication between husband and wife. The husband's take all the decisions and do not heed to words of wives so the women zip their lips in Silence and sidelined in decision making. Gradually it turns into emotional alienation between spouses. This insensitiveness of husbands tends to marital clashes. De's protagonists, on the one hand, are subjugated and suppressed physically and mentally by their husbands and on the other hand they are treated with hostility with their mothers in law. These women characters of De's novels cannot hope for any support or solidarity from their own parents because they also advocate patriarchy. The result of this is shattered soul and mental agony in the novelist's women characters. According to the Indian culture a woman should live life being obedient to her husband and she should do everything to fulfill the desires of her husband. The duty of a wife is to serve her husband with utmost respect. In Valmiki Ramayana Ram tells his mother Kaushalya.

'' Even the best of women, constantly engaged in religious woes and worship will be walking the path of sin if she is not obedient to her husband. Women obtains the highest heaven merely by serving her husband with her only interest, the Welfare of her husband, a women should constantly serve him. This has been the dharma of women from the ancient times, that is what the Vedas and the smritis say''. 1

Surely it is for the women to follow all the ideal doctrines presented by the role models after holy epics and religious 'Pativarta' women characters. As a result, most of De's female protagonist are perturbed by the enforced mythical doctrines to females living pattern because it is paradoxical to their feminist instinct. Shobha De expressed her opinion about marriage:

'' Marriage overwhelms people. Marriage is memory. If the good memories outnumber the bad ones, it is fair to declare the marriage a success. Marriage is for those who believe in it, who actively want it, who enjoy it. ''2

In her novels, Shobha De highlighted double standard dealing overpowering the blessedness of marriage in the present day society. In the male dominated society, marriage is used as a tool in the hands of the husband to reduce the wives to a mere object. In such a marriage, the wife is victimized. So most of the women protagonists in the novels of Shobha De, face marital disharmony. De's women characters suffer psycho emotional trauma in their married life to the extent of being broken psychologically. The husband's take superior position and become indifferent and insensitive towards their wives. The lack of affection, care and emotional support from husbands torture women characters of the novels psychological and this becomes the reason of harmony between the husbands and wives in the novels of Shobha De. As we find in her one of the best novels ' Socialite Evenings' Karuna realizes after her marriage:

'' she was struck into an increasingly meaningless marriage. Karuna husband was not a villain. He was just an average Indian husband— unexciting, uninspiring, untutored. ''3

Karuna is broken and shattered because her husband proves to be highly pretentious and such a person who is unable to feel the need of sentimental attachment between husband and wife. Karuna feels the lacking of the warmth of care from her husband. It seemed to her for her husband she is only a status symbol devoid of any feeling and sentiments. Karuna feels suffocated and realizes:

'' all I wanted to that point was to meet someone mature, sensitive, intelligent, funny and sympathetic, but like everything else in his life, he pretended he had not sensed a thing . ''4

The marriage of Karuna is a failure because it is love less, joyless and no understanding between her and her husband. She decried of her marriage.

'' My marriage went sour because I had married the wrong man for the wrong reasons at the wrong time. He was not the one for introspection or for rocking the boat. Not for him the agony of questioning relationships— any relationship''5

Another woman character of 'Socialite Evenings' Anjali's hopes for a good marriage life shattered when her Muslim husband Abi treats her with the Contempt and indifferent attitude.

Mikki in 'Sisters' before her marriage was leading the life of a sharp corporate business women with a busy schedule. The brutal behaviour of her husband when she asked him to relieve her from the unending party so that she could take some rest, rudely shocks her:

'' A sudden crash behind her head startled her and she jumped instinctively to one side just as a few shards of glass flew past her face''6

she could not digest the harsh realities of her newly married life. She felt a pang in her mind and body. Novelist Shobha De writes:

'' she had placed herself in a situation in which she was at Binny's mercy, stripped clean of all her

assets, her business, her properties— just above every conceivable possession. She had treated in all that for love. Everlasting love. And now it seemed to her she had been short changed. Cheated. A sense of panic convulsed her. It was too late..... too late..... too late. The new watch on her slim wrist was tickling away softly ..... while the countdown of the marriage muhurat had already begun. Trapped, scared and terribly alone.''7

Mickki's husband Binny was a representative of the operative system of the male dominated society. He does not like Mikki's being an active partner both in life and business so he tries to confine her within his house when he announces:

'' Our women stay at home and make sure the place is perfectly run. They fulfill their husbands every need and look good when their men get home in the evening. No office going, no business meeting, and you had better get used to it.''8

The lack of time and communication with her husband Binny gives Mikki a pang of estrangement in life. Mikki Finds the life very odd and she pleads with Binny for a fruitful relationship but she was astonished by Binny's violent attitude:

'' You will never, I repeat, never, question me..... or complain. You have nothing to complain about — got that? But no question— you don't have the right. And none of this cheeky business. I will not tolerate it. When I say ''Butter my toast'' you butter it. That's all.''9

Mikki, before her marriage, I was overwhelmed by the passion of Binny as a perfect lover but now she is broken and shattered at the emotional barrenness in her marital life.''

Rashmi and Aparna in De's novel '' Snapshots'' too face very bitter atmosphere in their married life. It was Rashmi who earned not only the bread but also the butter for her shared life with senior Pips indifferent to Rashmi. In spite of having his own family Pips lives with Rashmi on her hard earned money but refuses to acknowledge Rashmi his wife publicly. He denies Rashmi the honour and respect of a wife, this Indifference of Pips made her psychologically broken and shattered.

Aparna also suffers with emotional sterlity in her married life with her egoist husband Rohit. As a husband Rohit is male chauvinist who treats his wife violently. Aparna remarks:

'' And each time they fought, it was Aparna left feeling rotten guilty as though the whole thing was somehow her fault, it was her intensity that came in the way and spoilt everything: that it was she who expected too much: demanded too much, that it was unrealistic of her to hope for that with Rohit.''10

Third women character in the same novel Surekha is even more pitiable. She is living a dull and uninteresting married life with Harsh. Having been reduced unimportant being without respect and dignity, Surekha life is completely overshadowed by her husband. Surekha neglects herself when she is invited in a get together of her school friends, she thinks:

'' you will feel a sense of shame, and they will feel sorry for you, stay home''11

Maya in 'Second Thoughts' is married to Ranjan, an American return Bank official but very old fashioned and conservative for his wife. Both Ranjan and his mother torture Maya. She had suffered throughout her life under her parents, again she is subjected to the same kind of restriction and bondage by her husband. Realizing the fiasco in her marriage Maya remarks:

''Two uncool people stuck together in unholy Matrimony.''12

Ranjan with the show of superiorty complex makes Maya feel uneasy, indifferent and inferior. Maya acknowledged:

'' the truth was, Ranjan made me tense, Ranjan also made me self-conscious, I never felt free to be myself when he was around.''13

Maya tries her level best, in spite of all these oddities, to adjust with Ranjan but no avail.

References

1. *qtd.in Chaitanya*
2. *De, Shobha. 'Spouse' intro xii*
3. *De, Shobha. Socialite Evenings. New Delhi.Penguin,1983 P.65*
4. *I.bid.P.70-71*
5. *I.bid.P.65*
6. *De, Shobha, Sisters. New Delhi: Penguin,1992P.98*
7. *I.bid.P.98-99*
8. *I.bid.P.109*
9. *I.bid.P.116*
10. *De, Shobha. Snapshots. New Delhi: Penguin,1995P.18*
11. *I.bid.P.31*
12. *De, Shobha. Second Thoughts. New Delhi: Penguin,1996P.200*
13. *De, Shobha. Snapshots. New Delhi:Penguin,1995 P.163*

Impact of Pandemic on Society and Social Relation

Maneesha Vishwakarma
Research Scholar, Jai Narayan Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Pandemic, epidemic, natural disaster, war, revolution are a few of unprecedented and unpleasant circumstances often faced by humans on the earth. Most of the time these are controlled and checked by the intelligent human brain. but sometimes throws serious challenges to man and society. Thecovid pandemic is such a phenomenon which has been declared as a world health emergency by WHO. It has also proved to be a social emergency as well. Impact of the disease is multidimensional and complex, very massive and disastrous. The paper speaks about the impact of covid-19 pandemic on society and social relation, its various institutions such as family, marriage, education and economy. Social relations are the core of all human interactions.

Keywords : *Society, Institutions, Social Change, Family, Marriage, Education, Social Relations.*

The World health organization (WHO) announced Coronavirus, which is regarded as COVID-19 as a disease on 11th February 2020, and declared pandemic in March 2020. Infection of the Virus causes respiratory problems in an individual with symptoms like cough, sore throat, fever, and difficulty in breathing, impacting the overall health condition of the community.

Man is a gregarious animal. Community life is the core of his existence and survival. Interaction and relation are inevitable to sustain community living. The novel coronavirus and the containment measures has posed a challenge to the interpersonal and group interactions with measures of social and physical distancing. Social connection, interaction and relations have remained an integral part of human life. Lack of such connection, certainly, leads the individual life to a level of stress, anxiety, loneliness, depression, health hazards, mental disorder and other psycho-social issues. This will have a drastic effect on individual and collective life as a whole.

The paper is based on secondary information collected from various resources such as newspapers, articles, journals, books, reports of various governmental organizations, non-governmental organizations, media, social media and internet. This is an effort to draw attention to the social reality which has emerged in the aftermath of the Corona crisis. The impact of COVID-19 pandemic on Indian society and its institution as family and social relationship is enormous. Their changing structure and function, role in satisfying present day needs of individuals and society is worth investigating. It is the need of the hour to rethink the theoretical and empirical implication of changing the social world and social reality.

Impact on Society and its Institution

Lockdown and social distancing made people socialize new patterns of interactions and behaviors. The continuous hammering of covid-19 related news, on media, social media, has totally engulfed society in unprecedented fear and apprehension. Sooner or later the virus may be cured but the impact of distrust

and distancing that has been created shall hover large over social interaction institutions and day to day social life as a whole. The disease has substantially impacted almost every aspect of human social life from home to workplace, shop to market, from local to global. Economic, political, educational, health and medical, trade, business, travel and tourism, industries, production, income, livelihood has impacted severely.

Whenever such massive changes occur in the social system, society shifts from an equilibrium state and tries to adjust to new norms of living and behaving to maintain social cohesion. History has observed many revolution disasters, calamity, emergency, invention, discoveries, French revolution, industrial revolution, war, development in science and technology, revolution in information and communication technology, has brought about changes in society and social life. These occurrences have a far-bearing impact on society and human life. Society is a complex whole, changes induced in one part will definitely bring change in another part and finally the change in overall structure and make up of society.

The impact of COVID-19 pandemic has been experienced across all sectors, but affected marginalized sections, migrant laborers, women, elderly, children, countrymen and urban immensely in Indian society by pushing in more vulnerable and challenging conditions. Indian society and its traditional institutions are again undergoing sea changes. Family, religion, politics, economy, education, law all confronting challenges posed by the pandemic. They will not remain the same structurally and functionally as they were before.

This corona virus has affected economic and social structure as never before leading to massive psycho-socio- cultural changes that will bring challenges and social problems before community and people. In the wake of corona the people and communities are facing fear, stress, anxiety and distrust that has arisen out of the disease. Those are struggling hard to cope-up with the crises and adjusting to the current challenging lifestyles. In India abrupt and long lockdowns have brought millions below poverty line struggling for needs of food and shelter leading to different forms of inequality.

Some instances to elaborate the havoc and suspicion developed insociety and social relations are mentioned below-

Everyone has closed oneself in the four walls of his house to avoid physical contact, even neighbors make excuses when knocked at the door saying "He is sleeping', clearly indicating he is obviating personal contact with an outsider.

In the market and shop the person the shopkeeper blatantly asks you to keep distance as if you are carrying the virus.

In case of making payment through a plastic card, shopkeepers ask for PIN, to avoid the infection free transaction leaving you feeling that your account safety is less valuable.

New forms of discrimination and inequality are emerging making society and situation more complex for e.g. Digital divide, discrimination on the basis of accessibility, availability and affordability of devices and internet. Certainly social distancing is the only effective measure to curb the spread of covid-19 andit should be promoted.But all the constitutional provision to eliminate untouchabilityand promote integration seems to have failed in the current situation.New norms of purity and profane have emerged within the caste and groups which was earlier only between upper and lower caste. Discriminationon the basis of infections as infectedand non-infected. New forms of untouchability have arisen between inhabitants and outsiders.New standards of pollution and cleanliness have emerged.

Impact on family and related institution

Family the central institution of society, has also witnessed issues of dissatisfaction disturbances and several forms of humiliation. Violence or domestic violence in family is one such

phenomenon that has reported to be increased significantly across the globe during covid-19 and post covid-19 society.Centre for global development has conducted several rounds of research on "Violence against women children during COVID-19 one year on and 100 paper" in a fourth research round up, of the 15 studies included here 12 of them find evidence of increased violence. Patto Joshi 2020, conducted survey in India based on online survey data on self reported trends evidence the increase in physical, sexual, verbal, emotional violence. Sharma and Khokhar 2021, also surveyed online data from self reported trends found mixed results in increase in domestic violence.

	Author	Location	Data	Sample Size	Key Findings
1.	Krishna Kumar &Verma 2021	India	Newspaper Article	59 newspaper articles	Prominent themes that emerged from analyzing newspaper reports of domestic violence incidents were withdrawal from alcohol and unemployment for the perpetrator
2	Mahapatro et al. 2021	Alwar, India	Quantitative data(phone)	36 women survivors of domestic violence	Women survivors found it much more difficult to access services and social support networks to deal with domestic abuse during the lockdown period.
3	Wang et al. 2020	China	Survey Data (online)	1,063 healthcare workers	Rates of medical workplace violence were 20.4% during the COVID -19 outbreak, and those who had experienced workplace violence were more likely to have elevated mental health problems.
4	Haddad et al. 2020	Lebanon	Survey Data (online)	369 women	Women subject to psychological violence during the COVID -19 lockdown have a lower, but not significantly lower, probability of pregnancy and a higher probability of unwanted pregnancy.
5	Naghizdeh et al. 2021	Tabriz, Iran	Survey Data (in person)	250 pregnant women	During COVID -19, 35.2% of pregnant women surveyed had experienced domestic violence, including 32.8% who had experienced emotional violence, 12.4% experienced sexual violence, and 4.8% experienced physical violence. Experiences of domestic violence were correlated with reduced spouse income during the pandemic.

Women have become more susceptible from health perspective living already in unsafe and substandard conditions, domestic violence, and gender based discrimination increased. Child abuse, child labor, child marriage has increased, women are overburdened, limitation of resources tend women to neglect their own needs while prioritizing life and needs of other family members. Social distancing, closure of places of entertainment and leisure, unplanned shut down of schools and colleges has affected students, teachers and parents regarding loss of education.

In response to the Corona virus pandemic, in India government at center and state issued ordered to stay at home to restrict the people movement. With complete lock down the percent of people at home increased at all hours. The domestic violence instances during lock down increased despite domestic violence act passed by Government of India in 2005. Cases and reports from newspaper articles, social media platform, new Agencies, several state and Central government agency, reports from National Commission for Women(NCW) and the National Legal Services Authority(NALSA).

These data are retrieved from the complaints received through the helpline numbers provided by the Indian government as well as NCW for women at risk or being subjected to domestic violence of any kind. From March 23, 2019 to May 31, 2020 India had imposed 4 phases of continuous lockdown Shukla 2020. India's national Commission for Women received 257 distress calls on v a w in the first week itself (Chandra 2020a; Chandra 2020b;Vijayalakshmi and Dev, 2020). Unemployment combined with no access to alcohol have been considered the primary causes of exacerbating the situation of violence against women during the pandemic with the situation women not able to run away to parents, relatives and neighbour place to seek help in the event of domestic violence.

India's National Commission for Women (NCW) received 257 distress calls on VAW in the first week itself (Chandra, 2020a; Chandra, 2020b; Vijayalakshmi&Dev, 2020; Owen, 2020). The number of such calls between March 23 and April 16, 2020 (the first three to four weeks of the lockdown) was 587, a 48% increase compared to the 396 complaints received during February 27 to March 22 (Rukmini, 2020). By the end of the first five weeks of India's nationwide lockdown, a grim 92% increase in the number of reported DV complaints was reported by the NCW (Pant, 2020).

Various state governments also have their specific complaint channels. Due to the availability of multiple complaint channels, data on DV during the lockdown has been found to vary from one report to another. For instance, according to NALSA, only 727 reports of DV were received across the country during the lockdown period (Mahapatra, 2020). However, as per another source, 616 such cases were reported in Tamil Nadu alone. Arguably, in any case, the overall national trend was of an increase in the number of reported DV cases during the lockdown. As an example, from March 2020 to April 2020, there was a 46% rise in the proportion of DV cases reported to India's Sakhi OSC (see, graph below) (MellyMaitreyi, 2020).

Table 1: Number of Reported Domestic Violence Cases During the Lockdown in Some Indian States.

State/Union Territory	Period	Number of reported cases of domestic violence	Authority
Punjab	Since March 22, 2020	At least 30 cases per day (approximately 900 in a month)	Punjab State Commission for Women
Tamil Nadu	March 25 – May 14, 2020	616	Tamil Nadu State Government
Karnataka	March 23 – April 21, 2020	162	Karnataka State Government
Uttarakhand	March 24 – May 15, 2020	144	National Legal Services Authority (NALSA)
Haryana	March 24 – May 15, 2020	79	NALSA
Jammu & Kashmir	March 24 – April 24, 2020	65	Government Sources
Chhattisgarh	Per month of lockdown	60-65	Chhattisgarh Police
Delhi	March 24 – May 15, 2020	63	NALSA
Maharashtra	March 24 – May 15, 2020	12	NALSA

Sources: Ratnam (2020); Joy (2020); Bhat (2020); Mahapatra (2020); Uttarakhand witnesses highest number of domestic violence amid lockdown, Delhi on number 3 (2020, May 17). *Times Now*. Retrieved on May 17 2020 from, https://www.timesnownews.com/mirror-now/in-focus/article/uttarakhand-witnesses-highest-number-of-domestic-violence-amid-lockdown-delhi-on-number/593038; Raipur Police launches "Chuppi Todd" campaign as domestic violence cases surge amid lockdown. (2020, May 3). *ANI News*. Retrieved on May 4 2020 from, https://www.aninews.in/news/national/general-news/raipur-police-launches-chuppi-todd-campaign-as-domestic-violence-cases-surge-amid-lockdown20200503025811/

The nature of DV varied significantly from one case to another. In one incident, a girl was being forced to marry against her will with her parents beating her. Another case was of a brother complaining to the NCW about his sister being physically abused by her in-laws in Tripura. In yet another case from Rajasthan, a father called out attention to his daughter not only being beaten by her husband since the start of the lockdown, but also being denied food (Vijayalakshmi&Dev, 2020). There were also incidents of women not being allowed to enter their homes by their in-laws. Further, Jammu and Kashmir reported as many as 19 cases related to harassment for dowry during thelockdown period (Bhat, 2020). Even as DV complaints were filed in many states, comprehensive data were only available for a few. Among the states for which reporting data were available, Punjab witnessed the highest number of DV complaints during the lockdown period, followed by Tamil Nadu, Karnataka and Uttarakhand.

Family, marriage, kinship, caste, religion and education are the fundamental institutions of Indian society. COVID-19 has put all these institutions at the stage where they all need to be redefined and readdressed for their role and importance in the present scenario. The corona virus has posed social challenges to the entire social order,social organization and social system.

During lockdown people returned to their native places from where they had settled for job, business or study. This process has revived joint family life. The joint family is the distinctive feature of society. Where three or more generations live under a common roof, share a common kitchen and use common economic resources. But now it has many more demerits than that of a traditional joint family. This pandemic has posed many problems to women, children, and teenagers. Women are overburdened with work from home, online education of children and managing household activities Domestic violence and marital rape increased. Members are living under fear and suspicion, persecution complex is rising in individuals as persistently living under state of fear and suspicion created by pandemic. Although they are living together, this togetherness has shifted to a new paradigm of behavior and interaction following social distancing, and hygiene guidelines issued by the state. Greetings and expressions of emotion such as hugging, kissing and hand shaking showing closeness or intimacy are no longer observed between family members and friends.

Percentage of Domestic Violence complaints made to Sakhi one stop centres in India from January 2020 to April 2020

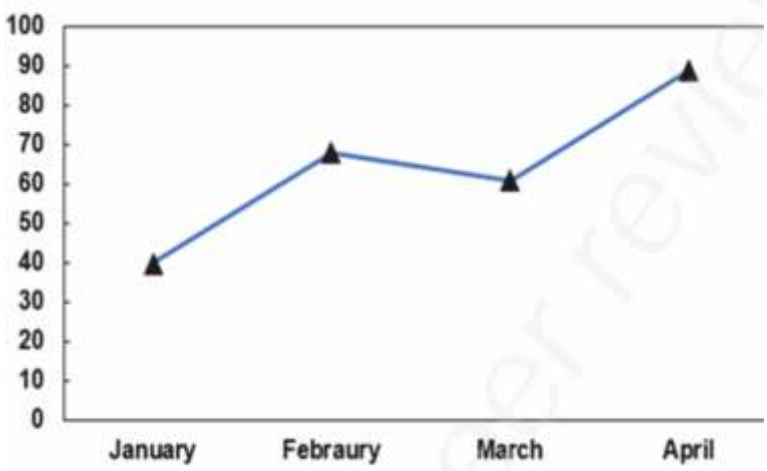

ource: Collected by the Authors from *Sakhi* One Stop Centres

Impact on institution and social relationship

Family, marriage, kinship, caste, religion and education are the fundamental institutions of Indian society. COVID-19 has put all these institutions at the stage where they all need to be redefined and readdressed for their role and importance in the present scenario. The corona virus has posed social challenges to the entire social order, social organization and social system.

During lockdown people returned to their native places from where they had settled for job, business or study. This process has revived joint family life. The joint family is the distinctive feature of society. Where three or more generations live under a common roof, share a common kitchen and use common economic resources. But now it has many more demerits than that of a traditional joint family. This pandemic has posed many problems to women, children, and teenagers. Women are overburdened with work from home, online education of children and managing household activities Domestic violence and marital rape increased. Members are living under fear and suspicion, persecution complex is rising in individuals as persistently living under state of fear and suspicion created by pandemic. Although they are living together, this togetherness has shifted to a new paradigm of behavior and interaction following social distancing, and hygiene guidelines issued by the state. Greetings and expressions of emotion such as hugging, kissing and hand shaking showing closeness or intimacy are no longer observed between family members and friends

As per government guidelines all social and public gatherings have been suspended. Marriage, house warming function, birthday party and other occasions and religious functions have lost the fervor, the rites and rituals are the essence of Hindu social life. During COVID-19 crisis there is a fundamental change in celebration of these moments. Where the number of guests was supposed to be the mark of social prestige and status now it has become embarrassing before police and authorities for breach of law. One has to report and take permission from competent authority to invite guests to the function. Religious fervor to celebrate different festivals has almost vanished, which is clearly observed on AkshyaTritiya (Akhateej).Gangaur,Raksha-Bandhan,other religious fairs and festivals.

Institution of religion and religious practices has transformed substantially. Visiting some temple and deity every day brings blessing of the God is no more a scale of religiosity. God stays in heart and pray at home otherwise one may catch infection.

Another institution greatly affected by the COID-19 outbreak is education. With the nationwide lockdown all schools and colleges were closed to stop the spread of coronavirus. Online teaching has come up with an alternative to classroom teaching. Institutes with organized set up of internet and computer started on line classes. Soon it became a trend and children were forced to stick to screens to take online classes. This pattern has its own pros and cons. Above all this has created digital divide between those who have and those who do not have access to technology and internet. Parents and children are trying very hard to manage to access those online classes.

Economic institutions are also severely affected by COVID-19 pandemic. Small or big enterprises, import or export trade, business, industry and factory all were shut down leaving lacks and thousands of laborers and workers jobless. Employment of private sector employees was taken away. Industrial production came down.

In many cases it is observed that people in neighborhood and Housing Society have become who style to each other. The behavior and attitude of the people in small instances such as buying grocery vegetables milk and getting official permission to go out for emergency reasons reflects a sense of hostility. Those having any travel history requested by the fellow society members to get themselves tested they react inappropriate and get into a fight with them when asked to disclose to the government officials. Surprisingly such hostility also

observed against Corona Warriors who are at the four front of this battle. Doctors, nurses, health professional police are being shunned by others for fear of being infected instead of being grateful. They have been asked to vacate rented homes by landlords as the belief their stay may make them more susceptible to covid-19. Social distance in means people are supposed to stay apart from the crowd in order to spread and catching the virus. This emerging new norm has forced people to become contactless of all social contacts even if they are near and dear ones. Now has become matter of major concerned because Government and authorities restricted large group gatherings and permitted only fix number of Guest at the function with permission of local governing body. It has also never seen before that police is visiting the venue of marriage few times and staying there as if there is suspect of offence or nuisance and charging fine for inviting more guest then allowed.

In post pandemic society both closeness and distances played there role in changing social relations. Those who want to live together spend much time enjoying all household chores and those who donot want the situation has become better and untold story of relationship is revealed. Friend house, pears places usually visited everyday has been lost from daily routine. Gossiping, criticizing, whispering in the ear have become things of past. The pandemic has given the opportunity to pause and think about the importance of close and strong relationship in order to sustain the fulfilled and enriched social life. Social relationship is the core of social life and quality of relationship measure the quality of social life. Social relationship already getting blows from overuse of social media platform multiplied by the pandemic situation. The situation is accepted by members of society as safe and protected.

Theoretical connection to understand the post-covid society could be linked with the concept of social reality propounded by American sociologist Harold Garfinkel. He emphasized that to comprehend social reality it is to be disrupted. Social disruption is dysfunction, alteration or breakdown of normal social life. It also implies radical changes where old paradigms are shifting to something quite new emerging paradigms.

Present state of affairs demands sincere concern and sensitivity on the part of sociologist, anthropologists, social psychologist and social scientists to take up one of the issues and problems of post- covidsociety and come up with a detailed research blueprint to address each and every aspect of the issue in a holistic approach.

References

1. *Center for Disease Control and Prevention (2020, 03 15).Manages Anxiety & Stress. Retrieved from Coronavirus Disease 2019 (COVID-19): https://www.cdc.gov/cirinavirus/2019-ncov/prepare/managing-stress-anxiety.html*
2. *Freeman, S. (05, 03 2020). Systemic social issues reflected in coronavirus outbreak. Retrieved from politics: https://ipolitics.ca/220/03/05/systemic-social-reflected-in-coronavirus-outbreak/*
3. *WHO.(2020, 10 03). Naming the coronavirus disease (COVID-19) and the virus that causes it. Retrieved from WHO: https://www.who.int/emergencies/diseases/novel-coronavirus-2019/technical-guidance/naming-the-coronavirus-disease-(covid-2019)-and-the-virus-that-causes-it*
4. *Electronic Research journal of Social Sciences & humanities -ISSN: 2706–8242 www.eresearchjournal.com 28 jul.2020*
5. *E-paper.SakalTimes. www.sakaltimes.com*
6. *Singh.Dr. Pallika "Why dealing with the social impact of COVID-19 on India is a major challenge" https://www.nationalheraldindia.com/glun.2020.Web. 28 July, 2020.*
7. *www.CGDEV.ORG 18 March, 2022*
8. *www.papers.ssrn.com 18 March, 2022*
9. *McDool, Emily and Powell, Philip and Roberts, Jennifer and Taylor, Karl B., Social Media Use and Children's Wellbeing. IZA Discussion Paper No. 10412, Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=2886783 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.2886783*

Indus Water Treaty-the Future In Weaponising Water

shodhshree@gmail.com

Dr. Padmashree Pattnaik
Associate Professor, Political Science, Commissionerate of College Education,
Government of Rajasthan, Jaipur

Abstract

The Indus Water Treaty is a rare example of settlement of dispute between the two riparian countries having a background of conflict and confrontation for a long time. Peaceful agreement between India and Pakistan on sharing of the waters of Indus River could have been enduring basis for friendship between the two countries. On the contrary, there have been three wars and continuing hostilities between them. Yet it is a unique treaty that has survived despite such adverse conditions. The latest examples are resolution of the disputes over Salal and Baglihar dams. IWT is currently under severe stress. Owing to the continuous decline in the relationship, leaders of India , including Prime minister have questioned the relevance of the treaty . Divisive political narratives on both sides have aggravated tensions over the issue. Indus water is the indispensable need of Pakistan and therefore a critical strategic weapon in the hands of India. The article studies the facts and observations from a number of sources to make an assessment weaponising water as a possible long term solution of the issue. Politics of consensus through patient and continuous negotiations under the provisions for Indus Commission seems to be more practical compared to politics of confrontation.

Keywords :

The Indus Water Treaty signed between India and Pakistan on 19th September 1960 has recently emerged as a subject of unprecedented controversy after a period of little over 60 years. A wide range of opinions and comments have been given from various platforms .It has been argued by people Including political leaders that the treaty was a sell out and the nation is going to pay heavy price in future. They publicly express grave concerns about the scarcity of water for irrigation in three states of India, namely, Punjab, Rajasthan and Haryana that is being faced because of the faulty negotiation in IWT. Views have been expressed that the then Prime minister of India compromised the national interest by giving consent to provide nearly 60% of Indus water to Pakistan. The other view defending IWT that it was based on sound scientific data collected by engineers regarding the geographical pattern of Indus river and its tributaries and it was the most practical solution to the dispute between the two upstream and downstream countries.

The Indus river rises in the South Western Tibet and flows through Kashmir and then into Pakistan to drain into the Arabian Sea[(1)]. It is joined by numerous tributaries, notably those of the Eastern Punjab plane – Jhelum, Chenab, Ravi, Beas and Sutlej rivers.this Indus river system (IRS) has been the source of irrigation for centuries. During the British rule, large canal systems were constructed and after partition, the water system was bifurcated .With the headworks in India and the canals running through Pakistan .The IWT allocates waters from three western flowing rivers, Indus, Jhelum and Chenab to

Pakistan barring some limited uses for India in J&K. India was given control of the entire water from the other three rivers, Ravi, Beas and Sutlej. Under the EWT, India is allowed 3,6 million acre feet (MAF) up storage, that is, 0.4 0MAF on Indus, 1.5 0MAF on the Jhelum, and 1.70 MAF on the Chenab.. Sector wise allocation is 5MAF for storage and additional 0.75 MAF for flood storage. In the final reckoning, Pakistan received major of the IRS waters while India got much less.

The treaty has 12 articles[2]. According to Article II, all the waters of eastern rivers shall be available for the unrestricted use of India with few exceptions. According to para 2, except for domestic use and non-consumptive use, Pakistan shall be under an obligation to let flow and shall not permit any interference with, the waters of Sutlej main, Ravi main in the riches where these rivers flow in Pakistan and have not yet finally crossed into Pakistan.

According to Article III, Pakistan shall receive for unrestricted use all those waters of the western rivers, which India is under obligation to let flow and shall not permit any interference with these rivers, except for the uses

a) domestic use,

b) non-consumptive use,

c) agricultural use, and

d) generation of hydroelectric power.

As per article V, in consideration of the fact that the purpose of part of the system of work referred to in Article IV-1 is the replacement from the western rivers and other sources, of water supplies from for irrigation canals in Pakistan which were dependent on water supplies from the eastern rivers, India agreed to make a fixed contribution of pound sterling 60,20,60,000 towards the cost of these works in 10 equal annual instalments.

Article V III created permanent Indus commission to establish and maintain cooperative arrangements for the implementation of the treaty and to promote cooperation between both the countries in the development of the waters of the rivers and for few other purposes. The commission was to meet regularly at least once a year, alternately in India and Pakistan..

Undoubtedly, although IWT has survived many contentious issues in the last six decades, several new issues have come up mainly because of the supply - demand gap for farmers in the Indian side and the uncertainty created by climate change. Political leaders on both sides have made this dispute more contentious in the background, these wars fought (1965,1971 and 1999) between the countries and the problems of militancy and terrorism on the border from Pakistan side.

Construction of dams and multipurpose hydropower projects on the Indus river system for effective management of water as well as generation of electricity has been a repeated cause of dispute . The controversy over the Salal dam emerged in 1970 and was resolved by the two countries in 1978. Baglihar was the second issue that has been more or less solved by 2007 with the help of the neutral expert Professor Raymond Lafitte engaged by the World Bank. Kishan Ganga hydroelectric project (KGIP) has been more complicated and complex[3]

In the backdrop of the strained relationship between the two countries in 2016, Prime Minister of India, for the first time, raised the issue of the need to reconsider the terms and conditions of IWT. After the attack of an Indian Army camp at Uri in J&K in September 2016 leading to killing of 20 Indian soldiers, Prime Minister said, 'blood and water cannot flow simultaneously'. Thereafter India suspended the annual meetings of the permanent Indus commission . Although there is no provision for unilateral exit from IWT by either of the parties, there have been demands from many agitated groups in India to abrogate the treaty in retaliation to the anti-Indian posture of Pakistan on several issues.

The developments on the IWT would also quite

obviously have repercussions on the other river issues in South Asia.

Bangladesh receives about 91% of water from rivers flowing from India. The growing collaboration between Pakistan and China on security, economy and water projects, primarily on the western flowing rivers of Indus river system may lead to Chinese becoming much more assertive towards India. In Northeast India, China is not in a position to divert much water from Brahmaputra as the river becomes wide only after reaching India, mainly Assam. It has been reported that China is building dams over the Sutlej river which flows through Tibet before entering Himachal Pradesh. China is reluctant to share hydrological data from Nugesha, Yangkunand Nuxia hydrological stations for the Brahmaputra River and from the station at Tsada for the Sutlej river for which India pays around Rs.1 crore every year. Recently, China has stopped sharing hydrological data on the Brahmaputra with India during the 73 day Doklamstand-off in 2017. Such data plays an important role in causing the amount of water coming from Tibet into Arunachal Pradesh and taking measures to avert any major disaster or floods in the state[4].

A brief summary of the water conflict and cooperation between the two countries has been given by website' Climate Diplomacy' citing many sources.

a) Conflict has existed for more than half a century[5]. India has gained control of upstream barges, which regulates water flow into Pakistan[6].

b) Around 90% of Pakistan's food and 65% of its employment depend on farming and animal husbandry, which are sustained by the Indus [7]

c) Many communities in the Indus basin face water scarcity under current usage and storage patterns. According to NASA, the Indus basin is the world's second most overstressed aquifer[8].

d) Over extraction of its finite ground water resources is a major challenge in the Indus basin[9].

e) Meanwhile, the total water demand in Pakistan is projected to increase from 163 KM 3 in 2015 to 2225 KM 3 into 2050[10].

f) In northern India where the Indus tributaries flow, irrigation is particularly intensive and groundwater depletion may increase up to 75% in 2050, putting further pressure on the upstream portions of the Indus river[11].

g) The Himalayan glaciers which feed the Indus basin are predicted to diminish further in the coming years. This may increase water flow in the short term, but it will also deplete groundwater recharge in the long run, thus reducing available water resources[12]

At the same time, heavy rains during the monsoon also predicted to become more irregular, bringing further challenges to address potential flood risks. This is likely to aggravate tensions around issues of water distribution and flow management[13]. Divisive political narratives in both India and Pakistan are generally seen to increase the likelihood of conflict. Pakistan fears that India will use its upstream dams to control how much water flows down into Pakistan via the Indus. It is this suspicion and distrust between the two states that has been used to provoke anti-Indian sentiment in Pakistan, providing fertile ground for further hostility and conflict[14]. Observers from both sides criticise the treaty as outdated and for being an obstruction to effective exploitation of the Indus River resources as it limits the possibilities for storage[15]. The wider political context also affects water cooperation. This has put the treaty in the present position, where it must either be backed up, updated or provided with viable alternative to maintain cooperative relations.

In 1990, Pervez Musharraf, then a Pakistan army brigadier, presented a paper at the Royal College of defence studies in London listing three reasons for India Pakistan conflicts. They are Hatred, Kashmir and water. Hatred has its origin in preindependence Hindu Muslim communal distrust that led to partition. Pakistan considers Kashmir as an unfinished agenda of partition and Water is the basic survival economics for Pakistan.

Although Indian political leaders have issued warning time and again that India would not hesitate to block Pakistan's share of the river waters, a threat repeated by a Minister after the Pulwama attack, what is the practical implications of such statements. Reverend experts caution that this is not a tab that can be switched on and off at will. If India did decide to stop the flow of water from its eastern rivers, it would mean inundating large tracts of its own farm and forest lands[16]. We already have 3,600,000 acre feet MAF excess water flowing into Pakistan only because we lack the storage capacity to consume less water[17]. The Indus water Treaty allows India to use waters of the Chenab and Jhelum for non-consumptive purpose such as hydroelectric generation after which the water flows back to the river. The question of using the Indus Waters does not arise because the Indus turns upward from Ladakh through Pakistan occupied Kashmir, where the Chinese are building to Hughes dams for Pakistan and Rovasaand Bungidams at a cost of nearly $30 billion. Some experts believe that when India lacks capacity to use the eastern river waters, where is the question of us utilising the Western river waters ? Experts therefore believe that the key step is to be able to optimise the treaty instead of thinking in terms of abrogating . The swift flowing Chenab remains the focus of India's attention. Two detailed project reports were prepared for the Sawalkot and Vursa dams to be built on the Chenab. However, this project had to be abandoned because of regional environmental concerns. India has listed more than 30 projects to be developed on these rivers. That is very well, But the government needs to take note of the fact that China is the new elephant in the room. With Pakistan and China operating in concert, any step India to curb the flow of water into Pakistan could see the Chinese doing the same to us. Apart from building two massive dams on the Indus river in Gilgit Baltistan, China is also building 55 reserve fares on the Tibetan plateau from where both the Indus and Jhelum originate. They are also building 28 dams on the Brahmaputra and its tributaries. This is bound to affect water sharing balance in Northeast India and Bangladesh. Some experts argue that the Indus Waters Treaty has become an albatross around our neck and should be done away with or at least updated. New designs in dam construction need to be incorporated and there is also a need to ensure better river flows.

There are also other experts who maintain that Indus River Treaty has worked between India and Pakistan in the last 70 years, and should not be tampered with. Neither India nor Pakistan and China should be thinking in terms of weaponizing water , which is now a swiftly diminishing commodity for all humanity, but especially in South Asia. Both India and Pakistan are water scarce countries whose irrigation and drinking water needs are met by these rivers. The need of the hour is to offer better utilisation of our river waters. Also, in the long run, smooth sharing of river waters should help India build bridges of friendship in this hostile neighbourhood.

Five case studies that analyse the linkages between water and conflict. They look at various pathways through which water and security are connected and outline among its 11 riparian countries.

1. The Nile basin initiative in BI founded by 9 out of 11 riparian countries in 1999 has assumed some success in tends to strengthen cooperation. Yet, since 2007, diverging interest between upstream and downstream countries have brought

negotiations to a standstill, pitting Egypt and Sudan against upstream riparians , specially Ethiopia. In 2015, trilateral negotiations between these countries over a major dam under construction in Ethiopia led to a framework agreement that may, in time, prepare the ground for a broader agreement.

2. Turkey, Syria and Iraq conflict over the Euphrates – Tigris.

   The Euphrates -Tigris basin is shared between Turkey, Syria and Iraq with Iran comprising parts of the Tigris basin. Since the 1960s, unilateral irrigation plans altering the flows of the rivers coupled with political tensions between the countries, have strained relationship in the basin. Disputes have prevented the three governments from effectively co-managing the basin's rivers. Although cooperation efforts were renewed in the 2000s these have yet to result in a formal degree meant on managing the basin waters.

3. Transboundary water disputes between Afghanistan and Iran.

   Afghanistan's efforts to harness the waters of the Helmand river has alarmed Iran. Iranian government perceives Afghanistan agricultural expansion and dam construction activities as threats to water security in its eastern and north-eastern provinces. It has not been possible to reach an agreement between these two countries yet.

4. Dam projects and disputes in the Mekong river basin.

   The Mekong river basin is witnessing an enormous expansion of dam building for hydro power generation, especially in China and Laos. This has led to diplomatic tensions as countries downstream of the dams fear the negative impacts they may bring about, from greater flooding to seasonal lack of water. The Mekong River commission's (MRC) effectiveness in resolving these tensions have so far been limited due to its lack of enforcement powers and China's reluctance to join as a full member. Instead of joining the MRC, China is trying to engage with downstream riparians by proposing alternative institutional mechanisms and offering assistance for dam construction downstream in the lower Mekong basin.. Without these disputes getting resolved, dam building activities might continue to act as a destabilising force in the Mekong river basin.

5. Turkey - Armenia water cooperation despite tensions. The Turkish Armenian case is a prominent example of how two riparian's can put their tensions aside, work together in their mutual interest and share transboundary waters equitably[18].

Treaties among riparian States on sharing and management of river water are not decided by geographical features , hydrological data and such factual factors alone, regional power balance, demand -supply equation of riparian countries, changes in the water use pattern and such other factors have a more decisive role. River water is a precious natural resource. Control over natural resources have always been the source of conflicts including colonial rule, wars and enmity. In the ultimate analysis power and national interest determine ownership and sharing of resources. It is a challenge before the leadership to rise above gladiatorial narratives and find proper solution in the interest of the people of the region.

- The latest 118th permanent Indus commission meeting between India and Pakistan was held on 30 -31 May 2022 in New Delhi. IWT has been an example of outstanding success in dealing with the river dispute two unfriendly countries for seven decades. Renewal and revision to address new issues is expected to be done with a win-win attitude . Stakes

and temper are high . Cautious optimism and extraordinary negotiating skills are the need of the hour.

References

1. *Britannica.com*
2. *https//mea.gov.in>*
3. *m.thewire.in*
4. *Amit Ranjan, research fellow, Institute of South Asian Studies, University of Singapore: India's Trans Boundary river water disputes in South Asia, Routledge*
5. *Gardener. K(2019): Moving Watersheds, borderless maps,and imperial geography in India'snorth western Himalayas, The Historical Journal,62(1)p 149-170*
6. *TBL (2014)Indus Basin Irrigation System of Pakistan, Triple Bottom Line(TBL)*
7. *Pohl,B and Schmeier,S (2014) : Hydro-diplomacy can build peace over shared water , but needs more support, New security Beat*
8. *Buis , A& Wilson,J (2015): Study:- Third ob big ground water basin in distress.*
9. *Kugelman, N (2016): Why the India Pakistan war over water is so dangerous, Foreign Policy.*
10. *Amin ,p &Habib,Z (2015): ACTreport :estimating yhe report on climate change on sectoral water demand in Pakistan*
11. *Dhawan, V (2017): water and agriculture in India – background paper for the south asia expert panel during the global forum for food and agriculture (GFFA)(2017).OAV-German Asia Pacific Business Association*
12. *Jayram D, (2016) : Why India and Pakistan need to review the Indus Water Treaty*
13. *Diamond K(2014). Adil Najam : Pakistan" security problems distract from climate vulnerabilities, New Security Beat*
14. *Katchinoff,J.(2014): Parched and Hoarse: India's negotiations continue to simmer, New Security Beat*
15. *Jayram D, (2016) :Why India and Pakistan need to review the Indus Water Treaty*
16. *Deccan- Herald: December,2020*
17. *Uttam Sinha , resident fellow, Institute of Defence Studies and analysis: Riverrhine neighbourhood and hydro -electric hydro politics in South Asia*
18. *Relief web : http.reliefweb.int//*
19. *Rashme Sehgal : http://reliefweb.int*

The Role of Intellectual Property Rights in Promoting Company and Ecosystem-level Innovation

shodhshree@gmail.com

Dr. Laxman Dhaked
Principal, Veena Memorial P.G. College, Karauli

Abstract

Over the decades, intellectual property rights (IPRs) has become one of the hottest, most significant issues of trade negotiations. Despite the continued claim that IPRs facilitate research activities and encourage technology transfer, the impact of IPRs on socio-economic development process of developing countries has evidently reflected in many areas, including health, agriculture and education. IPRs will no doubt continue to have a significant impact on developing countries for many years to come. Recently, the scope of the subject of Intellectual Property Rights (IPR) has been expanded and grown to a great extent and has risen to a stature wherein it plays a major role in the development of the Global Economy. Since the early 1990s, many developed countries unilaterally strengthened their laws and regulations in this area, and many others were poised to do likewise. At the multilateral level also, the successful conclusion of the Agreement on Trade- Related Aspects of Intellectual Property Rights (TRIPS) in the World Trade Organization enhanced the protection and enforcement of IPRs to the level of solemn international commitment. The new global IPR system comes with both benefits as well as some costs. The domain of Intellectual Property is vast. Its manifestation in the form of Copyright, Patent, Trademark and Design as some of the Intellectual Property Rights is very well known to have received recognition for a fairly long period of time. Newer forms of the protections are also emerging particularly stimulated by the exciting developments in scientific and technological activities.

Keywords: *Intellectual Property Rights, Global Economy, Patents, Trademarks, Industrial Designs, Solemn International Committee, Copyright and Related Rights.*

Intellectual property right (IPR) refers to the claim of "ownership" in creations of the mind, such as inventions; literary and artistic works; designs; symbols, and names and images used in commerce. Such "property" is protected in law by various means are patents, utility models, copyright, trademarks, and industrial designs. Without any kind of IP protection, "innovation" proves difficult to produce since there are no mechanisms (such as the granting of exclusive licenses) through which to exclude non-paying users (free-riders) of the innovation while providing full or limited accessibility to those that pay for an innovation. Consequently, there are no incentives for innovators to commercially exploit their research results. When "free-riders" attempt to exploit or steal an innovation, there are few tools to enforce property rights in the absence of an IP system. The other side of the coin is that IP systems can be too protective and actually stymie innovation overtime. How an IP system is used depends on the creativity of the companies involved in innovation creation. The presence of effective intellectual property protections are key component of viable innovation ecosystems. Nevertheless, there is only one of several enablers or attractors that stimulate innovation. Recently, they have been joined by open source innovations wherein the inventing entity enables external parties access to its innovation in order to promote additional development. Even "open innovations" have specific rules

established by the originating organization that govern their use and development.

INTELLECTUAL PROPERTY VIS-À-VIS BUSINESS: A RATIONALE OF RELATIVITY:

In today's world, the abundant supply of goods and services on the markets has made life very challenging for any business, big or small. In its on-going quest to remain ahead of competitors in this environment, every business strives to create new and improved products (goods and services) that will deliver greater value to users and customers than the products offered by competitors. To differentiate their products - a prerequisite for success in today's markets - businesses rely on innovations that reduce production costs and/or improve product quality. In a crowded marketplace, businesses have to make an on-going effort to communicate the specific value offered by their product through effective marketing that relies on well thought-out branding strategies. In the current knowledge-driven, private sector oriented economic development paradigm, the different types of intangible assets of a business are often more important and valuable than its tangible assets. A key subset of intangible assets is protected by what are labelled collectively as intellectual property rights (IPRs). These include trade secrets protection, copyright, design and trademark rights, and patents, as well as other types of rights. IPRs create tradable assets out of products of human intellect, and provide a large array of IPR tools on which businesses can rely to help drive their success through innovative business models. All businesses, especially those which are already successful, nowadays have to rely on the effective use of one or more types of intellectual property (IP) to gain and maintain a substantial competitive edge in the marketplace. Business leaders and managers, therefore, require a much better understanding of the tools of the IP system to protect and exploit the IP assets they own, or wish to use, for their business models and competitive strategies in domestic and international markets.

Administrative and Judicial Setup for Intellectual Property Rights in India

Judicial

a) Commercial Courts

b) Intellectual Properties Appellate Board

c) Copyright Board (Merged with IPAB)

d) Alternative Dispute Resolution (ADR)

Enforcement

a) Police

b) Custom

Centre and State

a) IP Cells

b) Technology and Innovation Support Centers (TISCs)

c) Patents Facilitation Centre

IP Offices

a) Patents – Delhi, Kolkata, Chennai, Mumbai

b) Trademarks - Delhi, Kolkata, Chennai, Mumbai and Ahmedabad

c) Copyrights – Delhi

d) Designs – Kolkata

e) Geographical Indication – Chennai

f) Semiconductor Integrated Circuits Layout Design Registry (SICLDRS) – Delhi

COPYRIGHTS

Copyrights protect original works of authorship, such as literary works, music, dramatic works, pantomimes and choreographic works, sculptural, pictorial, and graphic works, sound recordings, artistic works, architectural works, and computer software. With copyright protection, the holder has the exclusive rights to modify, distribute, perform, create, display, and copy the work.

Section 14 of the Act defines the term Copyright as to mean the exclusive right to do or authorise the doing of the following acts in respect of a work or any substantial part thereof, namely

In the case of literary, dramatic or musical work (except computer programme):

(i) reproducing the work in any material form which includes storing of it in any medium by electronic means;

(ii) issuing copies of the work to the public which are not already in circulation;

(iii) performing the work in public or communicating it to the public;

(iv) making any cinematograph film or sound recording in respect of the work; making any translation oradaptation of the work.

Further any of the above mentioned acts in relation to work can be done in the case of translation or adaptation of the work.

In the case of a computer programme:

(i) to do any of the acts specified in respect of a literary, dramatic or musical work; and

(ii) to sell or give on commercial rental or offer for sale or for commercial rental any copy of the computer programme. However, such commercial rental does not apply in respect of computer programmes where the programme itself is not the essential object of the rental.

In the case of an artistic work:

(i) reproducing the work in any material form including depiction in three dimensions of a two dimensional work or in two dimensions of a three dimensional work;

(ii) communicating the work to the public;

(iii) issuing copies of work to the public which are not already in existence;

(iv) including work in any cinematograph film;

making adaptation of the work, and to do any of the above acts in relation to an adaptation of the work.

In the case of cinematograph film and sound recording:

(i) making a copy of the film including a photograph of any image or making any other sound recording embodying it;

(ii) selling or giving on hire or offer for sale or hire any copy of the film/sound recording even if such copy has been sold or given on hire on earlier occasions; and

(iii) communicating the film/sound recording to the public.In the case of a sound recording:

- To make any other sound recording embodying it
- To sell or give on hire, or offer for sale or hire, any copy of the sound recording
- To communicate the sound recording to the public.

The main objective of the Act is to give protection to the owner of the copyright from the dishonest manufacturers, who try to confuse public and make them believe that the infringed products are the products of the owner. Further, it wants to discourage the dishonest manufacturers from enchasing the goodwill of the owner of the copyright, who has established itself in the market with its own efforts [Hawkins Cookers Ltd. v. Magicook Appliances Co., 00(2002) DLT698].

A vital field which gets copyright protection is the computer industry. The Copyright Act, 1957, was amended in 1984 and computer programming was included with the definition of "literary work.' The new definition of" computer programme" introduced in 1994, means a set of instructions expressed in works, codes or in any other form, including a machine readable medium, capable of causing a computer to perform a particular task or achieve a particular result.

Copyright Protection Enforcement

Civil remedies for infringement of copyright.—

(1) Where copyright in any work has been infringed, the owner of the copyright shall, except as otherwise provided by this Act, be entitled to all such remedies by way of injunction,damages, accounts and otherwise as are or may be conferred by law for the infringement of a right:

Provided thatifthe defendant proves that atthe date ofthe infringement he was not aware and had no reasonable ground for believing that copyright subsisted in the work, the plaintiff shall not be entitled to any remedy other than an injunction in respect of the infringement and a decree for the whole or part of the profits made

by the defendant by the sale of the infringing copies as the court may in the circumstances deem reasonable.

(2) Where, in the case of a literary, dramatic, musical or artistic work, or, subject to the provisions of sub-section (3) of section 13, a cinematograph film or sound recording, a name purporting to be that of the author, or the publisher,as the case may be, of that work, appears on copies of the work as published, or, in the case of an artistic work, appeared on the work when it was made, the person whose name so appears or appeared shall, in any proceeding in respect of infringement of copyright in such work, be presumed, unless the contrary is proved, to be the author or the publisher of the work, as the case may be.

(3) The costs of all parties in any proceedings in respect of the infringement of copyright shall be in the discretion of the court.

TRADEMARKS

A trademark is a word, phrase, symbol, or design that distinguishes the source of products (trademarks) or services (service marks) of one business from its competitors. In order to qualify for protection, the mark must be distinctive. For example, the Nike "swoosh" design identifies athletic footwear made by Nike.

Although rights in trademarks are acquired by use, registration with the Trademark Office under the Trademark Act, 1999 allows you to more easily enforce those rights. Before registering your trademark, conduct a search of federal and state databases to make sure a similar trademark doesn't already exist. This trademark search can help you reduce the amount of time and money you could spend on using a mark that is already registered and trademarked.

TheTradeMarksAct 1999("TMAct") provides, inter alia,forregistration of marks,filing of multi class applications, the renewable term of registration of a trademark as ten years as well as recognition of the concept of well- known marks, etc. It is pertinent to note that the letter "R" in a circle i.e. ® with a trademark can only be used after the registration of the trademark under the TM Act.

Trademarks mean any words, symbols, logos, slogans, product packaging or design that identify the goods or services from a particular source.As per the definition provided under Section 2 (zb) of the TM Act, "trade mark" means a mark capable of being represented graphically and which is capable of distinguishing the goods or services of one person from those of others and may include shape of goods, their packaging and combination of colors.

The definition of the trademark provided under the TMAct is wide enough to include non-conventional marks like color marks, sound marks, etc.As per the definition provided under Section 2 (m) of the TM Act, "mark" includes a device, brand, heading, label, ticket, name, signature, word, letter, numeral, shape of goods, packaging or combination of colors or any combination thereof.

Accordingly, any mark used business entity in the trade or business in any form, for distinguishing itself from other, can qualify as trademark. It is quite significant to note that the Indian judiciary has been proactive in the protection of trademarks, and it has extended the protection under the trademarks law to Domain Names as demonstrated in landmark cases of Tata Sons Ltd. v Manu Kosuri&Ors. [90 (2001) DLT 659] and Yahoo Inc. v AkashArora [1999 PTC 201].

Points to consider while adopting a Trademark

Any business entity needs to be cautious in selecting its trade name, brands, logos, packaging for products, domain names and any other mark which it proposes to use. One must do a proper due diligence before adopting a trademark. The trademarks can be broadly classified into following five categories:

Generic

Descriptive

Suggestive

Arbitrary

Invented/Coined

India follows the NICE Classification of Goods and Services for the purpose of registration of trademarks. The NICE Classification groups goods and services into 45 classes (classes 1-34 include goods and classes 35-45 include services). The NICE Classification is recognized in majority of the countries and makes applying for trademarks internationally a streamlined process. Every business entity, seeking to register trademark for a good or service, has to choose from the appropriate class, out of the 45 classes.

While adopting any mark, the business entity should also keep in mind and ensure that the mark is not being used by any other person in India or abroad, especially if the mark is well-known. It is important to note that India recognizes the concept of the "Well-known Trademark" and the principle of "Trans-border Reputation".

Examples of well-known trademarks are Google, Tata, Yahoo, Pepsi, Reliance, etc. Further, under the principleof "Trans-border Reputation", India has afforded protection to trademarks like Apple, Gillette, Whirlpool, Volvo, which despite having no physical presence in India, are protected on the basis of their trans-border reputation in India.

Enforcement of Trademarks Right

Trademarks can be protected under the statutory law, i.e., under the Trade Marks Act and the common law. If a person is using a similar mark for similar or related goods or services or is using a well-known mark, the rightful owner of trademark can file a suit against that person for violation of the IP rights irrespective of the Registration of a trademark is not a pre-requisite in order to sustain a civil or criminal action against violation of trademarks in India. The prior adoption and use of the trademark is of utmost importance under trademark laws.

The relief which a Court may usually grant in a suit for infringement or passing off includes permanent and interim injunction, damages or account of profits, delivery of the infringing goods for destruction and cost of the legal proceedings. It is pertinent to note that infringement of a trademark is also a cognizable offence and criminal proceedings can also be initiated against the infringers.

Patents

A patent grants proprietary rights on an invention, allowing the patent holder to exclude others from making, selling, or using the invention. Inventions allow many businesses to be successful because they develop new or better processes or products that offer competitive advantage on the marketplace. One could get a patent by filing a patent application with the Patent Office in India.

Patent, in general parlance means, a monopoly given to the inventor on his invention to commercial use and exploit that invention in the market, to the exclusion of other, for a certain period. As per Section 2(1) (j) of the Patents Act, 1970, "invention" includes any new and useful;

art, process, method or manner of manufacture;

machine, apparatus or other article;

substance produced by manufacture, and includes any new and useful improvement of any of them, and an alleged invention;

It is important to note that any invention which falls into the following categories is not patentable:

(a) frivolous,

(b) obvious,

(c) contrary to well established natural laws,

(d) contrary to law,

(e) morality,

(f) injurious to public health,

(g) a mere discovery of a scientific principle,

(h) the formulation of an abstract theory,

The application for the grant of patent can be made by either the inventor or by the assignee or legal representative of the inventor. In India, the term of the patent is for 20 years. The patent is renewed every year from the date of patent.

Enforcement of Patent Rights

It is pertinent to note that the patent infringement proceedings can only be initiated after grant of patent in India but may include a claim retrospectively from the date of publication of the application for grant of the patent. Infringement of a patent consists of the unauthorized making, importing, using, offering for sale or selling any patented invention within the India. Under the (Indian) Patents Act, 1970 only a civil action can be initiated ina Court of Law. Like trademarks, the relief which a court may usually grant in a suit for infringement of patent includes permanent and interim injunction, damages or account of profits, delivery of the infringing goods for destruction and cost of the legal proceedings.

Designs

In view of considerable progress made in the field of science and technology, a need was felt to provide more efficient legal system for the protection of industrial designs in order to ensure effective protection to registered designs, and to encourage design activity to promote the design element in an article of production. In this backdrop, The Designs Act of 1911 has been replaced by the Designs Act, 2000. The Designs Act, 2000 has been enacted essentially to balance these interests and to ensure that the law does not unnecessarily extend protection beyond what is necessary to create the required incentive for design activity while removing impediments to the free use of available designs.

The new Act complies with the requirements of TRIPS and hence is directly relevant for international trade.

The salient features of the Design Act, 2000 are as under:

(a) Enlarging the scope of definition of the terms "article", "design" and introduction of definition of "original".

(b) Amplifying the scope of "prior publication".

(c) Introduction of provision for delegation of powers of the Controller to other officers and stipulating statutory duties of examiners.

(d) Provision of identification of non-registrable designs.

(e) Provision for substitution of applicant before registration of a design.

(f) Substitution of Indian classification by internationally followed system of classification.

Conclusion

In knowledge based economy, intellectual property rights are very much essential for progressive societal development. The IPR is basic necessity to be a part of local as well as global competitive trade as without dissemination of IPR knowledge and implementation, creating the innovative environment is really impossible. It is essential for policy makers to include IPR in basic educational system and promote IPR registration by encouraging the innovators and creators. India is having all the resources in terms of available raw material, cheap labour, innovative and creative dedicated manpower. No doubt that India and other developing countries will definitely harness its proportionate share in global trade by exploration in Intellectual Property Rights.

References

1. *McJohn, S. M. (2019). Intellectual property. New York: Wolters Kluwer.*
2. *Khan, A. U., & Debroy, B. (2004). Intellectual property rights beyond 2005: an Indian perspective on the debate on Ipr protection and the Wto. Kottayam: DC School Press.*
3. *Chakravarty, R., & Gogia, D. (2010). Chakravarty's intellectual property law: Ipr. New Delhi: Ashoka Law House.*
4. *Flanagan, A., & Montagnani Maria Lillà. (2010). Intellectual property law: Economic and social justice perspectives. Cheltenham: Edward Elgar.*
5. *Wadehra, B. L. (2017). Law relating to intellectual property. Delhi: University law Publishing Co. Pvt. Ltd.*
6. *WIPO. (2000). World Intellectual Property Declaration. Geneva.*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	**DR S N TAILOR FOUNDATION** (A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR) Union Bank of India, Beawar -305901 UB A/C No. 0326321010000001 **IFS Code :** UBIN0932639 • **MICR Code :** 305026014 **Account Type :** Current • **Subscription Fees :** 2200 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1200/-)	(Rs. 2000/-)	(Rs. 2800 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque / DD must be in Favor of DR S N TAILOR FOUNDATION
(A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR)
Union Bank of India, Beawar - 305901
UB A/C No. 0326321010000001 • Account Type : Current
IFS Code : UBIN0932639 • MICR Code : 305026014

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 3000 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – डॉ. वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401